अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष

कुलपति

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे , प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर आर.पी. बहुगुणा, प्रोफेसर इतिहास एवं पूर्व निदेशक, दूरस्थ शिक्षा केन्द्र , जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय,दिल्ली

प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी, पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)

प्रोफेसर वी.डी.एस.नेगी, विभागाध्यक्ष इतिहास, एस.एस.जीना विश्वविद्यालय,अल्मोड़ा

डॉ. एम.एम.जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

श्री विकास जोशी, असिस्टेण्ट प्रोफेसर(एसी), इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,

पाठ्यक्रम समन्वयक: डॉ. मदन मोहन जोशी

पाठ्यक्रम सम्पादन : विकास जोशी

इकाई लेखन

इकाई एक : मध्यकालीन इतिहास के स्रोत (1200 ईस्वी से 1526 ईस्वी तक) - डॉ० जितेश कुमार जोशी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई दो : गुलाम वंशः कुतुबुद्दीन ऐबक , इल्तुतमिश, रजिया तथा बलवन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-102 से साभार प्राप्त

इकाई तीन : जलाउद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, बाजार नियंत्रण नीति, एवं सैनिक उपलब्धियॉ- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-102 से साभार प्राप्त

इकाई चार : तुगलक वंश, मोहम्मद बिन तुगलक की नीतियां, फिरोजशाह तुगलक के सुधार एवं धार्मिक नीति- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-102 से साभार प्राप्त

इकाई पांच : बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी, इब्राहिम लोदी एवं सामाजिक स्थिति- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-102 से साभार

इकाई छह : शर्की साम्राज्य- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक MAHI-202 से साभार प्राप्त

इकाई सात : बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्य- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-102 से साभार प्राप्त

इकाई आठ : सल्तनतकालीन अर्थव्यवस्था एवं समाज, प्रशासन, राजस्व व्यवस्था- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की पुस्तक BAHI-102 से साभार

इकाई नौ : भक्ति आंदोलन एवं इसका प्रभाव- श्री विकास जोशी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई दस : सल्तनत कालीन सूफी सिलसिले एवं समाज में उनका प्रभाव- श्री विकास जोशी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई ग्यारह : सल्तनत कालीन व्यापार, उद्योग, किसान, ग्रामीण जनता, व्यापारी, हस्तशिल्पी एवं दास- डॉ० संपत्ति नेगी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई बारह : 1400 ईस्वी से 1526 ईस्वी के मध्य बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, मालवा, मेवाड़, और कश्मीर- डॉ० संपत्ति नेगी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई तेरह : दिल्ली सल्तनत का विखंडन, कारण एवं परिणाम – श्री विकास जोशी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

इकाई चौदह : सल्तनत काल में महिलाओं की प्रस्थित- डॉ० जितेश कुमार जोशी, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (एसी), उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

आई.एस.बी.एन. :

कॉपीराइट : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष :

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

Printed at :

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना वीडियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई एक: मध्यकालीन इतिहास के स्रोत (1200 ईस्वी से 1526 ईस्वी तक)

इकाई की रूपरेखा
1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.2 पुरातात्विक स्रोत
1.2.1 भवन तथा स्मारक
1.2.2 सिक्के
1.2.3 अभिलेख
1.2.4 चित्रकला
1.3 साहित्यिक स्रोत
1.3.1 फ़ारसी तारीख़ लेखन
1.3.2 इंशा साहित्य
1.3.3 सूफ़ी साहित्य
1.3.4 संस्कृत साहित्य
1.3.5 क्षेत्रीय साहित्य
1.3.6 यात्रा वृत्तांत
1.4सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 निबंधात्मक प्रश्न
1.7 संदर्भ ग्रंथ

1.1 प्रस्तावना

किसी भी कालखंड का इतिहास लिखने के लिए स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं.इस इकाई में हम मध्यकालीन इतिहास के स्रोतों का अध्ययन करेंगे। इन स्रोतों में क़ुव्वत उल इस्लाम मस्जिद और हम्पी के विरूपाक्ष मंदिर जैसे वास्तुकला के उदाहरण शामिल हैं तो वहीं फ़ारसी दरबारी लेखकों की रचनाएँ हैं, इसके साथ ही संस्कृत साहित्य, क्षेत्रीय भाषाओं में लिखा गया अपार साहित्य भी है। सूफ़ी संतों के वचनों और जीवनियों के संकलन भी हैं, जिन्हें मलफ़ुज़ात कहते हैं। विभिन्न विदेशी यात्रियों द्वारा लिखे गए यात्रा-वृत्तांत भी हमें कई जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं। इस इकाई में इन विभिन्न स्रोतों के स्वरूप को समझते हुए इतिहास-लेखन के लिए इनके महत्व पर परिचर्चा की जाएगी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद:

- विभिन्न मध्यकालीन ऐतिहासिक स्रोतों के बारे में जान पाएँगे।
- इन ऐतिहासिक स्रोतों के महत्व को समझ पाएँगे।
- इन स्रोतों की सीमाओं और विशिष्टताओं को समझ पाएँगे।

1.2 पुरातात्विक स्रोत

पुरातात्विक स्रोतों में स्मारक, सिक्के, अभिलेख, उत्खनन और अन्वेषण से प्राप्त साक्ष्य शामिल हैं। इस खंड में इन सभी स्रोतों पर क्रम से चर्चा की जाएगी।

1.2.1 भवन तथा स्मारक

मध्यकालीन भारत के संदर्भ में यद्यपि उत्खनन और अन्वेषण का काम बहुत कम ही हुआ है तथापि हमारे पास बड़ी संख्या में प्रत्यक्ष तौर पर उपलब्ध भवनों और स्मारकों की शृंखला है। इस समय जहाँ वास्तुकला के क्षेत्र में इस्लामी स्थापत्य के नए तत्व प्रवेश कर रहे थे। वहीं दक्षिण भारत के उदार शासकों के संरक्षण में भव्य मंदिरों का निर्माण हो रहा था, वहीं राजस्थान के कई क्षेत्रों में राजपूत शासकों ने राजपूताना शैली के स्थापत्य को संरक्षण प्रदान किया है और चालुक्य तथा चौहान शासकों ने जैन परंपरा के स्थापत्य और वास्तुकला को बढ़ावा दिया।

इस अवधि के दौरान, विभिन्न राजपूत साम्राज्यों के उदय के साथ राजपूत वास्तुकला का विकास हुआ। मेवाड़, मारवाड़, आमेर और अन्य राज्यों ने राजसी किले, महल, मंदिर और हवेलियाँ बनाईं. जाली और छज्जा जैसी तकनीकों का विकास इस समय प्रमुख हो गया। मारू-गुर्जर वास्तुकला या सोलंकी शैली ,पश्चिम भारतीय मंदिर वास्तुकला की शैली है जो 11वीं से 13वीं शताब्दी के बीच गुजरात और राजस्थान में चालुक्य वंश (जिसे सोलंकी वंश भी कहा जाता है) के अधीन पनप रही थी। हिंदू मंदिर वास्तुकला में एक क्षेत्रीय शैली के रूप में विकसित यह संरचना जैन मंदिरों में विशेष रूप से लोकप्रिय हो गई, और मुख्य रूप से जैन संरक्षण के में पूरे भारत में फैल गई। सबसे प्रसिद्ध जैन मंदिरों में से माउंट आबू के पांच दिलवाड़ा मंदिर हैं। इनमें लूण वसाही का निर्माण 1230 में हुआ था, और अन्य का निर्माण 1459 और 1582 के बीच हुआ था।ये भवन न केवल वास्तुकला की कहानी कहते हैं बल्कि उस समय की धार्मिक आस्था और राजकीय संरक्षण के बारे में भी बताते हैं।

राजस्थान की रियासतों में इस समय कई दुर्गों का निर्माण हुआ और पहले से स्थापित दुर्गों को भव्य रूप दिया गया था। इस समय की शैली का विशिष्ट उदाहरण है विजय स्तंभ, जिसका निर्माण 1448 में पूरा हुआ। यह स्तम्भ 37.19 मीटर (लगभग 122 फीट) ऊंचा है और जटिल नक्काशी और शिलालेखों से सजाया गया है, जिसमें उस समय की स्थापत्य और कलात्मक संवेदनाएँ प्रतिबिंबित होती हैं। लाल बलुआ पत्थर और सफेद संगमरमर से निर्मित इस नौ मंजिला संरचना में एक जटिल ज्यामितीय योजना है और इसमें हिंदू देवताओं को उत्कीर्ण किया गया है, जो उस युग के गहरे धार्मिक विश्वास को दर्शाती है। यहाँ और गुजरात में इस समय कई बावलियों का निर्माण हुआ जो पानी के प्रबंधन का विशेष उदाहरण है।

विजयनगर में भी इस समय काफ़ी भव्य निर्माण कार्य हुए, जिसके साक्ष्य हम्पी से मिलते हैं। हम्पी के अवशेषों को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। इस नगर के केंद्रीय हिस्से में राजकीय परिसर मौजूद थे। दूसरा धार्मिक महत्व का हिस्सा है, जिसमें कई मंदिर परिसर मौजूद हैं और तीसरा उपनगरीय क्षेत्र है। यहाँ 4000 हेक्टेअर से ज़्यादा के क्षेत्र में लगभग सोलह सौ से भी ज़्यादा स्थापत्य मौजूद हैं। इसके दुर्गीकृत नगरीय क्षेत्र में रानी का स्नानागार, कमल महल, हाथियों का अस्तबल प्रमुख इमारतों में शामिल हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ महानवमी डिब्बे के नाम से विख्यात राजकीय प्रदर्शन का मंच भी मौजूद है। महानवमी डिब्बे के पास ही एक वर्गाकार

जलाशय मौजूद है, इसके निकट ही राजपरिवार के निजी उपयोग के लिए बना रामचंद्र मंदिर मौजूद है। जो काले पत्थर के स्तम्भों के प्रयोग और नक़्क़ाशी के लिए जाना जाता है. हम्पी के विरूपाक्ष और विट्ठल मंदिर अपनी वास्तुकला में भव्य और सुरुचिपूर्ण हैं। वहीं बहमनी सल्तनत के अधीन भी हमें कई निर्माण कार्य देखने को मिलते हैं, जिनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है. गुलबर्गा में बनाए गए प्रमुख स्मारकों में शाह बाज़ार मस्जिद, हफ़्ता मस्जिद और जामा मस्जिद थी। बीदर में महमूद गावाँ का मदरसा, सोलह खम्भों की मस्जिद, रंगीन महल, जनता महल इत्यादि हैं।

अब चर्चा करते हैं उत्तर भारत में विकसित हो रही नई क़िस्म की हिंद-इस्लामी वास्तुकला की शुरुआती तौर पर तुर्की सुल्तानों ने पहले से मौजूद हिन्दू मंदिरों की सामग्री का इस्तेमाल करते हुए निर्माण कार्य शुरू किए। इनमें दिल्ली में मौजूद क़ुव्वत-उल इस्लाम मस्जिद और कुतुब मीनार प्रमुख हैं। इसी तरह अजमेर में अढ़ाई दिन का झोपड़ा भी इसी शैली की इमारत है। बाद के समय में वास्तविक मेहराब और गुंबद का प्रयोग देखने में मिलता है, बलबन के मक़बरे में पहली बार वास्तविक मेहराब का प्रयोग हुआ था। क़ुतुब परिसर में मौजूद अलाई दरवाज़ा अपने गुम्बद और सफ़ेद संगमरमर के साथ-साथ बलुए पत्थर के इस्तेमाल के लिए जाना जाता है। सल्तनत काल में पहली बार वास्तविक गुंबद का प्रयोग इस इमारत में हुआ है। प्रसिद्ध मकबरों में जैसे गयासुद्दीन तुग़लक का मकबरा (1325 ई०), फ़िरोज तुग़लक का मकबरा (1360 ई०) लाल गुंबद (1397 ई०), पोली गुंबद (लगभग 1400-1450 ई०), मुबारक खान लोहानी का मकबरा (1489 ई०), दादी गुंबद (1490 ई०), छोटे ख़ाँ का गुंबद (1490 ई०), शीश गुंबद (1490 ई०), बड़ा गुंबद (1510 ई०), बाग़-ए-आलम का गुंबद (1501 ई०) एवं बड़े ख़ाँ का गुंबद (1510 ई०) अलाई दरवाजे से ही प्रभावित थे।

तुग़लक वंश के शुरुआती काल में बनी इमारतों में तुग़लकाबाद की गढ़ी और उसके निकट झील के बीच बना गयासुद्दीन तुग़लुक का मकबरा है। इस गढ़ी की भारी-भरकम दीवारें एवं ऊँचे बेतरतीब बुर्ज समकालीन राजनीतिक अस्थिरता का संकेत करते हैं। इस गढ़ी में हर जगह अनगढ़ पत्थरों के प्रयोग का आधिक्य है। समकालीन भवनों की संरचना मंगोल आक्रमणों से उत्पन्न खतरे के कारण इनके निर्माण की जल्दबाज़ी का संकेत करती है। फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के समय में हमें इस निर्माण-कार्य में बिलकुल ही अलग अंदाज़ देखने को मिलता है, पहले के समय की सादगी और प्रभावपूर्ण स्थापत्य का स्थान भारी भरकम भीड़-भाड़ वाली शैली ने ले लिया था। इससे सल्तनत के कमज़ोर होते वित्तीय संसाधनों का संकेत मिलता है। इसके साथ ही फ़िरोज़शाह के समय में नई क़िस्म की मस्जिदों का निर्माण भी शुरू हुआ, इन मस्जिदों में पारंपरिक सहन के स्थान पर समकोण पर काटने वाले नए क़िस्म के देखने को मिलते हैं। इसी समय हमें अष्टभुजाकार मक़बरों के निर्माण की शुरुआत भी देखने को मिलती है, जिन्हें बाद भी व्यापक रूप से सैयद और लोदी सुल्तानों द्वारा अपनाया गया। इस समय की इमारतें इस दौरान होने वाली विघटन और विखंडन की प्रक्रियाओं का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। अहमदाबाद में और जौनपुर में विशेष रूप से हमें स्थानीय तत्वों को शामिल करने वाली क्षेत्रीय शैलियाँ उभरते हुए देखने को मिलती है। विशेष रूप से मालवा में उभरने वाली क्षेत्रीय सल्तनत के अंतर्गत हमें मांडू में अद्भुत और विशिष्ट निर्माण कार्य देखने को मिलते हैं, जिनमें हिंडोला महल, जहाज़ महल, होशंग शाह का मक़बरा और अशरफ़ी महल प्रमुख हैं।

- इस तरह पुरातात्विक अध्ययन से हमें इस काल के विषय में निम्नलिखित बिंदुओं का पता चलता है:

- भवन निर्माण की नई तकनीकों जैसे लाइम-मोर्टार का प्रयोग, शहतीर की शैली के स्थान पर मेहराब और गुंबद का प्रयोग।
- स्थानीय राजमिस्त्रियों द्वारा नई तरह की शैलियों को स्वीकारना और बड़ी स्तर पर होने वाले निर्माण कार्य के कारण एक व्यापक कुशल श्रमिक वर्ग का उदय।
- छज्जों, जालियों, झरोखों, मंडपों जैसे भारतीय क़िस्म के ढांचों का सम्मिश्रण स्थापत्य के इस्लामिक तत्वों के साथ करना और एक नई क़िस्म की हिंद-इस्लामी शैली का आविर्भाव होना।
- विजयनगर जैसे विशाल साम्राज्य में अपार संसाधनों की मौजूदगी और तत्कालीन शासकों के नगर निर्माण में दिलचस्पी के साथ-साथ हमें हिंदू शासकों द्वारा इस्लामी वास्तुकला की ग्रहण करने का प्रमाण भी विजय नगर के अवशेषों से मिलता है।
- इसके साथ ही राजपूताना की रियासतों में मौजूद संसाधनों और वहाँ निरंतर विकसित हो रहे नए राजपूत शासकों के अधीन विशेष क़िस्म की शैली का उदय होना।
- इस समय के निर्माण-कार्य हमें तत्कालीन धार्मिक संरक्षण और विश्वासों के विषय में भी बहुत कुछ बताते हैं।

1.2.2 सिक्के

सल्तनत काल में हमें इससे ठीक पूर्व की समय से की अपेक्षा की तुलना में काफ़ी अधिक मुद्रा प्राप्त होती है। इसकी ख़ास बात ये है कि मुग़ल काल की तुलना में ये अधिक विविधता लिए हुए हैं। सल्तनत काल के सिक्के बड़ी संख्या में पाए गए हैं और ये वज़न में भी अधिक हैं. क़ुतुबुद्दीन ऐबक के समय के किन्हीं भी सिक्कों का पुरातात्विक साक्ष्य हमें नहीं मिला है। इल्तुतमिश ने सबसे पहले चाँदी का टका और मिश्रधातु का जीतल जारी किया। विजयनगर साम्राज्य द्वारा पैगोडा या वराह नाम का सिक्का ज़ारी किया गया था जिसका मानक वजन 3.4 ग्राम था, यह का सोने का था। वराह को हूण, गद्याना या पोन भी कहा जाता था और घट्टिवराह, डोड्डावराह और शुद्ध वराह सिक्के इसके प्रकार थे. पैगोडा-स्वर्ण के अनुपात-मूल्य के आधार पर चाँदी और तांबे की अन्य इकाइयों के सिक्के भी थे। विजयनगर साम्राज्य में राम के राज्याभिषेक के दृश्य को दर्शाने वाले कई सोने के रामटंका (सांकेतिक सिक्के) भी जारी किए गए थे। साथ ही यहाँ दिल्ली सल्तनत की तरह के ताम्बे के जीतल भी ज़ारी किए गए थे, जो हमें भारी मात्रा में प्राप्त होते हैं।

त्रि-धात्विक प्रणाली, जो मुगल मुद्रा व्यवस्था की विशेषता थी, की शुरुआत शेरशाह सूरी द्वारा की गई थी। उसके शासन के दौरान रुपया शब्द का उपयोग 178 ग्रेन के मानक वजन के चाँदी के सिक्के के लिए किया जाने लगा, जो आधुनिक रुपये का अग्रदूत था।

स्रोतों के रूप में यह सिक्कों का महत्व इस प्रकार है:

- सिक्कों से हमें अर्थव्यवस्था की मज़बूती एकरूपता या विविधता का पता चलता है और विदेशी और देशी व्यापार का स्वरूप क्या रहा होगा और उसकी मात्रा क्या रही होगी, इसके बारे में भी पता चलता है।

- सिक्कों से हमें शासकों के धार्मिक विश्वास का भी पता चलता है, इसके साथ ही नए तुर्की शासक वर्ग द्वारा भारत की परंपरागत मुद्रा प्रणाली के सिक्कों के प्रतीकों और उत्कीर्णन के साथ हुए आदान-प्रदान का भी पता चलता है।
- मुद्रा-शास्त्र का अध्ययन हमें शासकों के राजत्व के संबंध में भी महत्वपूर्ण जानकारी देता है, जैसे अलाउद्दीन के सिक्कों में उसे सिकंदर-ए सानी और नासिर-ए अमीर उल मोमिनीन और यामिनी-ए ख़लीफ़ा कहा गया है, जिससे एक शासक के रूप में अलाउद्दीन स्वयं को किस तरह देखता था इसके संबंध में हमें जानकारी मिलती है।

1.2.3 अभिलेख

13वीं शताब्दी के अंत में, अभिलेखों में फ़ारसी भाषा का व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा। फ़ारसी दक्षिण-पश्चिमी तथा दक्षिण-पूर्वी तटीय क्षेत्र, वर्तमान भारतीय राज्य केरल और तमिलनाडु के हिस्सों में पाए गए अभिलेखों में बिल्कुल अनुपस्थित रही है तथा पूर्वी बंगाल, उड़ीसा, असम, और कर्नाटक में मुगल काल में ही फ़ारसी का प्रचलन हुआ। जहाँ पश्चिमी गुजरात में दिल्ली सल्तनत काल (1296-1406) के गद्य और पद्य दोनों अभिलेख आम तौर पर फ़ारसी में हैं, लेकिन बाद में गुजरात के सुल्तानों (1406-1580) के तहत उनकी जगह अरबी ने ले ली। हालाँकि, फ़ारसी अभिलेख बंगाल की तरह दुर्लभ नहीं हैं। उत्तरी और मध्य क्षेत्रों में, दिल्ली सल्तनत और जौनपुर, मालवा आदि के प्रांतीय राज्यों के तहत, फ़ारसी ने 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और 14वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से कमोबेश सार्वभौमिक रूप से इसका उपयोग किया जाने लगा। दक्कन में भी, फ़ारसी को बहमनियों (1347-1518, तिमाही), उनके पांच उत्तराधिकारी राजवंशों (16वीं-17वीं शताब्दी), मुगलों द्वारा अभिलेखों में प्रयुक्त किया गया।

पुष्पा प्रसाद द्वारा दिल्ली और उत्तर प्रदेश में पाए गए 120 संस्कृत शिलालेखों कालानुक्रमिक रूप से व्यवस्थित संकलन तैयार किया गया है। कई शिलालेखों में विभिन्न शासकों और सरदारों द्वारा दिए गए भूमि-अनुदान का विवरण है; अन्य युद्धों या शासकों की स्तुति का वर्णन करते हैं। इसके साथ ही, वे विभिन्न क्षेत्रों के इतिहास पर जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जो स्थानीय राजवंशों और सत्ताधारी लोगों के बारे में मूल्यवान विवरण प्रदान करते हैं। इस समय की संस्कृत प्रशस्तियों में 1460 ई. की कुंभलगढ़ प्रशस्ति (स्तुति शिलालेख) महत्वपूर्ण स्रोत है, जो चित्तौड़ -घेराबंदी का सबसे पहला हिंदू दस्तावेज़ भी है, इसमें उल्लेख है कि रतन सिंह युद्ध के मैदान से "चले गए", जिसके बाद लक्ष्मण सिंह किले की रक्षा करते हुए मारे गए, क्योंकि केवल कायर ही "परिवार की स्थापित परंपराओं" को त्याग देते हैं।" जबकि "जो वीर और स्थिर हैं वे अपना प्रयास नहीं छोड़ते हैं।" आधुनिक इतिहासकारों ने "प्रस्थान" (संस्कृत में तस्मिन गते) शब्द की अलग-अलग व्याख्या की है, या तो इसका अर्थ यह है कि रतन सिंह युद्ध के मैदान में लड़ते हुए मर गए या रक्षकों को छोड़ कर, आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अभिलेखों की सूचना का अन्य स्रोतों से मिलान करने की ज़रूरत होती है या इसके विपरीत कहें तो साहित्यिक स्रोतों का मिलान भी अभिलेखीय साक्ष्यों से करना भी ज़रूरी है, यद्यपि यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि कोई लेख उस घटना के कितने समय के बाद लिखा गया है, जिस घटना का उसमें ज़िक्र है।

विजयनगर साम्राज्य (ल.1336-1650) से संस्कृत के अलावा तीन द्रविड़ भाषाओं - कन्नड़, तमिल और तेलुगु- में शिलालेखों का एक समृद्ध भंडार प्राप्त हुआ है। जहाँ तमिल शिलालेख विजयनगर राज्य के लिए तमिल क्षेत्र के महत्व पर बहुत प्रकाश डालते हैं। इसके साथ ही ये यहाँ की राजनीतिक संगठन की कुछ अनोखी विशेषताओं को दर्शाते हैं, जिस पर स्थानीय स्तर पर नायकों का प्रभुत्व था। तमिल शिलालेख उस समय की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के संबंध में कन्नड़ और तेलुगु शिलालेखों की तुलना में कुछ हद तक समृद्ध विवरण प्रदान करते हैंये अभिलेख तत्कालीन राजनीतिक व्यवहार और संकल्पनाओं को समझने के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, देवानगिर के किले-क्षेत्र के खंडहरों में पाया गया एक शिलालेख 1387 ई. का है - जिसे विजयनगर साम्राज्य के तीसरे राजा हरिहर राय द्वितीय के शासनकाल के दौरान उत्कीर्ण किया गया था। शिलालेख में हरिहर द्वितीय को 'हिंदू राय सुरत्राण' (हिंदू शासकों का रक्षक) कहा गया है।यह 'हिंदू' कहे जाने वाले राजाओं के शुरुआती संदर्भों में से एक है, जो मुगलों के आगमन से डेढ़ सदी पहले और शिवाजी महाराज के आगमन से तीन सदी पहले का है।

इसी तरह, उदाहरण के लिए, दिल्ली के पालम गांव में स्थित एक बावली, जिसे बलबन के समय (मामलूक सुल्तान) में 1274 ई. में बनाया गया था, पर निम्नलिखित शिलालेख है: "हरियाणा की भूमि पर पहले तोमरों और फिर चौहानों का शासन था। अब इस पर शक राजाओं का शासन है"। यह ध्यान देने योग्य है कि मामलूक सुल्तानों को उस समय स्थानीय रूप से शक राजा के रूप में जाना जाता था। शिलालेख में इस नगर का नाम ढिल्लीपुरा और योगिनीपुरा के रूप में उल्लेखित है, जिसमें बलबन तक तुर्क सुल्तानों के सभी शासकों की सूची भी दी गई है। पालम बावली शिलालेख में उल्लेख किया गया है कि "पृथ्वी को अब इस संप्रभु (सुल्तान बलबन 1266-87) का आधार मिल गया है, शेषनाग पृथ्वी का भार उठाने के अपने कर्तव्य से मुक्त हो गए हैं, और स्वयं भगवान विष्णु की महान शय्या बन गए हैं; और भगवान विष्णु स्वयं... सभी चिंताओं को त्याग कर क्षीर-सागर पर शांति से सो रहे हैं"।

1.2.4 चित्रकला

यद्यपि दिल्ली सुल्तानों के संरक्षण में किसी प्रत्यक्ष चित्रकला के साक्ष्य नहीं मिलते हैं, हमें विभिन्न लिखित स्रोतों में राजपरिवार के परिसरों में विभिन्न प्रकार के चित्रों के उत्कीर्ण कराए जाने का उल्लेख मिलता है. इसके अतिरिक्त हमें कई पांडुलिपियाँ मिली हैं जिनमें लघुचित्र मिलते हैं. इनका सम्बंध मुख्यतः जैन धर्म से है. मुग़ल युग से पूर्व शयन कक्षों तथा दीवारों पर भित्ति-चित्रों के रूप में चित्रकला काफी प्रचलित तथा लोकप्रिय थी। दिल्ली सल्तनत कालीन चित्रकला के बिखरे और बचे-खुचे साक्ष्य चांपानेर एवं सरहिंद के मुगल-पूर्व स्मारकों और सीरी एवं बेगमपुर के बीच स्थित मखदूमवली मस्जिद से प्राप्त हुए हैं. ये अवशेष फूल-पत्तियों और वनस्पतियों के रूप में हैं.

बारहवीं शताब्दी में विनाशकारी तुर्की आक्रमण के बाद पूर्वी भारत में प्रचलित लघुचित्रों एवं चित्रांकित पांडुलिपियों की परंपरा तो नष्ट हो गई, परंतु नेपाल तथा तिब्बत में यह परंपरा एक भिन्न रूप में जीवित रही। इस युग में पश्चिमी भारत में गुजरात एवं मारवाड़ में लघुचित्र की परम्परा अस्तित्व में आई। चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में यह शैली एक शक्तिशाली आंदोलन के रूप में विकसित हुई। धनाढ्य जैन व्यापारियों के उदार संरक्षण

ने इस कला को मध्य, उत्तरी और पूर्वी भारत में प्रसारित किया। मौजूदा ऐतिहासिक लेखन में चित्रों के पूर्ण अभाव के आधार पर अधिकतर विद्वानों का अनुमान है कि दिल्ली सल्तनत की चित्रकला की ऐसी परंपरा के विद्यमान होने की कोई संभावना नहीं है।हाल के समय में तीन प्रांतीय सल्तनतों- मांडू, जौनपुर और बंगाल के हुसैनशाही दरबारों में अनेक पांडुलिपियों की खोज की गई है.

सल्तनत युग की प्रारंभिक चित्रांकित हिंदू-मुसलिम पांडुलिपि अमीर ख़ुसरो देहलवी की 'ख़म्सा' नामक पांडुलिपि है। इस पांडुलिपि के बीस-पच्चीस बिखरे हुए पृष्ठ मिले हैं, जिनमें आढ़े चित्र बनाए गए है। वाशिंगटन डी० सी० की फ्रीर कलादीर्घा में रखी हुए चित्रांकित पृष्ठों को 1961 में रिचर्ड एटिंगहाउसेन द्वारा प्रकाशित किया गया था. इन चित्रों की शैली चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और पंद्रहवीं शताब्दी के मिस्त्री मामलूक चित्रों और ईरान की इंजु चित्रकला शैली से मिलते-जुलते हैं। इन लघुचित्रों में रंगों के खुले प्रयोग और उच्च कोटि की बारीकी से लगता है कि पांडुलिपि को शाही संरक्षण में तैयार किया गया होगा। एटिंगहाउसन और फ्राड द्वारा खोजी गई पंद्रहवीं शताब्दी की पांडुलिपियों में 1427 ई० का 'शाहनामा' और 1438 ई० की रूमी की 'मथनवी' की एक प्रति भी शामिल है, जो अब राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में संगृहीत है. उनकी शैली में सिराजी शैली, दक्षिण तैमूरी प्रादेशिक शैली के साथ ही भारतीय मूल की शैली और मूर्तिशिल्प संबंधी विशेषताएँ भी विद्यमान हैं।

मांडू, जौनपुर और बंगाल समूह:

मांडू से प्राप्त कम-से-कम चार अद्भुत पांडुलिपियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण और रोचक पांडुलिपि नियामतनामा है जो पाकशास्त्र पर एक ग्रंथ है। इसकी पुष्पिका में ग़यासुद्दीन ख़लजी के बेटे सुल्तान नासिरुद्दीन ख़लजी का उल्लेख है. इसमें अलग-अलग ढंग से इसके व्यक्ति-चित्र बनाए गए हैं. नियामतनामा के चित्रांकनों पर समकालीन ईरानी शैली का प्रभाव देखने को मिलता है. इस पांडुलिपि के लघुचित्रों में मांडू के दरबार की जीवंतता साफ झलकती है। इसी प्रकार की प्रवृत्ति हमें मिफ़ताह-उल-फ़ुजाला नामक पांडुलिपि में भी देखने को मिलती है। यह मांडू में तैयार किया गया दुर्लभ शब्दों का कोष है। 1502 में हाजी महमूद नामक एक व्यक्ति द्वारा मांडू में चित्रांकित वोस्तान पांडुलिपि के चित्र समकालीन ईरानी शैली से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हैं। साइमन डिग्बी ने यांत्रिकी के तरीकों का उल्लेख करने वाली पांडुलिपि अजैब-उस-सनाती का उल्लेख किया है। जिसे 1508 में मांडू में चित्रित किया गया। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में अनवार-ए-सुहैली नामक पांडुलिपि को भी इसी समूह में शामिल किया जा सकता है।

हाल ही में 1501 में जौनपुर में लिखी गई फ़ारसी की एक पांडुलिपि का भी पता चला है। हाल के वर्षों में विभिन्न पांडुलिपियों की खोज की गई है- पश्चिमी जर्मनी की तुबिंगन स्टेट पुस्तकालय में संगृहीत हम्ज़नामा, विभिन्न यूरोपीय एवं अमरीकी कला-संग्रहों में संगृहीत ख़म्सा-ए-अमीर खुसरो, सिकंदरनामा-ई-बहरी, भारत कला भवन, वाराणसी में संगृहीत शाहनामा, अहमदाबाद संस्कृति केंद्र में फ़ारसी मथनवी.

अहमदाबाद से जैन पांडुलिपियों के साथ ही 1451 में लिखे गए बसंत-विलास जैसे ग्रंथों की भी रचना हुई, इसके अलावा यहाँ से अनवार-ए-सुहैली के चित्रों से युक्त पांडुलिपि भी मिली है।

राबर्ट स्कैलटन ने 1531 - 32 में बंगाल के सुल्तान नुसरत शाह के निर्देश पर तैयार की गई शरफ़नामा की पांडुलिपि को भी खोजा है, इसमें नौ दृष्टांत चित्र हैं। निजामी के सिकंदरनामा की पांडुलिपि की शाही प्रति के आवरण-पृष्ठ को शानदार ढंग से दृष्टांत-चित्रों द्वारा सजाया गया है।

एक नवीन चित्रकला शैली जिसमें चटकीली एवं जीवंत रंग-योजना, बेल-बूटों और अलंकरण-विधानों से युक्त शांत तथा परिष्कृत रूप पाया जाता है, सामान्यतः लौर-चंदा-चौर-पंचासिका समूह के रूप में जानी जाती है। इसमें बंबई की एशियाटिक सोसाइटी के संग्रह में शामिल महाभारत के अरण्य पर्व की एक पांडुलिपि, प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय बंबई और जॉन रेलेंट्स पुस्तकालय मेनचेस्टर में संगृहीत लौर-चंदा की एक पांडुलिपि के कुछ बिखरे पृष्ठ, मेहता संग्रह की चौरपंचासिका पांडुलिपि शामिल हैं. इसके अलावा गीत गोविंद के कुछ अंश, भागवत पुराण की भिन्न-भिन्न पांडुलिपियों के चित्रित पृष्ठ, रागमाला एवं मृगावती की पांडुलिपियाँ महत्वपूर्ण हैं।

अरण्य-पर्व पांडुलिपि की भाँति इन चित्रों को भी संभवतः सम्पन्न वर्ग के लिए तैयार किया गया था, न कि किसी राजकीय संरक्षक के लिए। इन्हें प्रायः राज्य या प्रादेशिक दरबारों के सत्ता केंद्रों से दूर धनाढ्य संरक्षकों के लिए तैयार किया गया था इन पांडुलिपियों के चित्रों से राजस्थानी लघु चित्रों के विकास के साथ-साथ मुग़ल चित्रकला पर इनके प्रभावों का पता चलता है।

1.3 साहित्यिक स्रोत

इस समय के साहित्यिक स्रोत काफ़ी विविधता लिए हुए हैं। जहाँ इस समय में फ़ारसी इतिवृत्तों की नई विधा की भारत में शुरुआत हुई, वहीं देशी भाषाओं में भी विभिन्न प्रकार का साहित्य लिखा गया। संस्कृत में भी ग्रंथ लिखे गए किंतु अब ये मौलिक स्वरूप के होने के बजाय भाष्य, टीका, निबंध और टिप्पणियों या व्याख्याओं के रूप में थे। सूफ़ियों के वचन और वार्ता मलफ़ुज़ात के रूप में संकलित किए गए थे. वहीं सूफी प्रेमाख्यानों की भी रचना हुई। संस्कृत ग्रंथों, विशेषकर चिकित्सा और संगीत के ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद भी किया गया,यहाँ हम संक्षेप में इन स्रोतों पर चर्चा करेंगे।

1.3.1 फ़ारसी तारीख़ लेखन

फ़ारसी इतिवृत्तों का लेखन एक नई तरह की विधा थी, जिसका बीजारोपण सल्तनत की स्थापना के साथ ही हो चुका था, इस तरह के लेखन को तारीख़ लेखन के रूप में जाना जाता था. यह एक तरह का इतिहास लेखन था जिसकी शुरुआत पहले ही सासानी शासकों और ग़ज़नी एवं ग़ौर के सुल्तानों के दरबार में हो चुकी थी. इस प्रकार का साहित्य पूर्ण रूप से दरबारी रंग में रंगा हुआ था और इसका सरोकार मुख्यतया शासक वर्ग के साथ था, इस प्रकार के लेखन की सीमाएँ इसके अभिजात्य वर्ग के साथ जुड़े होने से स्पष्ट हो जाती हैं तथापि राजनीतिक गतिविधियों और परिवर्तन को समझने के लिए इस प्रकार का साहित्य अद्वितीय और अनूठा रहा है. तुर्कों के भारत में आगमन से पूर्व इस तरह के ऐतिहासिक लेखन विरले ही देखने को मिलते हैं. इस तरह का एकमात्र ग्रंथ बारहवीं सदी में लिखा गया कल्हण का राजतरंगिणी है. फ़ारसी इतिहास-लेखन अरबी इतिहास लेखन से भी भिन्न था, क्योंकि अरबी इतिहास-लेखन केवल राजनीतिक घटनाओं के आस-पास सीमित नहीं था तथा इसका दायरा व्यापक सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक दुनियाओं के संबंध में जानकारी और व्याख्याओं को अपने में समेटे हुआ था. यहाँ कुछ प्रमुख फ़ारसी ऐतिहासिक स्रोतों पर चर्चा की जा रही है:

आदाब-उल हर्ब वा-शुजाआ: भारत में फ़ारसी भाषा में लिखी गई इतिहास की सबसे प्रारंभिक कृतियों में से एकफख्र-ए-मुदब्बिर का शज्र-यि अनसाब है, इस ग्रंथ को हम दो भागों में बाँट सकते हैं इस पुस्तक का पहला

हिस्सा इसके नाम के अनुरूप विभिन्न वंशावलियों का संकलन है. इस ग्रंथ का दूसरा हिस्सा क़ुतुबुद्दीन ऐबक की ज़िंदगी पर केंद्रित है जिसको यह ग्रंथ समर्पित किया गया था. इसमें न केवल क़ुतुबुद्दीन के कार्यों का वर्णन है बल्कि न्याय, दीन और ईमान पर शासक को सलाह भी दी गई है. युद्ध और वीरता के संबंध में नैतिक सलाह देने वाले ग्रंथ फख़्र-ए-मुदब्बिर आदाब-उल हर्ब वा-शुजाआ की रचना भी की थी। इस ग्रंथ को 1229 के आस-पास पूरा किया गया था।

ताजुल मासिर: हसन निज़ामी को सल्तनत काल के शुरुआती ऐतिहासिक ग्रंथों में गिना जाता है. के. ए. निज़ामी ने इसे सल्तनत का पहला आधिकारिक इतिहास 'कहा है। इसे 1217 में पूरा किया गया था। इसमें दिल्ली के दो प्रथम सुल्तानों का विवरण मिलता है. शाब्र से ये इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें गद्य के साथ पद्य का भी प्रयोग किया गया है. सुनील कुमार का कहना है कि यह उस तरह का ग्रंथ है जिसमें गद्य का प्रयोग आलंकारिक भाषा, मुहावरों, रूपकों, उपमाओं के सहारे एक विशेष स्वरूप ग्रहण कर लेता है. साथ ही दर्शन और धर्म पर गहरी विवेचना भी करता है। इसमें पूर्व इस्लामिक शासकों जमशेद, नौशेरवान और फ़रीदून का आदर्श शासकों के रूप में वर्णन किया गया है. निज़ामी की तारीख़ में हमें दैवीय हस्तक्षेप की भूमिका का महत्व देखने को मिलता है, घटनाओं को ईश्वर की मर्ज़ी के अनुरूप व्याख्यायित किया गया है।

तबक़ात-ए नासिरी: मिन्हाज़-उस सिराज़ जुज्जानी को दिल्ली सल्तनत की स्थापना के समय से गहराई से जुड़े हुए इतिहासकारों में शुमार किया जा सकता है, इल्तुतमिश के अधीन उसने क़ाज़ी-उल कुजात का पद ग्रहण किया था और बाद के समय में बहरामशाह तथा नसीरुद्दीन के काल में भी समय-समय पर वह इस पद पर रहा। जुज्जानी की साहित्यिक प्रतिष्ठा उनकी प्रसिद्ध तबाकत-ए नासिरी पर आधारित है, जो सुल्तान नासिरुद्दीन को समर्पित कर लिखी गई थी। इसमें 23 अध्याय हैं. इसे एक सार्वभौमिक इतिहास की शैली में लिखा गया था, जिसका उद्देश्य संपूर्ण इस्लामी संसार के इतिहास को शामिल करना था। पैगंबर आदम के जीवन से लेकर इतिहासकार के काल तक का इतिहास इसमें उपस्थित है।यदि हम मिनहाज के इतिहास को समझना चाहते हैं तो हमें उनके राजनीतिक आग्रहों को समझने की कोशिश करनी होगी। सभी शासकों की प्रशंसा करने और उन्हें महिमा-मंडित करने से उन्हें किसी तरह के अंतर्विरोध का अनुभव नहीं हुआ, भले ही उन शासकों में से अधिकतर ने हिंसात्मक ढंग से अपने पहले के शासक अपदस्थ करके ही क्यों न सत्ता हासिल की हो।

ये इतिहास इस्लाम के साथ-साथ उस राज्य के प्रति निष्ठा एवं उत्साह जगाने का तरीका था, जिसका वे अंग थे. मंगोलों द्वारा इस्लामी जगत् पर किए गए आक्रमणों के कारण इस्लाम धर्म के गौरव तथा मुसलमानों के महान कार्यों के बारे में लिखकर इस्लाम में फिर से विश्वास जागृत करने का तरीका भी अपनाया गया था।

मिनहाज अपनी रचना में बराबर धार्मिक शब्दावली का प्रयोग करते हैं। युद्धों को इस्लामी सेनाओं तथा शैतानी शक्तियों के बीच लड़ाइयों के रूप में निरूपित किया गया है। वे एक ऐसी शिक्षा-पद्धति की उपज थे जिसके स्वरूप का निर्माण पूरी तौर पर धर्म के इर्द-गिर्द हुआ था इसलिए वह स्वाभाविक ही था कि वे केवल धार्मिक शब्दावली से ही परिचित हों। हिंदुओं के खिलाफ उनका पूर्वग्रह केवल संघर्ष के दौरान ही व्यक्त होता है।

मिनहाज के इतिहास की यह कह-कर निंदा की गई है कि वह राजनीतिक गतिविधियों का बडा ही रसहीन चित्रण तथा निर्जीव विवरण है। किंतु इस विषय पर हमारे एकमात्र सूचना-स्रोत वे ही हैं. राजाओं और अमीरों के मामलों में जरूरत से ज्यादा ध्यान दिया गया है और आम आदमी की हालत का बयान नहीं किया गया है।

तारीख-ए- फिरोजशाही तथा फतवा-ए-जहाँदारी: जियाउद्दीन बरनी दिल्ली सल्तनत के इतिहास को गयासुद्दीन बल्बन से शुरू करके फ़िरोजशाह तुरालुक के शासनकाल के छठे वर्ष तक पूरा करते हैं। जहाँ बरनी हमारी जानकारी के प्रमुख आधार हैं, तो उनकी तारीख-ए- फिरोजशाही तथा फतवा-ए-जहाँदारी जैसी कृतियाँ उन विवादों की जड़ भी हैं जिन्होंने उस युग से संबंधित आधुनिक इतिहास-लेखन में समस्या पैदा की है। समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण केवल उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि को ही प्रतिबिंबित नहीं करता है, बल्कि उनका लेखन उनकी व्यक्तिगत निराशा को भी प्रकट करता है। एक आलिम (विद्वान) के रूप में उन्हें जो प्रशिक्षण मिला था वह उनके धार्मिक-राजनीतिक दृष्टिकोण को निर्धारित करता है।

बरनी सैयद परिवार में पैदा हुए थे, जिसका संबंध उच्च वर्ग से था। उनके चाचा अलाउद्दीन खिलजी के सलाहकार थे और राजधानी के कोतवाल थे। उनका बचपन शाही राजधानी के नजदीक बीता। उन्हें बहुत अच्छी शिक्षा मिली थी। वे मुहम्मद तुगलक के नदीम (जिंदादिल साथी) के पद पर सत्रह साल तक रहे। कुछ अन्य अमीरों से भी उनके नजदीकी संबंध थे। किंतु फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के सिंहासनारूढ होते ही वे शाही कृपा से वंचित हो गए क्योंकि संभवतः बरनी अमीरों के उस समूह में शामिल थे जिन्होंने किसी अन्य को उत्तराधिकारी के रूप में गद्दी पर बिठाने की कोशिश की थी।

तारीख-ए-फ़िरोजशाही तथा फ़तावा-ए जहाँदारी कृतियाँ काफ़ी महत्वपूर्ण हैं। बरनी ने किन उद्देश्यों से प्रेरित होकर लिखा? बरनी स्वयं बताते हैं कि उन्होंने सोचा कि उनके प्रयासों से दूसरों को सहायता मिलेगी। उनके लिए इतिहास-लेखन पापों का प्रायश्चित करने का मार्ग भी था। उन्हें मुहम्मद तुगलक की उसके अधार्मिक तथा क्रूर कृत्यों की आलोचना न करने का अफ़सोस था। उनके अनुसार इतिहास लोगों को ईश्वरीय वचनों, पैगंबर साहब के कार्यों तथा शासकों के सत्कार्यों से परिचित कराता है। बुरे कामों के बुरे परिणामों तथा अच्छे कामों के अच्छे परिणामों को दिखाकर इतिहास लोगों के लिए एक प्रकार की चेतावनी का कार्य भी करता है।

उन्हें यह भी आशा थी कि उनके प्रयासों से -- उनकी रचना तारीख-ए-फिरोजशाही— से तत्कालीन शासक सुल्तान फिरोजशाह तुग़लक़ प्रसन्न होगा, उन्हें इनाम तथा मान्यता देगा और इस प्रकार गरीबी एवं उपेक्षा की उनकी तकलीफ का अंत हो जाएगा।

बरनी ने तारीख-ए-फिरोजशाही 1357-58 ई० में पूरी की। वे मिनहाज की तरह मुसलमानों के विश्व-संबंधी इतिहास की रचना करने की कोशिश नहीं करते। उनका इतिहास केवल हिंदुस्तान पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। उन्हें यह स्पष्ट हो गया था मुस्लिम शासकों की किस्मत का मध्य एशिया की घटनाओं से अब कोई संबंध नहीं रह गया था।

बरनी के विभिन्न अध्याय अलग-अलग शासकों पर केंद्रित हैं। हर अध्याय की शुरुआत में वे शाही राजकुमारों तथा विभिन्न अमीरों की सूची दी गई है। फ़िरोजशाह तुरालुक के शासनकाल को ग्यारह मुकद्माओं (अध्यायों) में बाँटा गया है (हालांकि मूलतः उनकी योजना 101 अध्याय लिखने की थी) जिनमें फ़िरोज तुग़लक़ के शासनकाल की सामान्य विशेषताओं का चित्रण किया गया है।

राजनीति के बारे में स्वयं के विचारों को बरनी ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। उनके ही विचार फ़तवा-ए-जहाँदारी में महमूद ग़ज़नी के विचारों के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। फ़तवा-ए-जहाँदारी कोई

ऐतिहासिक कृति नहीं है। इसमें चित्रित किया गया है कि बरनी की नज़र में सल्तनत काल की राजनीतिक विचारधारा क्या होनी चाहिए थी।

बरनी के अनुसार सुल्तान के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह इस्लाम का संरक्षण करे, शरीअत को लागू करे और गैर-मुसलमानों को दंड दे। राज्य का यह भी दायित्व है कि वह सभी तरह की अनैतिकता का निषेध करे। शासन का कार्यभार पवित्र एवं धार्मिक व्यक्तियों को सौंपा जाना चाहिए। साथ ही बरनी यह स्वीकार करते हैं कि धर्मनिरपेक्ष कानून (जवाबित) बहुत जरूरी है।

उच्च वंश की महत्ता के प्रति बरनी का मोह इस चिंता में प्रकट होता है कि लोग उच्च तुर्क वंश से संबद्ध न होते हुए भी सफलता हासिल कर लेते हैं। उनका विचार था कि नीचे ख़ानदान में जन्म लेने वालों को सरकारी सेवा में नहीं रखा जाना चाहिए। उन्होंने मुहम्मद तुग़लक़ की कटु आलोचना की है क्योंकि उसने निम्न कुल के मुसलमान बने लोगों को ऊँचे-ऊँचे पद दे दिए थे।

एक धार्मिक संप्रदाय के रूप में हिंदू भी बरनी के भय और असुरक्षा-भावना को व्यक्त करते हैं। उनके प्रति बरनी की कटु भाषा में यह झलकता है, इसके कुछ अत्यंत जटिल कारण थे और इसे केवल धार्मिक कट्टरता कहकर नहीं टाला जा सकता। इसके पीछे कुछ ऐतिहासिक तथा सामाजिक कारण थे जिनकी वजह से हिंदुओं के प्रति उनका रुख काफी कठोर हो गया।'हिंदू' शब्द के भाषा-गत प्रयोग की इस असावधानी की वजह से अनेक प्रकार की उलझनें व समस्याएँ पैदा हुई हैं।जिसका बहुत-से आधुनिक इतिहासकारों ने इतिहास के स्वरूप को विकृत करने में उपयोग किया है और उसके माध्यम से यह दिखाने की कोशिश की है कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास एक धार्मिक तनाव और दमन का दौर था।

बरनी ने फतवा-ए-जहाँदारी में अनेक लिखित स्रोतों को उद्धृत किया है, किंतु वे उन स्रोतों से बिल्कुल सही-सही उद्धृत नहीं करते। तारीख-ए-फिरोजशाही के लिए वे या तो अपने परिवार के लोगों या उनके सम्बन्धियों या फिर प्रत्यक्षदर्शियों से सुनी-सुनाई जानकारी का इस्तेमाल करते हैं हालाँकि वे उन लोगों के नाम-पते का उल्लेख प्रायः नहीं करते।

बरनी की व्याख्या की कोशिश करते हैं पर वे प्रायः ऐतिहासिक कार्य-कारण को दैवीय आनंद की नज़र से देखते हैं, साथ ही राजनीतिक तथा भौतिक शक्तियों के महत्व से उन्होंने इनकार नहीं किया है। किसी राजा की सफलता के लिए उसकी नीतियों की जिम्मेदारी को उन्होंने स्वीकार किया है।

तारीख-ए-फिरोजशाही का एक दोष यह है कि इसका कालानुक्रम दोषपूर्ण है। वे तिथि का संकेत कभी-कभार ही करते हैं और अक्सर ये ग़लत है। वार्तालाप को लिपिबद्ध करने की तकनीक भी ज्यादा भ्रामक है। ऐसा लगता है मानो वार्तालाप के समय वे स्वयं वहाँ मौजूद हों या जैसे उनके पास वार्तालाप की नकल मौजूद हो। इससे ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि बरनी की 'राजतंत्र विषयक धारणा' का बलबन की 'राजतंत्र विषयक धारणा' के रूप में उल्लेख किया जाने लगता है।

बलबन द्वारा सत्ता का एकीकरण, खिलज़ियों के शासनकाल में सल्तनत के स्वरूप में बदलाव, विशेष रूप से अलाउद्दीन के शासनकाल में मंगोलों के आक्रमण के खतरे का के बाद राज्य के स्वरूप में परिवर्तन, और मुहम्मद तुग़लक़ द्वारा विघटन का ज्वार रोकने के उपायों का बरनी ने विस्तृत वर्णन किया है। बरनी की रचनाओं

का उपयोग करते समय काफी सावधानी की जरूरत है क्योंकि पर्याप्त तथ्य (जैसे तिथि और युद्धों के विवरण) देने में उनकी दिलचस्पी नहीं है। उनका इतिहास स्पष्टतः आत्मपरक है। यह मध्यकालीन मानस की गतिविधियों के बारे में सूक्ष्म अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। यह मध्यकाल के राजनीतिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत मात्र नहीं है बल्कि वास्तव में इसका क्षेत्र कहीं अधिक व्यापक है। मध्यकाल के बौद्धिक इतिहास का अध्ययन करने हेतु बरनी की कृतियों से हमें अनिवार्यतः मदद मिलती है।

शम्स-ए सिराज़ अफ़ीफ़ की तारीख़-ए फ़िरोजशाही: बरनी की रचना के लगभग पचास वर्ष बाद शम्स-ए सिराज़ अफ़ीफ़ ने इसी नाम की पुस्तक लिखी। अफ़ीफ़ ने यह दावा किया कि उनकी रचना बरनी और मिनहाज़ के काम की तारीख़ का पूरक थी।यद्यपि इन इतिहासकारों की अपेक्षा अफ़ीफ़ का काम दिल्ली सल्तनत के आख़िरी हिस्से की कहानी कहता है, इसके बाद दिल्ली सल्तनत का विघटन होने लगा था। अफ़ीफ़ की तारीख़ फ़िरोजशाही 90 मुक़दमाओं या अध्यायों में लिखी गई है, वे बताते हैं कि उनका उद्देश्य बरनी द्वारा प्रस्तावित 101 अध्यायों को पूरा करना था। अफ़ीफ़ ने जब अपना इतिहास लिखना शुरू किया तब तक फ़िरोज़शाह तुग़लक़ की मृत्यु हो चुकी थी उनके द्वारा फ़िरोज़शाह तुग़लक़ के समय की जो तस्वीर हमारे सामने आती है उससे फ़िरोज़शाह का शासनकाल काफ़ी शांत और संघर्षों से मुक्त दौर के रूप में नज़र आता है। इस ग्रंथ में फ़िरोज़ शासनकाल के केवल सकारात्मक पक्षों पर बल दिया गया है और नकारात्मक पक्षों को अलग नज़रिए से देखा गया है।जैसे सेनापति के रूप में फ़िरोज़ की कमी को यह कहकर छुपाया गया है कि फ़िरोज़ शांतिप्रिय था और भ्रष्टाचार के मामलों को ऐसे दिखाया गया है कि फ़िरोज़ के लिए प्रजा का कल्याण ज़रूरी है।उनके लेखन पर तैमूर के हमले का प्रभाव नज़र आता है, इसलिए उनके लेखन में फ़िरोज़ का चित्रण एक उदार शासक के रूप में किया गया है।

अफ़ीफ़ का दृष्टिकोण हिंदुओं के प्रति बरनी और मिनहाज़ की तरह नकारात्मकता लिए हुए नहीं है, तैमूर के हमले में उन्होंने देखा कि एक मुस्लिम शासक द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों को समान रूप से प्रताड़ित किया था, इसलिए दरबार में हिंदुओं की भागीदारी को वे अधिक सहजता से लेते हैं।कार्य-कारण की व्याख्या वे भी ईश्वरीय हस्तक्षेप के रूप में करते हैं, जैसे फ़िरोज़शाह की सफलता अल्लाह की कृपा से हुई थी। वे फ़िरोज़शाह की स्थापत्य संबंधी गतिविधियों, नहरें बनवाने, बाग लगाने, शाही टकसाल की कार्यविधि, सैनिक पड़ाव, शाही आखेट, खाद्य पदार्थों की क़ीमत, सिक्का ढलाई के ब्यौरे, समारोहों, राजस्व-प्रबंधन आदि का विस्तार से वर्णन करते हैं। मिनहाज़ और बरनी की तुलना में अफ़ीफ़ ने सल्तनत काल के सामाजिक हालात पर अधिक रोशनी डाली है। पहली बार किसी मध्यकालीन इतिहासकार ने दरबार से इतर समाज के विषय लिखने का प्रयास किया है, संभवतः इसका कारण यह भी था कि जिस वर्ग से उनका संबंध था, वह अपनी शक्ति खो चुका था और उसकी जीवन की भव्यता अब वैसी नहीं रह गई थी।

फ़ुतुह-अस सलातीन: मुहम्मद तुग़लक़ के समय का वृत्तांत पेश करने वाली एक अन्य रचना ख़्वाजा अब्दुल मालिक इसामी की फ़ुतुह-अस सलातीन है।वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ का कटु आलोचक था। पद्य में लिखी गई इस रचना को बहमनशाह के दरबार में लिखा गया था।वह सुल्तान के बारे में नई जानकारियाँ प्रदान करता है।

अमीर ख़ुसरो की रचनाएँ : अमीर ख़ुसरो सच्चे अर्थों में इतिहासकार नहीं थे, किंतु उन्होंने छः सुल्तानों के साथ काम किया था और राजदरबार के साथ घनिष्ठता से जुड़े थे। इसलिए उनकी कृतियों का अत्यंत महत्व है।

इसके साथ ही उनका जुड़ाव सूफ़ी संत निज़ामुद्दीन औलिया के साथ भी था।मोहम्मद हबीब ने इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में ख़ुसरो की पाँच मसनवियों (काव्य रचनाएँ) के महत्व पर प्रकाश डाला है। ख़ुसरो की खजाएन-उल फ़ुतुह अलाउद्दीन ख़िलज़ी के शासन काल की महत्वपूर्ण जानकारी देती है। संभवतः अलादीन के दक्खन अभियानों के बारे में ख़ुसरो ने संक्षेप में आधिकारिक इतिहासकार कबीरूद्दीन द्वारा लिखा वृत्तांत दोहराया है। हबीब का मानना है कि कबीरूद्दीन के विवरण को आगे बढ़ाते हुए ख़ुसरो ने अलाउद्दीन के दक्खन अभियानों का सजीव वर्णन पेश किया है। यद्यपि पीटर हार्डी का मानना है कि 'अमीर ख़ुसरो अतीत का सार प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं करते हैं और अतीत के बारे में उनके वर्णन में विषय वस्तु की समरूपता और कालक्रम का अभाव है। इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी के अनुसार अमीर ख़ुसरो ने अपने इतिहासलेखन में 'युद्धों, विजय और दरबारी साजिशों से हटकर उस काल के 'सामाजिक सांस्कृतिक जीवन' पर ध्यान केन्द्रित किया जो प्रारंभिक फ़ारसी लेखकों के लेखन में काफी हद तक अनुपस्थित है।

ख़ुसरो की पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में बहुत कम ही जानकारी है। ख़ुसरो के पिता सैफुद्दीन लाचिन मध्य एशिया के एक तुर्की गुलाम थे और उनके पिता और ममेरे-नाना इल्तुतमिश के निम्न श्रेणी के गुलाम अमीरों में शामिल थे। जब वह सिर्फ सात साल के थे तो उनके पिता की मृत्यु हो गई। इसलिए उनके ममेरे-नाना इमाद-उल मुल्क ने दिल्ली में उनकी परवरिश की। ख़ुसरो ने पहले बलबन के भतीजे किशलू खान (मलिक छज्जु) के साथ काम किया। बाद में जलालुद्दीन ख़िलज़ी ने उन्हें नादिम-ए खास (मुख्य दरबारी) बनाया।

यहाँ हमारा उद्देश्य कवि के रूप में नहीं बल्कि ख़ुसरो की एक इतिहासकार के रूप में चर्चा करना है। इसलिए, हम बड़े पैमाने पर ख़ुसरो के किरान उस सादैन (मसनवी), आशिका (मसनवी), नूह सिपेहर, इजाज-ए खुसरवी (मसनवी), खज़ाएन-उल फ़ुतुह या तारीख ए अलाई और तुग़लकनामा (मसनवी) की चर्चा करेंगे। लिखने के लिए उनके द्वारा चुने गए ऐतिहासिक विषय उनकी पसंद से नहीं बल्कि तत्कालीन सुल्तान द्वारा लिखने के लिए कहे जाने पर चुने गए थे। इसलिए वे अपने सुल्तानों के नकारात्मक पक्षों को सामने रखने से बचते हैं। सुल्तान कैकुबाद के अनुरोध पर किरान उस सादैन की रचना की गई थी।इसमें कैक़ुबाद (पुत्र) और बुग़रा खान (पिता) के बीच मुलाकात और उनके दिल्ली से अवध तक प्रयाण का वर्णन है।यह दिल्ली के जीवंत सांस्कृतिक जीवन पर विशिष्ट रोशनी डालती है, ख़ुसरो का मानना है कि महत्व की दृष्टि से दिल्ली बुखारा और ग़ज़ना से बढ़कर थी।

ख़ुसरो की मिफ्ताह-उल फुतूह (मसनवीं) जलालुद्दीन ख़िलज़ी के पदारोहण और उनकी सैन्य उपलब्धियों से सम्बन्धित है। ख़ुसरो जलालुद्दीन की एक सेनापति और एक इंसान के रूप में भरपूर प्रशंसा करता है। उसने मंगोलों और कुरमान और अफगानों के खिलाफ एक सफल योद्धा के रूप जलाल की शुरूआती जीवन यात्रा पर प्रकाश डाला है। वह सुल्तान की तुर्की कुलीनों के खिलाफ संघर्ष पर भी चर्चा करता है। ख़ुसरो न केवल रणथम्भौर की घेराबन्दी की चर्चा करता है, जिसमें वह खुद भी शामिल था, बल्कि उस क्षेत्र के भूदृश्य का भी सजीव वर्णन प्रस्तुत करता है, जिससे उसे काफ़ी आकृष्ट किया था, विशेष रूप से झाइन शहर, उसके मरूस्थल और नदियों ने।

अलाउद्दीन ख़िलज़ी के शासन काल उसने एक नई शैली यानि गद्य में लिखना शुरू किया। ख़ज़ाएन-उल फुतूह या तारीख-ए अलाइ, आशिका, और नूह सिपेहर उसकी रचनात्मक प्रतिभा को दर्शाते हैं। खजाएन-उल फुतूह या तारीख-ए अलाई मुख्यतः अलाउद्दीन के दक्खन अभियानों से सम्बन्धित है, सुल्तान बनने से पूर्व 1295

में देवगीर की जीत से लेकर 1312 तक। खज़ाएन उल फुतुह अलाउद्दीन ख़िलज़ी के द्वारा अपने चाचा और ससुर जलालुद्दीन ख़िलज़ी की नृशंस हत्या के बारे में मौन है।

इसमें अलाउद्दीन की भवन निर्माण गतिविधियों (सीरी), मरम्मत कार्यों (जामा मस्जिद और हौज-ए ख़ास) के साथ-साथ ए सुल्तानी), मूल्य नियंत्रण के उपाय, दार-उल अदल, कपड़ों के बाजार की स्थापना, शराबबंदी, वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध, शान्ति और यात्रियों के लिए सड़कों पर सुरक्षा, आदि के बारे में भी बहुत संक्षिप्त विवरण है। उसने अलाउद्दीन के मूल्य नियन्त्रण उपायों को एक 'जन-कल्याणकारी उपाय बतायाहै, जबकि बरनी इसे मंगोल हमलों से निपटने के लिए सेना को मजबूत करने के प्रयास के रूप में देखता है।

देवल रानी ख़िज़्र ख़ान (आशिकी) देवल रानी और अलाउद्दीन के पुत्र ख़िज़्र ख़ान की एक त्रासदीपूर्ण प्रेम कहानी है। नूह सिपेहर मुबारक ख़िलज़ी के दक्खन अभियानों से सम्बन्धित है।इसमें उस क्षेत्र में बोली जाने वाली विविध बोलियों पर भी चर्चा मिलती है। इन दोनों ग्रंथों में दरबार के अनुष्ठानों और समारोहों, शाही जन्मोत्सवों और शाही विवाहों की जीवंतता पर प्रकाश डाला गया है।मिसाल के लिए, देवल रानी और ख़िज़्र ख़ान की शादी की रस्मों का विस्तृत वर्णन या नूह सिपेहर में मुबारक ख़लजी की देवगीर सफलता के बाद वापसी पर दिल्ली में विजय समारोह और शाहजादा मुहम्मद का जन्मोत्सव।

अमीर ख़ुसरो के तुगलकनामा में गियासुद्दीन तुगलक की विजयों की प्रशंसा की गई है। तुगलकनामा से ही हमें तुगलक वंश के संस्थापक ग़ाज़ी मलिक के शुरुआती जीवन का विवरण प्राप्त होता है, ग़ाज़ी मलिक अपने शुरूआती जीवन में अपने आपको मर्द-ए आवारा कहकर संबोधित करता था। उसे जलालुद्दीन ख़िलज़ी ने अपनी सेवा में रखा और बाद में वे अलाउद्दीन ख़िलज़ी के भाई उलुग खान से जुड़ गया। रणथम्भौर की घेराबन्दी के दौरान अलाउद्दीन का उसने विशेष रूप से ध्यान खींचा।

1.3.2 इंशा साहित्य

इंशा का शाब्दिक अर्थ 'रचना करने 'से है, मध्यकाल में इसका तात्पर्य व्यक्तिगत और राजकीय पत्राचारों से था। इन पत्रों से राज्य के कामकाज के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी पता चलता है। सल्तनत काल के कुछ ही इंशा दस्तावेज़ उपलब्ध हैं, जिनमें सबसे प्रमुख अमीर ख़ुसरो की एजाज़-ए ख़ुसरवी और आइन-उल मुल्क अब्दुल्ला माहरु की इंशा-ए माहरु है। दक्षिण में रचित 15वीं-16वीं सदी की इंशा संग्रहों में महमूद गवाँ की रियाज़-ए इंशा और ताहिर हुसैन की इंशा-ए ताहिर शामिल हैं। इंशा संग्रह मुख्यतः दो तरह के हैं, एक तो पत्र लेखन शैली के नमूनों को सामने रखने के लिए रचे गए थे, जो वास्तविक नहीं हो सकते थे। महमूद गवाँ की लिखी गई मनाज़िर-उल इंशा ऐसा ही एक ग्रंथ है, वहीं अमीर ख़ुसरो की एजाज़-ए ख़ुसरवी जैसे ग्रंथों में हमें वास्तविक पत्र व्यवहार के उदाहरण मिलते हैं। रशीदुदीन फ़ज़लुल्लाह की मुक़ातबात-ए राशिदी में हमें खिलज़ियों के इल ख़ानिदों के साथ संबंधों के विषय में पता चलता है, इन पत्रों से यह पता चलता है कि एक ओर तो जहाँ अलाउद्दीन मंगोलों के ख़तरे के विषय में अत्यंत सचेत था, वहीं उसने इल ख़ानिद के साथ संबंधों को बनाए रखने की कोशिश की थी।

1.3.3 सूफ़ी लेखन

सूफी लेखन में तीन प्रकार के साहित्य शामिल हैं- मलफ़ूज़ात, मक्तूबात (पत्र) और सूफियों की जीवनी सम्बन्धी वृत्तांत। सूफी साहित्य में मलफ़ूज़ात विशिष्ट स्थान रखते हैं। मलफ़ूज़ात सूफियों की वार्ताएँ हैं। ये मुख्यतः नैतिक और धार्मिक पहलुओं को से जुड़े हैं, फिर भी वे सामान्य जीवन और आम लोगों की स्थितियों पर विशिष्ट रोशनी डालते हैं, इस तरह की सामग्री ज़ाहिर तौर पर आधिकारिक इतिहास-लेखन और इतिवृत्तों में नहीं मिलती है। के. ए. निज़ामी के अनुसार सूफी लेखन से मिली जानकारी राजनैतिक वृत्तांतों की समीक्षा का अवसर प्रदान करती है। भारत में इस तरह के लेखन की शुरुआत अमीर हसन सिज़्ज़ी की फ़वायद-उल फ़ुआद से होती है। यह शेख निज़ामुद्दीन औलिया की वार्ताओं का संकलन है।

मिनहाज़ के विवरणों के विपरीत फ़वायद-उल फ़ुआद रज़िया सुल्तान के तख्तापलट में नूर तुर्क की भूमिका को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करती है। एक अन्य महत्वपूर्ण मलफ़ूज़ात सुरूर-अस सुदूर था, यह शेख हमीदुद्दीन नागौरी और उनके पोते फ़रीदुद्दीन महमूद के मध्य संवाद है।मुहम्मद बिन तुगलक की शेख हमीदुद्दीन नागौरी के प्रति गहरी श्रद्धा का हमें इससे पता चलता है। अन्य महत्वपूर्ण मलफ़ूज़ात हमीद कलंदर की ख़ैर-उल मजालिस है जो शेख नसीरूद्दीन चिराग के वार्तालाप का संकलन है।

मकतूबात सूफ़ी संतों के पत्राचार हैं, इनके माध्यम से वे अपने मुरीदों से दूर रहकर भी उन्हें शिक्षित किया करते थे। इसमें वे अपने मुरीदों की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं।एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत सूफ़ी संतों की जीवनियाँ हैं। यद्यपि इनका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए क्योंकि अक्सर इनमें सूफ़ियों की महिमागान के लिए अतिरंजित वृत्तांत और चमत्कार, आदि शामिल होते हैं।

1.3.4 संस्कृत साहित्य

यद्यपि संस्कृत ने भाषा के रूप में उत्तर भारत में अपने राजकीय संरक्षण को खो दिया था, तथापि राजस्थान, दक्षिण भारत, गुजरात और बंगाल के क्षेत्र में बड़ी संख्या में संस्कृत ग्रंथों की रचना की गई है. यद्यपि, पूर्व मध्यकाल से चली आ रही है एक प्रवृत्ति ने इस समय में और भी तीव्रता धारण कर ली, संस्कृत में मौलिक लेखन की बजाय भाष्य, टिप्पणी, टीका, सार-संग्रह इस तरह के ग्रंथ अधिक मात्रा में लिखे गए. तथापि, विधि, खगोलशास्त्र, गणित, ज्योतिषी व न्यायशास्त्र इत्यादि पर बड़ी संख्या में ग्रंथ लिखे गए हैं। विजय नगर में संस्कृत कवियों को संरक्षण प्राप्त था. वहीं, गुजरात में तथा पश्चिम भारत के अन्य क्षेत्रों में जैन विद्वानों ने भी संस्कृत साहित्य के विकास में योगदान दिया. उत्तरी भारत में मिथिला संस्कृत के एक प्रमुख केंद्र के रूप में उभरा, सल्तनत युग के अंत में बंगाल और ओड़ीसा में चैतन्य प्रभु के आंदोलन के फलस्वरूप नाटक, चम्पू और काव्य जैसी विधाओं में नए संस्कृत ग्रन्थों का सृजन हुआ।

कवियों ने अपने राजकीय संरक्षकों के कुटुम्बों की गाथाओं को आधार बनाते हुए कई प्रमुख ग्रन्थ लिखे। पृथ्वीराज विजय और हम्मीर महाकाव्य ऐसे ग्रंथों के उदाहरण है। उदयराज द्वारा अपने संरक्षक महमूद बेगड़ा की जीवनी राज विनोद के रूप में लिखी गई थी। जोनराज और श्रीवर ने राजतरंगिणी के द्वितीय और तृतीय संस्करणों को सृजित किया, जिनमें पंद्रहवीं सदी तक के इतिहास का संकलन है। इस समय कई संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी में अनुवाद हुआ, विशेष रूप से फ़िरोज़शाह तुग़लक़ और सिकंदर लोदी की समय में। कश्मीर के शासक जैनुल आबदीन ने राजतरंगिणी का फ़ारसी में अनुवाद भी करवाया। ज़िया नक़्शवी भी ऐसे प्रमुख व्यक्ति थे जिसने संस्कृत

कहानियों का तूतीनामा के नाम से फारसी में अनुवाद किया और साथ ही कामशास्त्र पर लिखी पुस्तक कोकशास्त्र को भी फ़ारसी भाषा में अनुवादित किया था।

1.3.5 क्षेत्रीय-भाषा साहित्य

विद्वानों का यह मानना है कि सामंतवादी राजनीतिक परिस्थितियों, नए प्रकार के भक्ति संप्रदायों के उदय और ब्राह्मणों की कमज़ोर होती हुई शक्ति के कारण इस काल में क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार हुआ और इसमें बड़े स्तर पर साहित्य का सृजन हुआ। शेल्डन पोलॉक ने इसे भारत की दूसरी भाषायी क्रांति का नाम दिया है, जब संस्कृत का स्थान क्षेत्रीय भाषाओं ने ले लिया और कालांतर में उत्तर भारत के साथ-साथ महाद्वीप की बड़े क्षेत्र में फ़ारसी भाषा ने राजकीय भाषा का स्थान ले लिया था।

मध्यकाल में हिंदी का ब्रज-भाषा, राजस्थानी, अवधी, मालवी इत्यादि कई रूपों में विकास हुआ था। हिंदी भाषा के संबंध में शुरुआती तौर पर अपभ्रंश भाषा में कई रासो प्रकार के साहित्य हमें देखने को मिलते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ग्रंथ पृथ्वीराज रासो खुमान रासो व बीसल देव रासो हैं। इन राजकीय संरक्षण में लिखे गए ग्रंथों के अलावा बौद्ध और सिद्धों व नाथपंथियों ने भी इस समय हिंदी भाषा के साहित्य के विकास में अपूर्व योगदान दिया था। इसी समय हमें खड़ी बोली के प्राथमिक साक्ष्य अमीर ख़ुसरो की ख़लिक़ बारी से मिलते हैं. इसके बाद 14वीं-15वीं सदी में हमें कबीर, नानक रविदास, मीराबाई इत्यादि निर्गुण भक्ति कवियों के साहित्य मिलते हैं, जो उत्तर भारत में हिंदी भाषा के विकास के साथ-साथ ही यहाँ नए प्रकार के धार्मिक रुझान के विस्तार का भी संकेत प्रदान करते हैं।

हिन्दी साहित्य में सूफ़ी संतों की प्रभाव का भी इसके विकास में योगदान नज़र आता है. सूफ़ी कवियों ने ही इस्लामिक रहस्यवाद और भारतीय दंत कथाओं लोक कथाओं को मिलाकर अपने साहित्य की रचना की। मुल्ला दाऊद की चंदायन, क़ुतुबन की मृगावती अवधी भाषा में लिखी गई ऐसी प्रमुख रचनाएँ हैं. वही मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत सूफ़ी प्रेमाख्यानों का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना है।

तेरहवीं सदी के बाद बंगाल में बंगाली साहित्य की मुख्य धारा में तीन प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं. वैष्णव भक्ति साहित्य, महाकाव्यों के अनुवाद और मंगल काव्य पंद्रहवीं सदी में चंडीदास ने वैष्णव भक्ति काव्य की रचना की। सुल्तान हुसैन शाह और नुसरत शाह के समय में ही बंगाली कवियों कवींद्र और श्रीकर नंदी ने महाभारत का बांग्ला में अनुवाद किया। कृत्तिवास ओझा ने रामायण को बंगाली पदों में सृजित किया। मालधर बसु ने भागवत को श्रीकृष्ण विजय के नाम से बांग्ला में पुनः रचित किया. पंद्रहवीं और सोलहवीं सदी में मानिक दत्त और मुकुंदराम ने मंगल काव्यों की रचना की।

असमी भाषा की प्रथम कवयित्री हेमा सरस्वती ने 13वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रह्लाद चरित और हर-गौरी संवाद की रचना की।14वीं शताब्दी के बाद कमाटा और चाचर असमी साहित्य के विकास के केन्द्र बने। 14वीं शताब्दी के सबसे लोकप्रिय असमी कवि माधव कुंडाली ने रामायण को असम के आम लोगों की भाषा में प्रस्तुत कर लोकप्रिय बनाया। 15वीं शताब्दी में शंकरदेव के नेतृत्व में वैष्णव भक्ति के प्रसार ने असमी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।असमी भाषा की सबसे महत्वपूर्ण वैष्णव धार्मिक कृति कीर्तनघोष की अधिकांश रचनाएँ शंकरदेव द्वारा रचित थीं।

चौदहवीं सदी में, सरलादास ने उड़िया में महाभारत की रचना की, जिसे ओडीशा के लोग एक महान महाकाव्य मानते हैं। चैतन्य के वैष्णव आंदोलन के प्रसार के बाद उड़िया साहित्य ने एक नए युग में प्रवेश किया, विशेष रूप से चैतन्य के सहयोगी जगन्नाथदास ने भागवत पुराण का उड़िया भाषा में बहुत लोकप्रिय संस्करण तैयार किया था.

तेरहवीं सदी के उत्तरार्ध में मराठी भाषा-साहित्य छंद रूप में सामने आया। शुरुआती मराठी साहित्य पर नाथपंथियों का प्रभाव था, विवेक दर्पण और गोरखगीता स्पष्टतया नाथ पंथ के प्रभाव में लिखी गई प्रारंभिक मराठी रचनाएँ थीं। नाथ पंथ की परंपरा से संबंधित मुकुंद राव द्वारा लिखा गया विवेक सिंधु इस समय का सबसे प्रमुख ग्रंथ माना गया है. नाथपंथ के अलावा मराठी साहित्य के शुरुआती उदय में महानुभाव पंथ का योगदान भी रहा है। ज्ञानदेव द्वारा भागवत पर भावार्थ दीपिका नाम से एक भाष्य लिखा गया, जो ज्ञानेश्वरी के नाम से विख्यात है. ये संत वारकरी संप्रदाय से संबंधित थे। वारकरी संप्रदाय का शुरुआती मराठी साहित्य के विकास में काफ़ी योगदान रहा है, एक अन्य प्रमुख संत नामदेव थे जिन्होंने मराठी के अभंग शैली के पद्य रचनाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इसी तरह दक्षिण भारतीय भाषाओं में तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं में नए प्रकार का साहित्य सामने आया है। जहाँ राजकीय संरक्षण में कुछ प्रबंध ग्रन्थ लिखे गए, वहीं धार्मिक ग्रंथों के रूप में भी विशिष्ट साहित्य का सृजन हुआ। चोल साम्राज्य के पतन के साथ ही तमिल साहित्य का महान् युग समाप्त हुआ। विल्लीपुत्तुरार ने महाभारत का तमिल अनुवाद प्रस्तुत किया जो भारतम् कहलाया और तमिल-भाषी लोगों में लोकप्रिय हुआ। दूसरा महान् कवि अरुणागिरिनाथ था जिसने मुरुगन देवता की प्रशंसा में एक गीतात्मक भक्ति रचना तिरुप्पगल की रचना की।

13वीं सदी से तेलुगु साहित्य का उन्नति काल प्रारंभ हुआ। 14वीं शताब्दी के प्रथम भाग का प्रमुख तेलुगु कवि ऐराप्रगदा था। उन्होंने साहित्यिक लेखन की चम्पु शैली को प्रचलित किया। इस शैली में उन्होंने रामायण की रचना की। उन्होंने महाभारत के एक खंड और एक अन्य वैष्णव संस्कृत कृति हरिवंश का तेलुगु में अनुवाद किया। श्रीनाथ ने श्रीहर्ष के नैषध काव्य का तेलुगु अनुवाद किया। उनका समकालीन, पोटाना, भी एक महान् कवि था जिसने भागवत् पुराण को तेलुगु में अनुदित किया। तेलुगु साहित्य ने विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय के शासन काल में सर्वोच्च ऊँचाइयाँ प्राप्त की, जिसने स्वयं तेलुगु में अमुक्तमाल्यदा की रचना की। उसने कई तेलुगु कवियों को संरक्षण प्रदान किया जिनमें से प्रमुख पेड्डाना थे। पेड्डाना ने तेलुगु में मनु-चरित की रचना की।

कन्नड़ साहित्य अपने शुरुआती दौर में जैन लेखकों से प्रभावित रहा। 12वीं शताब्दी के मध्य से वीरशैववाद के लोकप्रिय धार्मिक आंदोलन ने कन्नड़ भाषी क्षेत्र के साहित्य और लोगों को प्रभावित किया। वीरशैव आंदोलन के प्रणेता बासव और उनके अनुयायियों की धार्मिक साहित्यिक रचनाओं (वचन) ने कन्नड़ साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। चौदहवीं सदी में भीम कवि ने बासव पुराण की रचना की। उससे पूर्व 13वीं सदी के दो अन्य वीरशैव कवियों, हरीश्वर और राघवंका, ने अपनी रचनाओं को नवीन कन्नड़ शैली में लिखा। बाद के होयसल शासकों ने बहुत से कन्नड़ कवियों और लेखकों को संरक्षण प्रदान किया। रूद्र भट्ट ने चम्पू शैली में

जगन्नाथ विजय की रचना की। कुमार व्यास ने 15वीं शताब्दी के मध्य में महाभारत का कन्नड़ अनुवाद प्रस्तुत किया।

1.3.6 यात्रा वृत्तांत

इस काल के दौरान कई प्रकार के यात्री हिन्दुस्तान है की यात्रा पर आए थे और इनमें अरब यात्रियों से लेकर मार्को पोलो जैसे इतालवी यात्री, डोमिंगो पाएस, नूनिज़ जैसे पुर्तगाली और अफ़ानासी निकितिन जैसे रूसी यात्री भी शामिल थे।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण इब्ने बतूता था. यह मोरक्को का निवासी था। जिसने 13 33 सोचो तीसरी में उत्तर पश्चिम से भारत में प्रवेश किया और44 में वह भारत सेबाहर चला गया था। चूंकि वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ के दरबार में सात साल तक काज़ी के रूप में नियुक्त रहा था न कि उसका ग्रंथ करेला तो मुहम्मद बिन तुग़लक़ के समय के इतिहास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसने प्रशासनिक व्यवस्था व्यापार राजस्व व्यवस्था भारत के कृषि उत्पादों के नाप तोल की पद्धतियों मुहम्मद बिन तुग़लक़ के कराची अभियान राजस्व राजधानी परिवर्तन के विषय में अत्यंत दिलचस्प जानकारियां प्रस्तुत की है कि वे सबसे महत्वपूर्ण है कि उसके द्वारा दी गई डाक प्रणाली की जानकारी जो हमें अन्यथा उपलब्ध नहीं है।

यद्यपि, अल-उमरी कभी भारत नहीं आया लेकिन भारत आने वाले यात्रियों की रचनाओं के आधार पर अपनी मसालिक-उल अबसार फी ममालिक इल-अमसार में उसने भारत के बारे में विवरण प्रदान करता है।इन विवरणों में सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के प्रति विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है।

मार्को पोलो एक वेनिस व्यापारी था। 1292 में चीन से स्वदेश लौटते हुए वह दक्षिण भारत में रुका। वह तमिलनाडु में आधुनिक तंजावुर के पास पांड्यों के राज्य में उतरा था। कुछ महीने तट के चारों ओर घूमते हुए, अंततः गुजरात से बाहर निकल गया। मार्को पोलो ने धर्म और जाति, रीति-रिवाजों और व्यवसायों, सौंदर्यता और कामुकता के मानदंडों की कई प्रथाओं को कुशलता से दर्ज किया है।

अफानासी निकितिन एक रूसी व्यापारी था जो पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत आया था। उसने 1466 में त्वेर, रूस से अपनी यात्रा शुरू की तथा 1469 में वह दीव पहुँचा। उसका यात्रा-वृत्तांत वर्तमान में वॉयजेस बियोंड थ्री सीज़ के नाम से विख्यात है। निकितिन ने भारत आने की कोई पूर्व योजना नहीं बनाई थी, जैसे कि अन्य यूरोपीय यात्रियों ने किया, यह एक सांयोगिक यात्रा थी, और निकितिन अपने विवरण में यह स्वयं स्पष्ट करता है, अपने कारवाँ के तार्तारों द्वारा लूट लिए जाने के बाद उसने भारत में घोड़े के व्यापार के महत्व के संबंध में सुना और घोड़ा खरीदकर भारत में लाभ कमा ने के इरादे से वह भारत आया। उसने भारत को न केवल एक अजनबी और विचित्र देश के रूप में देखा, बल्कि स्पष्ट रूप से अनैतिक या कम से कम विचित्र आदतों के देश के रूप में देखा था। उसने भारत के निवासियों की वेशभूषा खानपान ग़ैर इस्लामी धार्मिक त्योहारों के विषय में विशेष चर्चा की है जुन्नार, चौल, बीदर और गुलबर्गा के बारे में वर्णन करते हुए वह नगरीकरण और जनसंख्या की बसावट के बारे में विशेष जानकारियां प्रदान करता है।

पुर्तगाली मूल के यात्री डोमिंगो पायस और नूनिज़ सोलहवीं शताब्दी में विजयनगर आए और उन्होंने यहाँ के राज्य, लोगों, उनकी संस्कृति, व्यापार तथा राजनीतिक विकासक्रम के संबंध में जीवंत विवरण उपलब्ध कराया। ये विवरण विजयनगर साम्राज्य के इतिहास की पुनर्रचना हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। एक ब्रिटिश सिविल सेवक रॉबर्ट सीवेल ने अ फॉरगॉटन एंपायर विजयनगरः कंट्रीब्यूशन टू द हिस्ट्री ऑफ इंडिया (1909) की रचना की जिसमें इन ऐतिहासिक जानकारी से भरे विवरणों के अनुवादों को शामिल किया गया था।

डोमिंगो पायस कृष्णदेवराय के काल में 1520-1522 में विजयनगर आया. पायस ने विजयनगर को नरसिंह का राज्य कहा है। इसने नगर के दुर्गीकरण, सड़कों और विभिन्न बाज़ारों की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई है. साथ ही इस नगर के मुख्य मंदिरों, विरुपाक्ष तथा विठ्ठलस्वामी के मंदिर का वर्णन किया है। पायस ने महानवमी उत्सव का लंबा विवरण प्रस्तुत किया है जिसे विजय भवन (द हाउस ऑफ विक्ट्री) में आयोजित किया जाता था। फर्नाओ नूनिज पुर्तगाली अश्व-व्यापारी था, जिसने 1536-37 के बीच अपना विवरण लिखा। विशेष रूप से विजयनगर के इतिहास, इसकी स्थापना, इसके तीन राजवंशों के उत्तरोत्तर शासन और उनके द्वारा दक्खन के सुल्तानों तथा ओडिशा के रायों के साथ लड़े गए युद्धों के बारे में उसने विस्तार से चर्चा की है। नूनिज़ ने भी महानवमी उत्सव का विस्तृत उल्लेख किया है, विशेष रूप से शाही महिलाओं द्वारा पहने गए जवाहरातों तथा राजा की सेवा में कार्यरत हज़ारों महिलाओं का उसका वर्णन उल्लेखनीय है।

1.4 सारांश

सल्तनत काल के इतिहास लेखन में विभिन्न प्रकार के स्रोतों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जहाँ फ़ारसी तारीख़ लेखन हमें राजनीतिक-सांस्कृतिक इतिहास के विषय में गहरी जानकारी प्रदान करते हैं, वही यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि इस तरह के वृत्तांत लेखन राजदरबार के आस-पास ही अपने को सीमित रखते हैं, इनके वृत्तान्त अक्सर अपने संरक्षक सुल्तानों की प्रशंसा के रंग में रंग होते हैं और इनका एक कुलीन नज़रिया स्पष्ट रूप से हमें देखने को मिलता है. स्मारकों और अन्य पुरातात्विक सामग्रियों के अध्ययन से हमें उस समय की भौतिक बनावट की अधिक विस्तृत जानकारी मिलती है, वहीं उस समय होने वाले वास्तुकला के प्रयोगों, धार्मिक रुझानों और शिल्पकारों के बीच होने वाले परस्पर संवाद की स्थिति का पता चलता है। इसके साथ ही भारत में जन्म लेने वाली नई क़िस्म की हिंद-इस्लामी शैली के विषय में भी इनसे काफ़ी कुछ जानने को मिलता है। हिंदुस्तान में मौजूद वास्तुकला की विविधता के विषय में भी स्पष्टतः बहुत कुछ उजागर होता है. सिक्कों के अध्ययन से हमें विशेष रूप से धातु-मुद्रा प्रणाली के प्रचलन, व्यापारिक स्थिति, राज्य की आर्थिक प्रणाली में भागीदारी, राजस्व व्यवस्था के स्वरूप और विदेशी व्यापार के संबंध में काफ़ी कुछ जानकारी मिलती है। सूफ़ी और भक्ति संतों के काव्यों से जहाँ हमें आम जनता के धार्मिक विश्वासों के विषय में ज्ञात होता है, वहीं इस्लामी और हिंदू सांस्कृतिक तत्वों के बीच आदान-प्रदान का भी पता चलता है। इसके साथ ही संतों की इन वाणियों ने क्षेत्रीय भाषा साहित्य के विकास में जिस एक नई परिघटना को विकसित किया था उसका भी पता चलता है। यात्रा वृत्तांत दूसरों के नज़रिए से हिंदुस्तान के इतिहास को देखने के लिए एक उपयुक्त साधन साबित होते हैं, क्योंकि जिन तत्वों को यहाँ के लेखक सामान्य तौर पर नज़रअंदाज़ करके चलते हैं, बाहर से आने वाले यात्री अत्यंत दिलचस्प पाते हुए उनका वर्णन करते हैं। इब्न-बतूता द्वारा पान के प्रचलन का वर्णन इसी प्रकार का एक उदाहरण है, जिसका

ज़िक्र किसी भी भारतीय ग्रंथ में नहीं मिलता लेकिन इब्न बतूता ने इससे विशिष्ट पाकर इसका विस्तृत वर्णन किया है. इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन द्वारा आपने मध्यकालीन इतिहास के विभिन्न प्रकार के स्रोतों तथा उनके तुलनात्मक महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त की है।

1.5 शब्दावली

जीतल और टंका	सल्तनतकालीन धात्विक सिक्के, चाँदी का टंका और ताम्बे का जीतल।
इंशा	मध्यकालीन पत्र साहित्य
मलफ़ूजात	सूफ़ी संतों का वार्ता साहित्य

1.6 निबंधात्मक प्रश्न

1. फ़ारसी तारीख़ लेखन से आप क्या समझते हैं, इस सम्बंध में बरनी की तारीख़ के महत्व पर प्रकाश डालिए.
2. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतों के रूप में पुरातात्विक स्रोतों का वर्णन कीजिए.
3. मध्यकालीन संस्कृत अभिलेखों पर एक टिप्पणी लिखिए.
4. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लिए यात्रा वृत्तांतों का क्या महत्व है.

1.7 संदर्भ ग्रंथ

- बेन्द्रे. वी. एस्कृ (1944) स्टडी ऑफ मुस्लिम ट्रन्सक्रिप्शन्स (बॉम्बेः कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस). हबीब, मोहम्मद, (1950) 'चिश्ती मिस्टिक रिकॉर्डस ऑफ द सल्तनत पीरियड', मिडिवल इंडिया क्वाटरली, भाग 1
- हबीब, मोहम्मद, (1927) 'हजरत अमीर खुसरो ऑफ दिल्ली', बम्बई, पुनः मुद्रित, कलैक्टेड वर्क्स ऑफ प्रोफेसर मोहम्मद हबीब, सं. के. ए. निज़ामी, नई दिल्ली।
- हार्डी, पीटर, (1966) हिस्टोरियन्स ऑफ मिडिवल इंडिया (लंदनः लूज़ाक एंड कंपनी), A हसन, मोहिबुल, (2018) [1982]) हिस्ट्री एन्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मिडिवल इंडिया (दिल्लीः आकारबुक्स)
- प्रसाद, पुष्पा, (1990) संस्कृत इन्सिक्रिप्सन्स ऑफ दिल्ली सल्तनत 1195-1526 (दिल्ली आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)
- सिद्दीकी, आई. एच, (2014) इन्डो-पर्शियन हिस्टोरियोग्राफी टू द फोर्टिन्य सेन्चुरी (नई दिल्ली प्राइमस बुक्स)

इकाई दो- गुलाम वंश: कुतुबुद्दीन ऐबक , इल्तुतमिश, रजिया तथा बलवन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 कुतबुद्दीन ऐबक द्वारा तथाकथित गुलाम वंश की स्थापना

2.3.1 सुल्तान बनने से पहले कुतबुद्दीन ऐबक के कार्य

2.3.2 कुतबुद्दीन ऐबक के सुल्तान बनने के समय की राजनीतिक दशा

2.3.3 सुल्तान के रूप में कुतबुद्दीन ऐबक

2.3.4 कुतबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद आरामशाह का सुल्तान के पद पर प्रतिष्ठित होना

2.4 सुल्तान के रूप में इल्तुतमिश

2.4.1 इल्तुतमिश का प्रारम्भिक जीवन

2.4.2 सुल्तान बनने के बाद इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएं

2.4.3 इल्तुतमिश द्वारा अपनी कठिनाइयों का निराकरण

2.5 इल्तुतमिश के प्रशासनिक कार्य

2.5.1 वंशानुगत शासन

2.5.2 इक्ता प्रणाली

2.5.3 न्याय व्यवस्था

2.5.4 मुद्रा सम्बन्धी सुधार

2.5.5 तुर्कीने चहलगानी

2.5.5 तुर्कीने चहलगानी

2.6 सुल्तान रज़िया

2.6.1 रज़िया का राज्यारोहण

2.6.2 रज़िया द्वारा विरोधियों का दमन

2.6.3 रज़िया का पतन

2.7. सुल्तान बलबन

2.7.1 बलबन का राज्यारोहण

2.7.2 बलबन की रक्त एवं लौह की नीति

2.7.3 जहांदारी

2.7.4 बलबन का राजत्व का दैविक सिद्धान्त

2.8 साराशं

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सन् 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध में मुहम्मद गोरी की निर्णायक विजय तथा भारत में राजनीतिक सत्ता के परिवर्तन के फलस्वरूप दिल्ली सल्तनत की स्थापना 1206 ईसवी में हुई थी। दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक चरण में तीन राज्य वंशों के संस्थापक अपने प्रारम्भिक जीवन में गुलाम रह चुके थे इसलिए भ्रमवश इन तीन राज्य वंशों को एक साथ मिलाकर प्रायः गुलाम वंश के नाम से जाना जाता है। दिल्ली संल्तनत के पहले सुल्तान कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली सल्तनत को गज़नी साम्राज्य से अलग कर व्यावहारिक दृष्टि से एक स्वतन्त्र राज्य का रूप प्रदान किया परन्तु उसको ठोस प्रशासनिक ढांचा व राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय इल्तुतमिश को जाता है। इल्तुतमिश की पुत्री रज़िया ने सुल्तान के रूप में अपनी योग्यता का परिचय दिया परन्तु अमीरों के प्रबल विरोध के कारण उसका पतन हो गया।

सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में वास्तविक शक्ति उसके वज़ीर गियासुद्दीन बलबन के हाथों में रही। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के बाद बलबन खुद सुल्तान बन बैठा। बलबन तथाकथित गुलाम वंश का सबसे शक्तिशाली एवं सफल शासक था, उसने लौह एवं रक्त की नीति को अपना कर अपने राज्य को सुदृढ़ किया। बलबन ने अपने राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। उसने राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण कर सुल्तान के पद और उसकी प्रतिष्ठा में अपार वृद्धि की और शासक के अधिकार व उसके कर्तव्य को एक नया आयाम प्रदान किया।

तथाकथित गुलाम वंश के शासकों ने 13 वीं शताब्दी में उत्तर भारत में मुस्लिम शासन को स्थायित्व प्रदान करने में आंशिक सफलता अवश्य प्राप्त की किन्तु प्रशासनिक दृष्टि से उनकी उपलब्धियां बहुत सीमित रहीं। इस काल में आन्तरिक विद्रोह तथा वाह्य आक्रमणों की समस्या निरन्तर बनी रही। इस काल में शासकों ने प्रजा के हित में कार्य करने का कोई उल्लेखनीय प्रयास नहीं किया और न ही प्रशासनिक ढांचे को सुदृढ़ करने में कोई सफलता प्राप्त की, उनको प्रजा के हृदय पर राज करने में तनिक भी सफलता नहीं मिली और उनका अस्तित्व केवल तलवार के बल पर बना रह सका।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपकों को भारत में मुस्लिम शासन काल के प्रारम्भिक चरण की चुनौतियों, इस काल के प्रमुख शासकों की उपलब्धियों तथा उनकी असफलताओं से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- तथाकथित गुलाम वंश के प्रमुख शासकों के समक्ष कठिनाइयां तथा उनका निराकरण करने हेतु उनके प्रयास।

2- भारत में मुस्लिम शासन के प्रारम्भिक चरण का प्रशासनिक ढांचा।

3- उत्तराधिकार का नियम, सुल्तान-अमीर सम्बन्ध तथा राजत्व का सिद्धान्त।

4- तथाकथित गुलाम वंश के सुल्तानों द्वारा आन्तरिक विद्रोहों एवं वाह्य आक्रमणों से निपटने के प्रयास।

2.3 कुतबुद्दीन ऐबक द्वारा तथाकथित गुलाम वंश की स्थापना

2.3.1 सुल्तान बनने से पहले कुतबुद्दीन ऐबक के कार्य:

तुर्क माता-पिता की संतान कुतबुद्दीन ऐबक पहले काज़ी फ़खरुद्दीन का गुलाम था। उसके स्वामी ने उसे शिक्षित किया। उसके स्वामी की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों ने कुतबुद्दीन को बेच दिया और वह मुहम्मद गोरी का गुलाम बन गया और अपनी प्रतिभा के बल पर वह मुहम्मद गोरी का महत्वपूर्ण अमीर बन गया। ऐबक ने तराइन के युद्ध में मुहम्मद गोरी को विजय दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मुहम्मद गोरी ने उसे अपने साम्राज्य के भारतीय भाग का वाइसराय नियुक्त किया और अपने प्रतिनिधि के रूप में उसे राजकाज चलाने का अधिकार प्रदान किया। मुहम्मद गोरी की अनुपस्थिति में ऐबक ने अजमेर व मेरठ में विद्रोहियों का दमन कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। जयचन्द के विरुद्ध हुए युद्ध में मुहम्मद गोरी की विजय में भी उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। ऐबक ने कोइल, अजमेर, अन्हिलवाड़, बदायूं, चन्दवार, कन्नौज, बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर गोरी के साम्राज्य का विस्तार किया। इसी दौरान बख्तियार खल्जी ने बिहार तथा बंगाल के एक भाग पर अधिकार कर गोरी के साम्राज्य का विस्तार किया। मुहम्मद गोरी ने ऐबक को 'मलिक' की उपाधि से विभूषित किया। मुहम्मद गोरी ऐबक को ही अपने साम्राज्य के भारतीय भाग का उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। उसकी सन् 1206 में जब मृत्यु हुई तो गज़नी साम्राज्य के भारतीय अंग पर शासन करने का दायित्व कुतबुद्दीन ऐबक को ही सौंपा गया।

2.3.2 कुतबुद्दीन ऐबक के सुल्तान बनने के समय की राजनीतिक दशा

मुहम्मद गौरी की उत्तर भारत की विजय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यह आवश्यक था कि और भी अधिक सैनिक अभियानों से इसे सवंर्द्धित किया जाए परन्तु उसकी आकस्मिक मृत्यु ने उसके ग़ज़नी साम्राज्य की जड़ें भी हिला दी थीं। ख्वारिज़्म का शाह अब हिन्दू कुश के पार अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ाकर गौर साम्राज्य पर भी अपने अधिकार के लिए अग्रसर हो सकता था। चूंकि भारतीय प्रान्त इसी गौर साम्राज्य का अंग थे इसलिए मध्य एशिया की अस्थिर राजनीतिक दशा का उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इधर भारत में तुर्क शासन का निरन्तर विरोध हो रहा था। कालिन्जर पर चन्देलों ने तथा दोआब पर गहड़वालों ने पुनराधिकार कर लिया था। आसाम में बख्तियार खल्जी की पराजय हुई थी। भारत में इस समय संगठित तुर्क शक्ति-प्रदर्शन की अतीव आवश्यकता थी। पुत्रहीन मुहम्मद गौरी का विलासी भतीजा गियासुद्दीन महमूद फ़ीरोज़कोह के आसपास के क्षेत्र पर अधिकार तथा अन्य प्रान्त पतियों पर नाम मात्र के आधिपत्य से संतुष्ट था। मुहम्मद गौरी की राजधानी गज़नी पर उसके गुलाम ताजुद्दीन एल्दौज़ ने अधिकार कर लिया था और इस आधार पर वह उसके अन्य गुलामों - सिंध के सूबेदार नासिरुद्दीन कुबाचा और भारतीय प्रान्तों के लिए नियुक्त वाइसराय कुतबुद्दीन ऐबक की तुलना में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहता था।

2.3.3 सुल्तान के रूप में कुतबुद्दीन ऐबक

जून, 1206 में, लाहौर में ऐबक ने सत्ता सम्भाली किन्तु उसने न तो कोई राजसीय उपाधि धारण की और न ही अपने नाम के सिक्के ढलवाए परन्तु उसने अपने अधीन क्षेत्र का गज़नी साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद कर उसे व्यावहारिक दृष्टि से एक स्वतन्त्र राज्य का दर्जा दिलाने का उल्लेखनीय कार्य अवश्य किया। ऐबक का ऐसा साहसिक कदम एल्दौज़ की उस पर नाराज़गी का कारण बना। एल्दौज़ से निपटने के लिए कुतबुद्दीन मुख्यतः

लाहौर में ही बना रहा और उसने अपने राज्य-विस्तार से अधिक महत्व उसकी सुरक्षा को दिया। उसने बंगाल में खिल्जियों के विद्रोह का दमन कर अली मर्दान को वहां अपना सूबेदार नियुक्त किया। राज्य के पश्चिम में परिस्थितियों के बदलने से कुतबुद्दीन को लाभ हुआ। ख्वारिज़्म के शाह ने 1208 ईसवी में एल्दौज़ को गज़नी से निकाल बाहर किया। एल्दौज़ ने पंजाब में शरण ली किन्तु कुतबुद्दीन ने उसे वहां से खदेड़ दिया। कुतबुद्दीन ने कुबाचा को सिंध से निकालने का कोई प्रयास नहीं किया अपितु उससे समझौता कर उसे सिंध तथा मुल्तान का गवर्नर नियुक्त कर दिया। सन् 1210 में चौगान खेलते समय घोड़े से गिरकर चोट लगने से जब उसकी आकस्मिक मृत्यु हुई तब तक उसका राज्य राजनीतिक स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सका था। उसे अपनी बहुसंख्यक प्रजा के विरोध और राजपूत प्रतिरोध का मुकाबला करते हुए इसके लिए समय ही नहीं मिल पाया था परन्तु अपनी दान-प्रियता और न्यायप्रियता के कारण एक शासक के रूप में उसकी ख्याति निर्विवाद है। अपने राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में भी उसने सार्थक प्रयास किए। उसके द्वारा बनाए गए अमीरों को कुतबी अमीर कहा गया। दिल्ली की कुव्वत-उल इस्लाम' मस्जिद, अजमेर की अढ़ाई दिन का झोंपड़ा मस्जिद और विश्व प्रसिद्ध कुतुब मीनार के निर्माण का प्रारम्भ उसी के काल में हुआ। इतिहाकार मिनहाज़-उद्दीन सिराज़ तथा हसन निज़ामी कुतबुद्दीन ऐबक को एक शासक के रूप में सफल मानते हैं।

2.3.4 कुतबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद आरामशाह का सुल्तान के पद पर प्रतिष्ठित होना

कुतबुद्दीन ऐबक के पुत्र आरामशाह को उसकी मृत्यु के बाद लाहौर में सुल्तान बनाया गया। आरामशाह एक अयोग्य सुल्तान सिद्ध हुआ। दिल्ली में उसके राज्य के अधिकांश अमीर बरनं के मुक्ती (सूबेदार) और कुतबुद्दीन ऐबक के दामाद इल्तुतमिश को सुल्तान बनाना चाहते थे। आरामशाह एक वर्ष से भी कम समय के लिए सुल्तान रह पाया। विद्रोहियों के दमन हेतु दिल्ली की ओर अभियान करते समय वह मारा गया और कुतबुद्दीन द्वारा स्थापित राज्य वंश अपनी स्थापना के पाँच वर्ष बाद ही समाप्त हो गया।

2.4 सुल्तान के रूप में इल्तुतमिश

2.4.1 इल्तुतमिश का प्रारम्भिक जीवन

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश को गज़नी में कुतबुद्दीन ऐबक ने खरीद कर अपना गुलाम बनाया था। 1205 ईसवी में खोक्खरों के विरुद्ध युद्ध में साहस व वीरतापूर्ण प्रदर्शन के पुरस्कार में मुहम्मद गोरी के आदेश पर उसे दासत्व से मुक्त कर दिया गया। तुर्कों द्वारा ग्वालियर विजय के उपरान्त उसे ग्वालियर का किलेदार बना दिया गया और फिर उसे बरन का सूबेदार बनाया गया। कुतबुद्दीन ऐबक ने अपनी बेटी का उसके साथ विवाह कर उसे अपना एक प्रमुख अमीर बना दिया। कुतबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद उसके अयोग्य पुत्र आरामशाह के सुल्तान बनने पर दिल्ली के प्रभावशाली उलेमाओं व अमीरों का गुट उसके विरुद्ध हो गया। दिल्ली के काज़ी के नेतृत्व में इस गुट ने इल्तुतमिश को सुल्तान बनने के लिए आमंत्रित किया। दिल्ली के बागियों को कुचलने के अपने अभियान में आरामशाह असफल रहा और वह मारा गया। आरामशाह को पराजित करने में इल्तुतमिश की प्रमुख भूमिका रही। जनता व अमीरों के समर्थन के बाद सुल्तान के रूप में उसके निर्वाचित होने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

2.4.2 सुल्तान बनने के बाद इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएं

- सन् 1211 में शम्सुद्दीन इल्तुतमिश सुल्तान बना परन्तु उसके अधिकार में केवल दिल्ली का प्रान्त था। लाहौर के कुतबी अमीर इल्तुतमिश को अपना सुल्तान नहीं मान रहे थे। मुल्तान पर नासिरुद्दीन कुबाचा ने अधिकार कर लिया था और लखनौती (बंगाल) में अली मर्दान ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। पश्चिमी पंजाब पर एल्दौज़ ने अधिकार कर रखा था।
- ऐबक की मृत्यु का लाभ उठाकर जालौर व रणथम्भौर के नेतृत्व में राजपूत प्रतिरोध मुखर हो उठा था। अजमेर, ग्वालियर, बयाना और दोआब के राजपूतों ने भी स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था।
- गज़नी का शासक एल्दौज़ कुतबुद्दीन ऐबक के काल से ही दिल्ली सल्तनत पर अपने अधिकार का दावा कर रहा था। एल्दौज़ ने ऐबक की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत के संकट का लाभ उठाकर दिल्ली सल्तनत को अपने राज्य में मिलाने के प्रयास तेज़ कर दिए।
- शम्सुद्दीन इल्तुतमिश पर गुलाम (कुतबुद्दीन ऐबक) के गुलाम होने का कलंक था।

2.4.3 इल्तुतमिश द्वारा अपनी कठिनाइयों का निराकरण

- गज़नी का शासक एल्दौज़ जो कि उसके पूर्व स्वामी कुतबुद्दीन ऐबक की तुलना में भी स्वयं को श्रेष्ठ मानता था, उसे अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर रहा था। चारों ओर शत्रुओं घिरे इल्तुतमिश ने कूटनीति का आश्रय लिया और एल्दौज़ को संतुष्ट करने के लिए उसकी सार्वभौमिकता अंगीकार करते हुए उसके द्वारा भेजे गए राज चिह्नों को स्वीकार कर लिया।
- कुतबी अमीरों और दिल्ली के सैनिक रक्षकों के संयुक्त विद्रोह को इल्तुतमिश ने कठोरतापूर्वक कुचल दिया।
- सन् 1214 में ख्वारिज़्म के शाह ने एल्दौज़ की राजधानी गज़नी पर अधिकार कर लिया। एल्दौज़ भागकर लाहौर आ गया और फिर दिल्ली पर अपना दावा पेश करते हुए उसने दिल्ली की ओर कूच किया परन्तु इल्तुतमिश ने उसे तराइन में पराजित कर बन्दी बना लिया और इस प्रकार एल्दौज़ द्वारा उत्पन्न संकट का उसने सफलतापूर्वक निपटारा किया।
- इल्तुतमिश के शासनकाल में सन् 1220 में चंगेज़ खां के नेतृत्व में मंगोल आक्रमण का संकट दिल्ली सल्तनत के लिए उठ खड़ा हुआ था। ख्वारिज़्म के युवराज मांगबर्नी का पीछा करते हुए मंगोल दिल्ली सल्तनत की उत्तर-पश्चिमी सीमा तक पहुंच गए थे। मांगबर्नी ने इल्तुतमिश से शरण मांगी परन्तु उसने नम्रतापूर्वक शरण देने से इंकार कर दिया। मांगबर्नी निराश होकर फ़ारस चला गया और उसका पीछा करने वाले मंगोल भी दिल्ली सल्तनत की उत्तर-पश्चिमी सीमा छोड़ कर लौट गए।
- इल्तुतमिश ने सन् 1217 में कुबाचा से लाहौर छीन लिया था परन्तु फिर भी उसका वह पूर्ण दमन नहीं कर पाया था। कुबाचा की शक्ति को कुचलने में ख्वारिज़्म के युवराज मांगबर्नी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। कुबाचा की दुर्बल स्थिति का लाभ उठाकर सन् 1225 में इल्तुतमिश ने लाहौर, भटिण्डा तथा कोहराम पर

अधिकार कर लिया। कुबाचा का पीछा करते हुए इल्तुतमिश खक्खर पहुंचा जहां सिंधु नदी में डूब जाने से कुबाचा की मृत्यु हो गई। इल्तुतमिश ने सुगमता से पंजाब तथा सिंध पर अपना अधिकार कर लिया।

- विद्रोही अली मर्दान की हत्या कर खिल्जी सरदार एवाज़ ने स्वयं को लखनौती का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। जैसे ही मंगोल संकट समाप्त हुआ, इल्तुतमिश ने सन् 1226 में लखनौती की ओर प्रस्थान कर एवाज़ को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। बाद में फिर से लखनौती में विद्रोह हुए किन्तु सन् 1230 में इल्तुतमिश को लखनौती पर अपना अधिकार करने में सफलता मिली।
- इल्तुतमिश ने सन् 1226 में हाल ही में फिर से स्वतन्त्र हुए राजपूत राज्यों पर पुनराधिकार हेतु अभियान छेड़ा। उसने रणथम्भौर, मंदौर, जालौर, बयाना, अजमेर तथा नागौर आदि राज्यों पर विजय प्राप्त की। इल्तुतमिश को बुंदेलखण्ड पर पुनर्विजय में विशेष सफलता नहीं मिली किन्तु दोआब व अवध पर उसका पुनराधिकार अवश्य स्थापित हो गया।
- इल्तुतमिश पर गुलाम के गुलाम होने का कलंक लगा था। अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर अब वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने खलीफ़ा अल-मुस्तगीर बिल्लाह से सुल्तान पद हेतु वैधानिक अधिकार पत्र व खिलअत प्राप्त की। इस प्रकार वैधानिक व धार्मिक दृष्टि से वह दिल्ली सल्तनत का प्रथम सुल्तान कहलाने का अधिकारी बना।

2.5 इल्तुतमिश के प्रशासनिक कार्य

2.5.1 वंशानुगत शासन

इल्तुतमिश ने 25 वर्ष सुल्तान के रूप में शासन किया और उसकी मृत्यु के बाद लगभग 30 वर्षों तक उसी के वंशज शासन करते रहे। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में पहली बार वंशाननुगत शासन स्थापित करने में इल्तुतमिश को ही सफलता मिली।

2.5.2 इक्ता प्रणाली

इल्तुतमिश ने दिल्ली सल्तनत को न केवल वाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों के संकट से मुक्त किया अपितु उसे शक्ति, सुरक्षा, प्रतिष्ठा, राजनीतिक स्थिरता व सैनिक श्रेष्ठता प्रदान की। वास्तव में भारत में मुस्लिम प्रभुसत्ता का श्री-गणेश करने का श्रेय इल्तुतमिश को ही जाता है। तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली सल्तन्त के सुल्तानों में इल्तुतमिश ही पहला सुल्तान था जिसने भारत में सांमती प्रथा को समाप्त करने, अपने राज्य के सभी भागों को केन्द्र से जोडने के लिए इक्ता प्रणाली की शुरूवात की । इस प्रणाली के प्रारम्भ होने से तुर्की शासक वर्ग की धन से सम्बन्धित लिप्सा की समाप्ति हुई और नये विजित प्रदेशों में कानून व्यवस्था की बहाली के साथ ही राजस्व वसूली की समस्या का समाधान हुआ।

2.5.3 न्याय व्यवस्था

इल्तुतमिश ने न्याय प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए सभी नगरों में क़ाज़ियों की नियुक्ति की।

1.5.4 मुद्रा सम्बन्धी सुधार

कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने नाम के सिक्के नहीं चलवाए। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था जिसने अपने नाम के सिक्के चलवाए। इल्तुतमिश ने 175 ग्रेन का शुद्ध चाँदी का टंका तथा तांबे का जीतल चलवाया। इन पर पर अरबी भाषा में उसका नाम अंकित रहता था। टंका और जीतल मध्यकाल में मूल मुद्राओं के रूप में प्रतिष्ठित रहे।

2.5.5 तुर्काने चहलगानी

दिल्ली सल्तनत पर मुइज़्ज़ी तथा कुतबी अमीरों के प्रभाव को कम करने के लिए इल्तुतमिश ने अपने विश्वस्त दासों में से चालीस अमीरों का एक दल - तुर्कान-ए-चहलगानी गठित किया। बलबन इसी गुट का एक सदस्य था। इल्तुतमिश के प्रति वफ़ादारी की शपथ लेने वाले इन अमीरों के कारण ही उसकी मृत्यु के तीस वर्ष तक उसके राज्यवंश का अस्तित्व बना रहा किन्तु उनकी निष्ठा उसके उत्तराधिकारियों के प्रति सदैव संदिग्ध ही रही।

2.6 सुल्ताना रज़िया

2.6.1 रज़िया का राज्यारोहण

अपने पुत्र नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के बाद अपने शेष पुत्रों में से किसी को भी इल्तुतमिश ने अपना उत्तराधिकारी बनाना उचित नहीं समझा। सामाजिक व राजनीतिक परम्पराओं को तोड़ते हुए उसने रज़िया को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया परन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके प्रभावशाली अमीरों ने उसके पुत्र रुकनुद्दीन फ़िरोज़ शाह को सुल्तान बनाया। फ़िरोज शाह की माँ शाह तुर्कन ने रज़िया को बन्दी गृह में डलवा दिया परन्तु शीघ्र ही नए सुल्तान तथा उसकी माँ के अनाचार से प्रजा तथा अमीर उनके विरुद्ध हो गए। रज़िया ने दिल्ली की जनता के समर्थन से सुल्तान का पद प्राप्त किया परन्तु उसे प्रान्तीय सूबेदारों का समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।

2.6.2 रज़िया द्वारा विरोधियों का दमन

सुल्तान का चयन करना, तुर्क अमीर अपना विशेषाधिकार मानते थे। मात्र जनसमर्थन के बल पर रज़िया का सुल्तान बनाया जाना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। प्रान्तीय सूबेदारों के साथ-साथ वज़ीर निज़ामुलमुल्क जुनैदी भी उसके राज्यारोहण के विरुद्ध था। रज़िया ने अमीरों में फूट डालकर मलिक सालारी तथा मलिक सालारी को अपने पक्ष में कर लिया तथा अपने विरोधियों निज़ामुलमुल्क जुनैदी, मलिक कूची और मलिक जानी आदि का सुगमता से दमन कर दिया। अब केन्द्रीय शासन में व प्रान्तों में रज़िया के समर्थकों की ही नियुक्ति की गई। उच्च पदों पर तुर्क अमीरों के एकाधिकार को तोड़ते हुए एक अबीसीनियन, मलिक याकूत को अमीर-ए-अखुर नियुक्त किया गया। रणथम्भौर पर राजपूतों द्वारा पुनराधिकार के प्रयास को रज़िया ने विफल कर दिया तथा ग्वालियर के किलेदार के विद्रोह को भी उसने सुगमता से कुचल दिया। रज़िया ने अपने शासनकाल में अपने साहस, चातुर्य व योग्यता का परिचय देते हुए विद्रोहियों की हर साज़िश को नाकाम कर दिया।

2.6.3 रज़िया का पतन

रज़िया ने एक स्वतन्त्र और शक्तिशाली सुल्तान के रूप में प्रतिष्ठित किया और तुर्काने चहलगानी के प्रभाव को सीमित रखा। उसको तुर्काने चहलगानी का समर्थन कभी भी प्राप्त नहीं हुआ, वह केवल उनमें फूट डालकर अपना सिंहासन बचाए रखने में सफल रही परन्तु अबीसीनियन मलिक याकूत से उसकी निकटता व

उसको अत्यधिक महत्व दिए जाने से तुर्क अमीर उसके विरुद्ध संगठित हो गए। रज़िया ने लाहौर के सूबेदार कबीर खाँ के विद्रोह का दमन करने में सफलता प्राप्त की किन्तु अमीर-ए-हाजिब मलिक एतगीन, भटिण्डा के सूबेदार अल्तूनिया आदि का वह दमन नहीं कर सकी। मलिक याकूत मारा गया, रज़िया को बन्दी बना लिया गया और रज़िया के भाई बहराम शाह को सुल्तान बनाया गया। रज़िया ने असन्तुष्ट अल्तूनिया को अपने पक्ष में कर उसके साथ विवाह कर लिया और फिर से सत्ता प्राप्त करने का अभियान प्रारम्भ किया किन्तु असफलता ही उसके हाथ लगी। पराजित होने के बाद भागते हुए रज़िया तथा अल्तूनिया कैथल में डाकुओं द्वारा मारे गए। रज़िया के पतन का कारण मुख्यतः मलिक याकूत के प्रति उसका प्रेम माना जाता है परन्तु वास्तव में पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री का इतना शक्तिशाली होना तथा उसके द्वारा तुर्काने चहलगानी के प्रभाव को क्षीण करने के लिए सतत प्रयत्नशील होना उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। इतिहासकार मिनहाज-उद्-दीन सिराज़ ने एक सुल्तान के रूप में उसकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए उसके पतन का मुख्य कारण उसका स्त्री होना माना है।

2.7. सुल्तान बलबन

2.7.1 बलबन का राज्यारोहण

बलबन तुर्काने चहलगानी का सदस्य था। रज़िया के पतन में उसकी भी भूमिका थी। सुल्तान अलाउद्दीन मसूद शाह के शासनकाल में मंगोलों के आक्रमणों को विफल कर उसने अपनी शक्ति में वृद्धि की। बलबन सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद का वज़ीर बना और उसके लगभग दो दशकों के शासनकाल में उसी की प्रधान भूमिका रही। बलबन ने स्वयं अपना विवाह इल्तुतमिश की विधवा से तथा अपनी बेटी का विवाह सुल्तान के साथ कर अपना राजनीतिक कद और ऊँचा कर लिया। वज़ीर के रूप में दोआब में हिन्दू प्रतिरोध को कुचलने, मंगोल आक्रमणों का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के अतिरिक्त बलबन ने बंगाल के सूबेदार तुगरिल खाँ, मुल्तान, उच के सूबेदार किश्लू खाँ तथा अवध के सूबेदार कुतलुग खाँ के विद्रोहों को भी विफल करने में सफलता प्राप्त की। सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु में बलबन का हाथ होना प्रमाणित नहीं हो सका है किन्तु यह निश्चित है कि अवसरवादी बलबन ने उसकी मृत्यु के बाद उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर स्वयं को सुल्तान के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया।

2.7.2 बलबन की रक्त एवं लौह की नीति

- प्रशा के कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क से लगभग छह सौ साल पहले सुल्तान बलबन ने रक्त एवं लौह की नीति अपना कर अराजकता, कुशासन, सैनिक दुर्बलता, राजनीतिक षडयन्त्र व नैतिक पतन पर अंकुश लगाने में सफलता प्राप्त की थी। बलबन स्वयं प्रभावशाली तुर्काने चहलगानी का एक सदस्य था। वह अमीरों की महत्वाकांक्षा व उनकी षडयन्त्रकारी प्रवृत्तियों से भलीभांति अवगत था। तुर्काने चहलगानी का दमन करना उसके लिए पहली चुनौती था। उसने अमीरों की गतिविधियों पर तीखी नज़र रखने के लिए अपने गुप्तचर विभाग को अत्यन्त सक्षम बनाया। केन्द्र, प्रान्त, जिलों और नगरों के गुप्तचरों को अपने आसपास घटित सभी गतिविधियों की दैनिक जानकारी सुल्तान तक पहुंचानी होती थी और ऐसा न कर पाने पर उन्हें कठोर से कठोर दण्ड का भागी होना पड़ता था। अमीरों का मान मर्दन करने का उसने हर सम्भव

उपाय अपनाया। अपने कर्तव्यों के प्रति असावधान रहने के कारण बदायूं के सूबेदार मलिक बकबक को पिटवा-पिटवा कर मार डाला और अवध के सूबेदार हैबात खाँ के कोड़े लगवाए। बंगाल में विद्रोहियों से पराजित होकर लौटे हुए एक अमीर को उसने नगर के फाटक पर लटकवा दिया। उसने अपने चचेरे भाई शेर खाँ की योग्यता से सशंकित होकर उसे विष देकर मरवा डाला। बंगाल के विद्रोही सूबेदार तुगरिल को पराजित कर उसने उसे उसके हज़ारों समर्थकों सहित सार्वजनिक स्थान पर प्राण दण्ड दिया।

- सुल्तान बनने पर बलबन को विरासत में एक असंगठित सेना मिली थी। राज्य की सैन्य शक्ति मुख्यतः अमीरों की सैनिक टुकड़ियों की अनुकम्पा पर आश्रित थी। बलबन ने एक केन्द्रीय सेना का संगठन किया। उसने सैनिकों के वेतन के लिए इक्ता प्रणाली को समाप्त कर उनके नकद वेतन की व्यवस्था की। सैनिकों की भर्ती का आधार उनकी शारीरिक क्षमता व सैन्य कौशल रखा गया।
- केन्द्रीय सत्ता के शिथिल होने के कारण अराजकतावादी तत्वों का दुःसाहस बढ़ता जा रहा था। दिल्ली नगर को मेवाती लुटेरे दिन-दहाड़े लूटते रहते थे। दिल्ली के असपास के जंगल उनके छिपने का ठिकाना बने हुए थे। बलबन ने दिल्ली के आसपास के जंगलों को साफ़ करवाया, दिल्ली की सुरक्षा के लिए उसके दक्षिण में एक दुर्ग का निर्माण करवा कर उसमें अपनी पुनर्संगठित सेना को रखा। मेवातियों के उन्मूलन के लिए निरन्तर अभियान कर लगभग एक लाख मेवातियों को मार दिया गया। दोआब, कटेहर तथा पंजाब प्रान्त के नमक में विद्रोहियों को उसने निर्ममतापूर्वक कुचल कर वहां शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित की।
- 12 वीं शताब्दी में दिल्ली सल्तनत के अस्तित्व के लिए मंगोल आक्रमण एक बड़ा संकट बने हुए थे। बलबन ने इस समस्या के निराकरण के लिए ठोस उपाय के रूप में जहां एक शक्तिशाली सेना का संगठन किया वहीं दूसरी ओर राज्य की सुरक्षा के लिए सल्तनत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर दुर्गों की श्रृंखला का निर्माण करवाया। शेर खाँ जैसे योग्य सेनानायक को मंगोलों का सामना करने के लिए राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर नियुक्त किया गया और सन् 1270 में उसकी मृत्यु के बाद उसने यह दायित्व क्रमशः अपने पुत्रों बुगरा खाँ व मुहम्मद को सौंपा। सन् 1286 में मुहम्मद मंगोलों से लड़ता हुआ मारा गया। मंगोलों से अपने राज्य को सुरक्षित रखने में बलबन आमतौर पर सफल रहा।

2.7.3 जहांदारी

बलबन ने अपने साम्राज्य को स्थायित्व देने के लिए यह आवश्यक समझा कि नवीन विजय-अभियानों की नीति (जहांगीरी) का परित्याग कर केवल उसको सुरक्षित एवं सुसंगठित रखने की नीति (जहांदारी) को महत्व दिया जाए। इस नीति के अन्तर्गत विद्रोहों के दमन, सीमा सुरक्षा के समुचित प्रबन्ध, राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था को कायम रखने को विजय-अभियानों पर वरीयता दी गई।

2.7.4 बलबन का राजत्व का दैविक सिद्धान्त

बलबन का राजत्व का सिद्धान्त प्रत्यक्षतः निरंकुश, स्वेच्छाचारी शासन का समर्थक दिखाई देता है परन्तु वास्तव में यह अनेक उपयोगी नियमों, नैतिक व धार्मिक आदर्शों से बंधा हुआ था। बलबन ने सुल्तान के पद की खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से स्थापित करने और जनता व आभिजात्य वर्ग में सुल्तान के प्रति श्रद्धा तथा भय का भाव फिर से संचारित करने के लिए राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया। इस्लाम के इतिहास से यह विदित होता

है किं खलीफ़ा का चयन किया जाता था और खलीफ़ा के अधिकारों का उसके कर्तव्यों से अटूट सम्बन्ध था किन्तु राजत्व के दैविक सिद्धान्त के अन्तर्गत शासक पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है और उसके आदेश में ईश्वर का आदेश प्रतिध्वनित होता है। राज्य में शासक का कोई समकक्ष नहीं हो सकता और न ही शासक के रूप में उसका कोई सम्बन्धी हो सकता है। शासक के सगे रक्त सम्बन्धियों के लिए भी उसके प्रति श्रद्धा और स्वामिभक्ति का प्रदर्शन करना, उनका कर्तव्य होता है। इस परिकल्पना को व्यवहार में लाने के लिए उसने वैभवशाली एवं गरिमापूर्ण दरबार लगाया। शासक के लिए आम इंसान की तरह हँसना या रोना निषिद्ध हो गया। बलबन ने दरबार में अपने पुत्र महमूद की मृत्यु का समाचार सुनकर भी रोना उचित नहीं समझा। आभिजात्य वर्ग, उलेमा तथा विद्वानों के अतिरिक्त उसने आम आदमियों से मिलना-जुलना बिलकुल बन्द कर दिया। बलबन ने स्वयं को पौराणिक अफ्रीसियाबों का वंशज घोषित किया।

यह सिद्धान्त इस्लाम की मूल अवधारणाओं के विरुद्ध था किन्तु तत्कालीन विषम परिस्थितियों को देखते हुए इसका अपनाया जाना अनुचित नहीं था। बलबन के राजत्व के सिद्धान्त को हम पूर्ववर्ती कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा परवर्ती मैकियावेली के दि प्रिंस में उल्लिखित राजत्व के सिद्धान्त के समकक्ष रख सकते हैं।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. गुलाम वंश की स्थापना
2. इल्तुतमिश की प्रारम्भिक कठिनाइयां
3. तुर्कीने चहलगानी
4. रज़िया का पतन
5. रक्त एवं लौह की नीति
6. बलबन का राजत्व का दैविक सिद्धान्त

2.8 सारांश

दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक चरण में तीन राज्य वंशों के संस्थापक अपने प्रारम्भिक जीवन में गुलाम रह चुके थे इसलिए भ्रमवश इन तीन राज्य वंशों को एक साथ मिलाकर प्रायः गुलाम वंश के नाम से जाना जाता है। तथाकथित गुलाम वंश के प्रमुख शासक कुतबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, रज़िया तथा बलबन थे। इनमें सबसे अधिक योग्य तथा शक्तिशाली इल्तुतमिश तथा बलबन थे। दिल्ली संल्तनत का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश को माना जाता है। इल्तुतमिश ने दिल्ली के सुल्तान के पद को वैधानिक मान्यता दिलाई तथा वंशानुगत शासन का प्रारम्भ किया। उसने राज्य को एक ठोस प्रशासनिक ढांचा भी दिया। अपनी योग्यता के बावजूद रज़िया सुल्तान का स्त्री होना उसके पतन का मुख्य कारण बना। बलबन तथाकथित गुलाम वंश का सबसे शक्तिशाली एवं सफल शासक था, उसने लौह एवं रक्त की नीति को अपना कर अपने राज्य को सुदृढ़ किया। उसने मंगोल आक्रमणों को विफल किया। उसने अपने राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। उसने राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण कर सुल्तान के पद और उसकी प्रतिष्ठा में अपार वृद्धि की और शासक के अधिकार व उसके कर्तव्य को एक नया आयाम प्रदान किया।

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

- तुर्कने चहलगानी - इल्तुतमिश के पूर्व दासों में से मुक्त एवं प्रोन्नत किए गए चालीस तुर्की अमीरों का दल
- दोआब - दो नदियों के बीच का क्षेत्र। उत्तर भारत में इससे तात्पर्य मुख्यतः गंगा और यमुना नदी के बीच का भाग होता है।
- खिलअत - अपने अधीनस्थ को शासक द्वारा प्रदत्त राजसी चिह्न, पोशाक आदि।
- अमीर-ए-अखुर - शाही अस्तबल का प्रमुख
- जहांदारी - संगठन

2.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.3 सुल्तान के रूप में कुतबुद्दीन ऐबक
2. देखिए 1.4.2 सुल्तान बनने के बाद इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएं
3. देखिए 1.5.5 तुर्कने चहलगानी
4. देखिए 1.6.3 रज़िया का पतन
5. देखिए 1.7.2 रक्त एवं लौह की नीति
6. देखिए 1.7.4 बलबन का राजत्व का दैविक सिद्धान्त

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Habibullah, A.B.M. – Foundation of Muslim Rule in India
2. Prasad Ishwari – History of Medieval India
3. Prasad Ishwari – A History of the Quraunah Turks in India
4. Srivastav, A.L. – The Sultanat of Delhi
5. Majumdar (General Editor) – Struggle for Empire
6. Elliot & Dowson – The History of India as Told by Its Own Historians
7. Hodivala, S. H. – Studies in IndoMuslim History
8. Jackson, Peter – The Delhi Sultanate: A Political and Military History
9. हबीब, मुहम्मद - दिल्ली सल्तनत भाग 1

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Minhaj-i-Siraj – Tabqat-i-Nasiri (Eng Tr. Raverty, H. G.)
2. Isami – Futu-us-Salatin (Edited by Husain, A. M.)

2. Lane Poole – The Mohammadan Dynasties

3. Lane Poole – Medieval India under Mohammadan Rule

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

तथाकथित गुलाम वंश में सुल्तान-अमीर सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई तीन - जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, बाजार नियंत्रण नीति एवं सैनिक उपलब्धियॉ

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जलालुद्दीन खिलजी

- **3.3.1** जलालुद्दीन खिलजी का राज्यारोहण
- **3.3.2** बलबन की रक्त एवं लौह की नीति का परित्याग
- **3.3.3** जलालुद्दीन खिलजी के शासनकाल में अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक अभियान

3.4 अलाउद्दीन का राज्यारोहण

3.5 सुल्तान के रूप में अलाउद्दीन

- **3.5.1** अलाउद्दीन का राजत्व का सिद्धान्त
- **3.5.2** मंगोल आक्रमणों की समस्या के निवारण के प्रयास

3.6 अलाउद्दीन की बाज़ार नियन्त्रण की नीति

- **3.6.1** बाज़ार नियन्त्रण की नीति लागू करने का कारण
- **3.6.2** सैनिकों के वेतन का निर्धारण
- **3.6.3** मूल्य नियन्त्रण
- **3.6.4** बाज़ार नियन्त्रण की व्यवस्था
- **3.6.5** कानून तोड़ने वालों के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था
- **3.6.6** व्यापारियों, किसानों तथा आम आदमी को हानि

3.7 अलाउद्दीन का विजय अभियान

- **3.7.1** उत्तर भारत की विजय
- **3.7.2** दक्षिण भारत की विजय

3.8 एक शासक के रूप में अलाउद्दीन का आंकलन

3.9 साराशं

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

1287 ईसवी में सुल्तान बलबन की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद उसके अयोग्य वंशज मात्र तीन वर्ष तक ही सत्ता सम्भाल सके। जून, 1290 में सेनापति के रूप में उत्तर-पश्चिमी सीमा पर मंगोलों का मुकाबला करने में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका और तत्कालीन आरिज़-ए-मुमालिक मलिक फ़िरोज़ खिलजी सुल्तान क्यूमर्स की हत्या कर स्वयं जलालुद्दीन फिरोज़ शाह के नाम से सुल्तान बन बैठा। 6 वर्ष तक जलालुद्दीन खिलजी का, 20 वर्ष तक अलाउद्दीन खिलजी का तथा 4 वर्ष तक कुतबुद्दीन मुबारक शाह का शासन रहा। ।

खिलजी शासकों में अलाउद्दीन खिलजी ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ी है। सैनिक दृष्टि से उसकी उपलब्धियां दिल्ली सल्तनत के इतिहास में अद्वितीय हैं। एक प्रशासक के रूप में उसकी बाज़ार नियन्त्रण की नीति की अनेक अर्थशास्त्री आज भी प्रशंसा करते हैं किन्तु इस नीति का राज्य के व्यापार एवं वाणिज्य पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा । उत्तर-पश्चिमी सीमा से हो रहे मंगोल आक्रमणों को विफल करने में अलाउद्दीन अन्य सभी सुल्तानों की तुलना में अधिक सफल रहा। अलाउद्दीन खिलजी ने जनता के हित को कभी भी सर्वोपरि नहीं रखा किन्तु उसके शासन में दीर्घकाल तक शान्ति एवं व्यवस्था बनी रही।

अलाउद्दीन की नीतियों का प्रभाव परवर्ती शासकों की नीतियों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शेरशाह, अकबर यहां तक कि कुछ मायनों में ब्रिटिश भारतीय शासकों की नीतियों पर भी उनका प्रभाव देखा जा सकता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य मध्यकालीन भारतीय इतिहास को खिलजी राजवंश, विशेषकर अलाउद्दीन खिलजी की देन का आकलन करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- तथाकथित गुलाम वंश के पतन के बाद दिल्ली सल्तनत की राजनीति में तुर्की प्रभाव का क्षीण होना।

2- उत्तर भारत एवं दक्षिण भारत की विजयों द्वारा अलाउद्दीन खिलजी का दिल्ली सल्तनत को भारतीय साम्राज्य के रूप में विकसित करने का प्रयास।

3- मध्यकालीन अर्थ-व्यवस्था में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन।

3.3 जलालुद्दीन खिलजी

3.3.1 जलालुद्दीन खिलजी का राज्यारोहण

जलालुद्दीन खिलजी ने बलबन तथा उसके उत्तराधिकारियों के काल में मंगोलों का सामना करते हुए एक कुशल सेनापति के रूप में ख्याति अर्जित की थी। सुल्तान कैकुबाद ने उसे आरिज़-ए-मुमालिक का पद तथा शायिस्ता खाँ की उपाधि प्रदान की थी। 1290 ईसवी के प्रारम्भ में कैकुबाद के पतन के बाद वह बालक सुल्तान क्यूमर्स का संरक्षक बना किन्तु यह व्यवस्था नितान्त अस्थायी थी। जून, 1290 में जलालुद्दीन खिल्जी सुल्तान क्यूमर्स तथा कैकुबाद की हत्या कर स्वयं जलालुद्दीन फिरोज़ शाह के नाम से सुल्तान बन बैठा।

3.3.2 बलबन की रक्त एवं लौह की नीति का परित्याग

इल्बारी तुर्कों के दीर्घकालीन प्रभुत्व के बाद अफ़गानिस्तान में लम्बे समय से बसे हुए खिलजियों (जिनको कि भ्रमवश अफ़गान माना जाता था) द्वारा दिल्ली के तख्त पर अधिकार किए जाने का प्रबल विरोध हुआ। असन्तुष्ट इल्बारी अमीरों तथा अपनी प्रजा के तुष्टीकरण के लिए सुल्तान जलालुद्दीन ने सुल्तान बलबन की निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन का पोषण करने वाली रक्त एवं लौह की नीति का परित्याग कर दिया। अब राजनीतिक दमन, प्रतिशोध और रक्तपात की अनवरत प्रक्रिया को विराम दे दिया गया और तलवार की शक्ति का प्रदर्शन करने वाले सैनिक अभियानों की आवृत्तियों व उनके आकार को भी बहुत कम कर दिया गया। उसने अपने रक्त सम्बन्धियों तथा विश्वस्त अमीरों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया किन्तु इल्बारी तुर्क अमीरों को भी उच्च पदों पर बने रहने दिया। उसने बलबन के भतीजे मलिक छज्जू के अधिकार में कड़ा और मानिकपुर की जागीर बनी रहने दी। बलबन व कैकुबाद के शासनकाल के वज़ीर ख्वाजा खातिर और दिल्ली के कोतवाल फ़खरुद्दीन को भी अपने-अपने पदों पर बने रहने दिया गया। सत्तर वर्ष की आयु में सुल्तान बने जलालुद्दीन खिलजी में अब मंगोलों का वीरतापूर्वक दमन करने वाले जांबाज़ सेनापति वाला पुराना दमखम नहीं रह गया था। उसने रणथम्भौर के किले का घेरा केवल इसलिए उठवा लिया क्योंकि इससे नाहक मुसलमानों का खून बहता। उसने मलिक छज्जू की बगावत का दमन करने के बाद उसको दण्ड देने के स्थान पर क्षमा कर दिया। उसने दुर्दम्य ठगों को पकड़े जाने बाद उन्हें प्राण दण्ड देने के स्थान पर समस्या प्रधान लखनौती निर्वासित कर दिया। 1202 ईसवी में हलाकू के पौत्र अब्दुल्ला के नेतृत्व मंगोलों के आक्रमण को विफल करने के बाद उसने उससे संधि कर उसे वापस लौटने के लिए राज़ी कर लिया और चंगेज़ खाँ के वंशज उलगू को इस्लाम में दीक्षित होने के बाद अपने 4000 समर्थकों के साथ दिल्ली में बसने की अनुमति दे दी। सुल्तान की उदारता और शिथिलता से इल्बारी तुर्क व खिलजी अमीरों में उसके प्रति असन्तोष पनपने लगा और उसकी प्रजा में भी उसके प्रति भय व श्रद्धा का भाव तिरोहित होने लगा।

3.3.3 जलालुद्दीन खिलजी के शासनकाल में अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकअभियान

1. मलिक छज्जू के विद्रोह के दमन के बाद सुल्तान के भतीजे और दामाद अलाउद्दीन को कड़ा और मानिकपुर का सूबेदार बनाया गया था। इस महत्वाकांक्षी एवं साहसी युवक की नज़र दिल्ली के तख्त पर थी परन्तु इसके लिए उसे आवश्यक धन तथा संसाधनों की आवश्यकता थी। अलाउद्दीन को मालवा की राजनीतिक अस्थिरता व उसकी अपार धन-सम्पदा की जानकारी प्राप्त हुई और उसने वहां आक्रमण करने की योजना बनाई। दिल्ली के दरबार में स्थित उसके भाई उलुग खाँ ने उसके लिए इस अभियान हेतु सुल्तान की अनुमति प्राप्त कर ली। सन् 1293 में अलाउद्दीन ने भिलसा (विदिशा) पर सफल आक्रमण कर अपार धनराशि लूट ली। इस लूट का एक भाग सुल्तान को अर्पित कर उसने पुरस्कार में कड़ा व मानिकपुर के अतिरक्त अवध की सूबेदारी भी प्राप्त कर ली और साथ ही साथ उसे कड़ा व मानिकपुर के राजस्व के शाही भाग को चन्देरी अभियान हेतु सैनिकों की भर्ती के लिए खर्च करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया।

2. भिलसा अभियान के दौरान अलाउद्दीन ने यादव राज्य देवगिरि की अथाह धन-सम्पदा के बारे में सुना था। सफल भिलसा अभियान के बाद उसने सुल्तान से चन्देरी पर आक्रमण करने की अनुमति प्राप्त की थी किन्तु वास्तव में उसकी योजना दक्षिण में देवगिरि पर आक्रमण करने की थी। कड़ा की देखभाल का दायित्व अपने

विश्वस्त अला-उल-मुल्क को सौंपकर अलाउद्दीन फ़रवरी, 1296 में चन्देरी पर आक्रमण करने के बहाने एक विशाल सेना लेकर चन्देरी और भिलसा होते हुए देवगिरि की ओर चल पड़ा। सुल्तान जलालुद्दीन से इस देवगिरि अभियान को पूर्णरूपेण गुप्त रखा गया। लासुरा के अधिपति को पराजित कर वह देवगिरि पहुंचा। इसं राज्य की सेना का एक बड़ा भाग युवराज शंकर के साथ दक्षिण में था। आक्रमणकारी से बचने के लिए देवगिरि के शासक रामचन्द्रदेव के पास किले में छिपने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। अलाउद्दीन ने देवगिरि नगर को जमकर लूटा। रामचन्द्रदेव ने अलाउद्दीन से सन्धि करने का प्रस्ताव किया जिसे उसने स्वीकार कर लिया परन्तु देवगिरि के युवराज शंकर की अपनी सेना के साथ वापसी के कारण उसे युद्ध करना पड़ा। नुसरत खाँ के सहयोग से अलाउद्दीन यादव सेना को पराजित करने में सफल रहा। 25 दिनों तक देवगिरि अभियान में व्यतीत करने के बाद अलाउद्दीन अथाह धन-सम्पदा तथा वार्षिक पेशकश के आश्वासन के साथ तथा रामचन्द्रदेव की पुत्री से विवाह कर उत्तर भारत वापस लौट आया।

भिलसा के और देवगिरि के अभियानों से जहां एक ओर अलाउद्दीन का राजनीतिक, सैनिक और आर्थिक कद बहुत ऊँचा हो गया था वहीं सुल्तान जलालुद्दीन को हटाकर अलाउद्दीन को सुल्तान बनाए जाने के लिए अनुकूल वातावरण भी तैयार होने लगा था। दक्षिण भारत पर यह पहला मुस्लिम आक्रमण था। इसी आक्रमण से प्राप्त धन-सम्पदा और संसाधनों के कारण अलाउद्दीन का सुल्तान बनने का स्वप्न साकार हो पाया था।

3.4 अलाउद्दीन का राज्यारोहण

भिलसा तथा देवगिरि के अभियानों के बाद अलाउद्दीन का अगला अभियान दिल्ली का तख्त हासिल करना था। बूढ़े और शिथिल सुल्तान के प्रति बढ़ते हुए असन्तोष से दिल्ली के तख्त तक पहुंचने की उसकी राह आसान होती जा रही थी। अलाउद्दीन के प्रति अनुरक्त सुल्तान को अहमद चप ने उसके गुपचुप देवगिरि अभियान का हवाला देकर उससे सावधान रहने की सलाह भी दी थी पर सुल्तान का अपने भतीजे की वफ़ादारी पर भरोसा ज्यों का त्यों बना रहा। अपने भाई अलमास बेग के माध्यम से अलाउद्दीन ने सुल्तान से देवगिरि अभियान गुप्त रखने की क्षमा मांगी और उसे कड़ा आने का निमन्त्रण दिया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। कड़ा में सुल्तान को देवगिरि की लूट सौंपे जाने का वादा किया गया था। अलमास बेग ने सुल्तान को इस बात के लिए भी राज़ी कर लिया कि वह मानिकपुर में अलाउद्दीन से बिना अपने सैनिकों को साथ लिए बिना अकेला मिले। दूसरी ओर अलाउद्दीन सुल्तान का विधिवत स्वागत करने के बहाने अपनी सेना के साथ था। सुल्तान से मिलते ही अलाउद्दीन के अधिकारियों, मुहम्मद सलीम और इख्तियारुद्दीन हुद ने सुल्तान पर हमला कर दिया। सुल्तान अपने सभी अनुचरों के साथ मारा गया। भाले पर टंगे हुए सुल्तान जलालुद्दीन के सिर के सामने अलाउद्दीन की ताजपोशी की गई। इस षडयन्त्र में शामिल अलमास खाँ, ज़फ़र खाँ, हिज़ाब्रुद्दीन, मलिक संजर, अल्प खाँ, नुसरत खाँ आदि को पुरस्कृत किया गया। परन्तु दिल्ली पर अभी भी जलालुद्दीन के समर्थकों का अधिकार था। देवगिरि अभियान से प्राप्त अथाह धन-सम्पदा के बल पर अलाउद्दीन ने जहां एक ओर विशाल सेना संगठित की वहीं उसने इसके बल पर अपने विरोधियों को भी अपनी ओर मिला लिया। अहमद चप जलालुद्दीन के बेटे और उसकी बेगम के साथ मुल्तान चले गए। दिल्ली में 22 अक्टूबर, 1296 को बलबन के लालमहल में अलाउद्दीन की विधिवत ताजपोशी हुई। मुल्तान में उलुग खाँ और ज़फ़र खाँ ने जलालुद्दीन के समर्थकों को पराजित कर मौत के घाट उतार दिया।

3.5 सुल्तान के रूप में अलाउद्दीन

3.5.1 अलाउद्दीन का राजत्व का सिद्धान्त

अलाउद्दीन छल-कपट, विद्रोह, तलवार और सोने के बल पर सुल्तान बना था। उसको अमीरों का समर्थन दौलत के बल पर खरीदना पड़ा था और प्रजा को उसने तलवार के ज़ोर पर अपना सुल्तान मानने के लिए विवश किया था। अलाउद्दीन की ताजपोशी को उलेमा वर्ग का समर्थन भी प्राप्त नहीं था। इन परिस्थितियों में उसका अस्तित्व सदैव खतरे में था। बलबन की मृत्यु के बाद राजनीति में जहां सुल्तान का रुतबा घटा था वहीं अमीरों का दबदबा बना हुआ था। अनेक अमीर स्वयं सुल्तान बनने का स्वप्न देख रहे थे। अलाउद्दीन ने बलबन के राजत्व के दैविक सिद्धान्त का पोषण किया। उसने शासक को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित किया। अलाउद्दीन ने अमीरों की शक्ति व प्रतिष्ठा में कमी की। उसने जलाली अमीरों का पूर्णतया दमन कर दिया और अपने वफ़ादार अमीरों की शक्तियों को भी नियन्त्रित किया। गुप्तचरों का जाल बिछाकर अमीरों के आपस में मिलने-जुलने, वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने आदि पर उसने राज्य का नियन्त्रण स्थापित किया। विद्रोह व षडयन्त्र करने वालों का समूल विनाश कर उसने सभी को भविष्य में विद्रोह करने का दुःसाहस करने से रोक दिया। अलाउद्दीन ने उलेमा वर्ग की भी उपेक्षा की। उलेमाओं को मिलने वाली आर्थिक सुविधाओं और रियायतों को उसने समाप्त कर उन्हें साधनहीन बना दिया। अलाउद्दीन चूंकि शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था इसलिए धर्म के नाम पर उलेमा वर्ग द्वारा राजकाज में हस्तक्षेप करना उसे स्वीकार्य नहीं था। उसने राज्य पर से धर्म का नियन्त्रण हटा दिया। अलाउद्दीन ने खलीफ़ा से खिलअत अथवा उपाधि प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया।

3.5.2 मंगोल आक्रमणों की समस्या के निवारण के प्रयास

अलाउद्दीन के सुल्तान बनने के सवा साल बाद ही कंदर के नेतृत्व में मंगोंलों की एक लाख की सेना पंजाब तक चढ़ आई। फ़रवरी, 1298 में उलुग खाँ और ज़फ़र खाँ ने उन्हें जालन्धर में पराजित किया। इसी वर्ष के अन्त में साल्दी के नेतृत्व में मंगोलों ने सिवस्तान के किले पर अधिकार कर लिया किन्तु ज़फ़र खाँ ने उस पर दोबारा अधिकार कर साल्दी और वह उसके भाई सहित अनेक मंगोलों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले आया। सन् 1299 में कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में दो लाख मंगोलों की सेना ने दिल्ली को घेर लिया। अलाउद्दीन और ज़फ़र खाँ के संयुक्त प्रयास से मंगोलों की भयंकर पराजय हुई और फिर भारी नुक्सान के बाद उन्हें वापस लौटना पड़ा। सन् 1303 में अलाउद्दीन जब स्वयं चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करने में व्यस्त था और उसकी सेना का एक बड़ा भाग तेलंगाना विजय अभियान के लिए गया हुआ था तब तरगी के नेतृत्व में मंगोल सेना ने एक बार फिर दिल्ली पर घेरा डाल दिया। इस बार अलाउद्दीन को सीरी के किले में शरण लेनी पड़ी। मंगोलों ने दिल्ली के आसपास का इलाका खूब लूटा किन्तु घेरा डालने की तकनीक से अपरिचित मंगोलों को शीघ्र ही वापस लौटना पड़ा। अलाउद्दीन ने अब मंगोल समस्या से निपटने के लिए ठोस कदम उठाए। उसने उत्तर-पश्चिमी सीमा से लेकर दिल्ली तक किलों की मरम्मत कराई और उनमें अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित विशाल सेना तैनात की। उसने अपनी सेना का पुनर्गठन किया। भारी संख्या में नए सैनिकों की भर्ती की गई और उनके लिए नकद वेतन की व्यवस्था की गई। इतनी बड़ी संख्या में सैनिकों को नकद वेतन देने में कठिनाई देखते हुए उसने आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए बाज़ार नियन्त्रण की नीति अपनाई। मंगोलों को अब दिल्ली पर आक्रमण करने का साहस

नहीं हो सका किन्तु उन्होंने दिसम्बर, 1305 में अली बेग, के नेतृत्व में दोआब पर हमला कर दिया किन्तु मलिक नायक ने अमरोहा में उन्हें पराजित किया। बन्दी मंगोलों के सिरों को काटकर सीरी के किले की दीवारों में चुनवा दिया गया। सन् 1306 में कबाक, इक़बाल व ताइबू के आक्रमण मलिक नाइब काफ़ूर तथा ग़ाज़ी मलिक द्वारा विफल किए गए। इसके बाद हज़ारों बन्दी मंगोलों को दिल्ली लाकर मौत के घाट उतारा गया। मंगोलों की आन्तरिक समस्याओं और अलाउद्दीन के उनके विरुद्ध उठाए गए कठोर कदमों के कारण सन् 1307 से लेकर अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्त तक मंगोल उसके राज्य पर आक्रमण करने से दूर ही रहे।

3.6 अलाउद्दीन की बाज़ार नियन्त्रण की नीति

3.6.1 बाज़ार नियन्त्रण की नीति लागू करने का कारण

ख़ैरुल मजालिस के लेखक शेख नासिरुद्दीन ने अलाउद्दीन की बाज़ार नियन्त्रण की नीति को जन-कल्याण हेतु उठाया गया कदम बताया है परन्तु इस दावे में सत्य का लेशमात्र भी नहीं है। तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता, मुद्रा अवमूल्यन, शाही खजाने में धन की कमी के बावजूद सैनिक खर्च में सीमातिरेक वृद्धि की आवश्यकता ने अलाउद्दीन को इस जटिल, कठिन और लगभग अव्यावहारिक नीति को अपनाने के लिए प्रेरित किया था। ज़ियाउद्दीन बर्नी की फ़तवा-ए-जहांदारी के अनुसार इस नीति का उद्देश्य राज्य पर मंगोल आक्रमणों के संकट को जड़ से समाप्त करने के लिए एक विशाल सेना का सीमित संसाधन में खर्च चलाना था। इसके अतिरिक्त आन्तरिक विद्रोहों का दमन करने के लिए तथा साम्राज्य का विस्तार करने के लिए भी अलाउद्दीन को अपने नियन्त्रण में एक विशाल और स्थायी सेना की आवश्यकता थी। इस विशाल सेना के सैनिकों को नकद वेतन का भुगतान करने के लिए राजकोष में सीमित धन था। सैनिकों की क्रय क्षमता के अनुरूप उनके जीवन से जुड़ी सभी आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्र रखने के लिए अलाउद्दीन ने बाज़ार नियन्त्रण की नीति अपनाई थी।

3.6.2 सैनिकों के वेतन का निर्धारण

राजकोष की क्षमता का आकलन कर एक घुड़सवार को मात्र 234 टंके का वार्षिक वेतन ही दिया जा सकता था। अलाउद्दीन ने इस बात का खयाल रखा था कि अपने वेतन में हर-एक सैनिक अपने परिवार और अपने काम के लिए ज़रूरी मवेशियों का खर्च सुगमतापूर्वक निकाल सके।

3.6.3 मूल्य नियन्त्रण

मध्यकालीन इतिहास में अलाउद्दीन पहला शासक था जिसने सुनियोजित आर्थिक नीति अपनाई थी। परवर्ती शासकों में शेरशाह तथा अकबर ने उसका अनुकरण किया था। मुद्रा अवमूल्यन के कारण वस्तुओं के दाम आसमान छू रहे थे। मंगोल आक्रमणों के कारण आयातित घोड़ों की कीमत बहुत बढ़ गई थी। आवश्यक वस्तुओं की कालाबाज़ारी हो रही थी। इन विषम परिस्थितियों में सैनिकों की क्रय क्षमता के अनुरूप उनके जीवन से जुड़ी सभी आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्र रखने के लिए अलाउद्दीन ने बाज़ार नियन्त्रण की नीति अपनाई थी। उसने खाद्यानों, कपड़ों, घोड़ों, गुलामों, बांदियों आदि सभी के मूल्य निर्धारित किए गए। खाद्यानों में गेहूँ 7.5 जीतल प्रति मन, चावल 5 जीतल प्रति मन, नमक 2 जीतल प्रति मन और शक्कर 1.25 जीतल प्रति सेर पर बेची जानी निश्चित की गई। अच्छा सूती कपड़ा 1 टंके में 20 गज़ और मोटा कपड़ा 1 टंके में 40 गज़, सूती चादर का

दाम 10 जीतल प्रति नग निर्धारित हुआ किन्तु रेशमी कपड़ा काफ़ी महंगा रहा। मवेशियों के बाज़ार में अच्छे घोड़े का दाम 100 से 120 टंका, मध्यम श्रेणी के घोड़े का 80 से 90 टंका और टट्टू का दाम 10 से 20 टंका रखा गया। घोड़ों की तुलना में गुलाम और बांदियों की कीमत बहुत कम रखी गई थी। अलाउद्दीन ने बाज़ार से बिचौलियों और दलालों की उपस्थिति लगभग समाप्त कर दी थी। बाज़ार नियन्त्रण की नीति लागू किए जाने से लेकर अलाउद्दीन की मृत्यु तक वस्तुओं के दाम स्थिर रहे परन्तु इस व्यवस्था का लाभ मुख्य रूप से वेतन भोगियों को और वह भी दिल्ली और उसके आसपास के निवासियों को ही मिल पाया था।

3.6.4 बाज़ार नियन्त्रण की व्यवस्था

बाज़ारों का नियन्त्रण दीवान-ए-रियासत करता था। मलिक याकूब इस विभाग का अध्यक्ष था। अलाउद्दीन ने विभिन्न आवश्यक वस्तुओं के लिए चार अलग-अलग बाज़ार स्थापित किए थे। ये थे - खाद्यान्न बाज़ार, निर्मित वस्तुओं का बाज़ार (सराय-ए-अद्ल), सामान्य वस्तुओं का बाज़ार, मवेशियों, गुलाम तथा बांदियों का बाज़ार। प्रत्येक बाज़ार एक शुहना-ए-मण्डी के नियन्त्रण में होता था। सभी व्यापारियों का पंजीकरण किया जाता था और सुल्तान तक रोज़ाना बाज़ार की गतिविधियों की सूचना पहुंचाने का दायित्व शुहना, बरीद तथा मुंशियों का था। महंगी तथा आयातित किन्तु आवश्यक वस्तुओं को कम कीमत पर उपलब्ध कराए जाने के लिए सरकारी सहायता उपलब्ध कराई जाती थी किन्तु इसके लिए खरीदार को परवाना रईस (अनुज्ञप्ति अधिकारी) से परमिट प्राप्त करना होता था। अलाउद्दीन ने संकटकालीन स्थिति से निपटने के लिए बड़ी संख्या में राजकीय गोदामों में खाद्यान्न जमा करने की व्यवस्था की थी। अकाल, बाढ़ आदि प्राकृतिक विपदाओं की स्थिति में खाद्यान्न की कमी की आपूर्ति इन्हीं सरकारी गोदामों में जमा खाद्यान्न से की जाती थी।

3.6.5 कानून तोड़ने वालों के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था

अलाउद्दीन ने कीमतों में फेर बदल, माप-तौल में गड़बड़ी, जमाखोरी, मिलावट आदि करने वालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की थी। भ्रष्ट अधिकारी भी उसके कोप का भाजन बनते थे।

3.6.6 व्यापारियों, किसानों तथा आम आदमी को हानि

बाज़ार नियन्त्रण की नीति कृत्रिम, दमनकारी तथा शोषक थी। इसके दूरगामी परिणाम लाभकारी नहीं हो सकते थे। इससे व्यापारियों को मिलने वाले लाभ में बहुत कमी आई। प्रॉफ़िट इन्सेन्टिव समाप्त होने के कारण एक प्रकार से वे कमीशन एजेण्ट या मज़दूर बन कर रह गए। व्यापारियों ने व्यापार एवं वाणिज्य के विकास में रुचि लेना छोड़ दिया। किसानों को अपने उत्पादों को निर्धारित मूल्यों पर बेचने के कारण कम धन प्राप्त होता था जबकि उन्हें लगान नकदी में देना होता था। इससे कृषि के विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। आम आदमी के पास तो सस्ती वस्तुएं खरीदने के लिए भी पैसे नहीं थे। ज़ियाउद्दीन बर्नी कहता है - 'सुना है कि बाज़ार में ऊँट एक दाम का बिक रहा था पर किसी की जेब में उसे खरीदने के लिए एक भी दाम नहीं था।'

3.7 अलाउद्दीन का विजय अभियान

3.7.1 उत्तर भारत की विजय

अलाउद्दीन ने सुल्तान जलालुद्दीन के शासनकाल में ही एक विजेता के रूप में ख्याति अर्जित कर ली थी। वह सिकन्दर महान की भांति एक विश्व विजेता बनना चाहता था। उसने अपनी मुद्राओं में स्वयं के लिए 'सिकन्दर

सानी (द्वितीय) शब्द अंकित किया। दिल्ली के कोतवाल अला-उल-मुल्क ने उसे विश्व विजय अभियान प्रारम्भ करने से पहले हिन्दुस्तान के अविजित राज्यों को जीतने की सलाह दी थी।

1. भविष्य में दक्षिण विजय की योजना के लिए गुजरात विजय उपयोगी सिद्ध हो सकती थी। गुजरात के पड़ौस के क्षेत्र सिंध और मुल्तान में उसका विश्वस्त उलुग खाँ नियुक्त था। सन् 1298 के उत्तरार्ध में नुसरत खाँ तथा उलुग खाँ को गुजरात अभियान का दायित्व सौंपा गया जिन्होंने वहां के शासक कर्ण बघेला को उसके विश्वासघाती मन्त्री माधव की सहायता से पराजित किया और उसकी राजधानी अन्हिलवाड़ पर अधिकार कर लिया। भारी लूट के साथ कर्ण बघेला की रानी कमलादेवी को अलाउद्दीन को सौंप दिया गया। रानी कमलादेवी से अलाउद्दीन ने निकाह कर लिया।

2. रणथम्भौर पर विजय प्राप्त करने में सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी असफल रहा था। रणथम्भौर के किले का अत्यधिक सामरिक महत्व था। वहां के चौहान शासक हम्मीरदेव द्वारा बागी नव-मुस्लिम मंगोलों को शरण दिया जाना और उनको उसे वापस सौंपे जाने से इंकार किया जाना, सुल्तान के कोप के कारण बने। जब नुसरत खाँ तथा उलुग खाँ को रणथम्भौर के किले पर अधिकार करने में असफलता मिली तब स्वयं अलाउद्दीन ने वहां पर आकर घेरा डाला किन्तु उसे भी एक साल तक सफलता नहीं मिली। बाद में हम्मीरदेव के विश्वासघाती मन्त्री रनमल को अपने पक्ष में कर सुल्तान ने किले पर सन् 1301 में अधिकार कर लिया। हम्मीरदेव अपने साथियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ और वहां की महिलाओं ने जौहर किया। अपने स्वामी के विश्वासघाती रनमल को अलाउद्दीन ने प्राणदण्ड दिया।

3. अलाउद्दीन द्वारा मेवाड़ अभियान के पीछे अनुपम सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध राणा रतन सिंह की रानी पद्मिनी को अपने अधिकार में करने की लालसा मानी जाती है। मलिक मुहम्मद जायसी ने इस प्रसंग को आधार बनाकर अपने महाकाव्य पद्मावत की रचना की है। सन् 1303 में अलाउद्दीन ने मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ पर घेरा डाला। पाँच महीने के घेरे के बाद संसाधनों की कमी के कारण रतन सिंह और उसके सैनिकों ने किले से बाहर निकल कर युद्ध किया और सभी वीरगति को प्राप्त हुए। अलाउद्दीन पद्मिनी को अपने हरम में सम्मिलित नहीं कर सका क्योंकि उसने किले में उपस्थित हज़ारों स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। अमीर खुसरो के अनुसार सुल्तान ने चित्तौड़ पर अधिकार करने के बाद 20000 राजपूतों का वध किया। उसने चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद रखकर उसे खिज्र खाँ को सौंप दिया परन्तु चित्तौड़ पर उसका अधिकार स्थायी नहीं रहा।

4. सन् 1305 में आइन-उल-मुल्क मुल्तानी के नेतृत्व में सुल्तान की सेना ने मालवा के शासक महलकदेव को पराजित कर मार डाला और माण्डू, धार व चन्देरी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद जालौर के शासक कान्हणदेव ने आइन-उल-मुल्क मुल्तानी के समक्ष बिना युद्ध किए आत्म-समर्पण कर दिया। सुल्तान ने आइन-उल-मुल्क मुल्तानी को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया।

5. 1309 में अलाउद्दीन ने स्वयं अभियान का नेतृत्व कर मारवाड़ के शासक शीतलदेव को पराजित कर व उसको मार कर सिवाना के किले पर अधिकार कर लिया और वहां कमालुद्दीन को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

6. जालौर में कान्हणदेव ने अलाउद्दीन की आधीनता का शिकंजा तोड़कर स्वयं को फिर से स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। गुलेबहिश्त खोजा के नेतृत्व में शाही सेना ने कान्हणदेव को मारकर जालौर पर पुनराधिकार कर लिया।

3.7.2 दक्षिण भारत की विजय

सुल्तान जलालुद्दीन के शासनकाल में अपने देवगिरि के अभियान से अलाउद्दीन को दक्षिण की अथाह धन-सम्पदा व संसाधनों का ज्ञान हो चुका था किन्तु सुल्तान बनने के कई वर्षों बाद तक वह आन्तरिक समस्याओं और मंगालों का प्रतिरोध करने में व्यस्त रहा था। उत्तर भारत पर अपनी पकड़ मज़बूत कर और मंगोल आक्रमणों से सफलतापूर्वक निपटने के बाद अलाउद्दीन दक्षिण-विजय अभियान की ओर उन्मुख हुआ। मालवा, गुजरात, मेवाड़ और मारवाड़ पर अपना अधिकार हो जाने के बाद अलाउद्दीन के लिए दक्षिण विजय अपेक्षाकृत सुगम हो गई थी। अपनी विशाल स्थायी सेना को व्यस्त रखने के लिए दक्षिण अभियान उसके लिए एक लाभकारी कार्य हो सकता था। अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन के दक्षिण अभियान का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार करना बताया है, इसी कारण हर अभियान में मन्दिरों का विध्वंस और मस्जिदों का निर्माण किया जाता था। किन्तु ऐसा तो महमूद गज़नवी भी करता था। के0 एस0 लाल यह मानते हैं कि अलाउद्दीन का दक्षिण अभियान महमूद गज़नवी के अभियानों की भांति मुख्यतः धन-प्राप्ति के उद्देश्य से किए गए थे। अलाउद्दीन का उद्देश्य दक्षिण भारतीय राज्यों को अपने प्रत्यक्ष अधिकार में करना नहीं था क्योंकि ऐसा करने के लिए उसके पास पर्याप्त संसाधन नहीं थे। वह तो इन राज्यों को अपने आधीन कर, समस्त अधिकार उन्हीं को सौंपकर, उनसे वार्षिक भेंट और अपने अभियानों के लिए आवश्यक संसाधन की मदद चाहता था। चौथी शताब्दी में समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत के राज्यों पर विजय प्राप्त कर वहां के शासकों से यही अपेक्षा की थी। बाद में अकबर ने भी विभिन्न राजपूत शासकों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया था। सुल्तान अलाउद्दीन के दक्षिण अभियानों की सफलता का मुख्य श्रेय नाइब मलिक काफ़ूर को जाता है।

1. सुल्तान के अधीनस्थ देवगिरि के शासक रामचन्द्रदेव ने तीन वर्षों से खिराज नहीं दिया था। उसने गुजरात के पूर्व शासक कर्ण बघेला को उसकी पुत्री देवलदेवी के साथ न केवल शरण दी थी अपितु उसे बगलाना पर अधिकार करने में मदद भी दी थी। अलाउद्दीन की बेगम कमलादेवी अपनी पुत्री देवलदेवी को दिल्ली बुलवाना चाहती थी। अलाउद्दीन ने अपने नाइब मलिक काफ़ूर को देवगिरि पर तथा अल्प खाँ को बगलाना पर अधिकार करने के लिए भेजा। मार्च, 1307 में मलिक काफ़ूर ने रामचन्द्रदेव को पराजित किया और भारी लूट के साथ उसे सपरिवार वह दिल्ली ले आया। सुल्तान की आधीनता स्वीकार करने के बाद रामचन्द्रदेव को न केवल उसका राज्य उसे वापस किया गया अपितु उसे 'राय रायन' की उपाधि और नवसारी का क्षेत्र भी प्रदान किया गया। अल्प खाँ ने कर्ण बघेला को खदेड़कर बगलाना पर अधिकार कर लिया।

2. वारंगल (तेलंगाना) के शासक प्रतापरुद्रदेव ने सन् 1303 में अपने विरुद्ध मलिक काफ़ूर के अभियान को विफल कर दिया था। नवम्बर, 1309 में एक बार फिर मलिक काफ़ूर वारंगल अभियान का नेतृत्व प्रदान किया गया। वारंगल दुर्ग को काफ़ूर ने घेर लिया। एक समय तक प्रतिरोध करने के बाद प्रतापरुद्रदेव ने काफ़ूर के समक्ष सन्धि प्रस्ताव रखा जिसे काफ़ूर ने स्वीकार कर लिया। प्रचुर मात्रा में धन और प्रतापरुद्रदेव द्वारा वार्षिक खिराज दिए जाने के आश्वासन के साथ काफ़ूर दिल्ली लौट आया।

3. सन् 1310 में अलाउद्दीन ने मलिक काफ़ूर को तीसरी बार दक्षिण विजय के लिए भेजा। इस बार के अभियान का उद्देश्य धन-प्राप्ति के अतिरिक्त होयसल (द्वारसमुद्र) राज्य के शासक वीर बल्लाल को दिल्ली सल्तनत के आधीन करना था। वीर बल्लाल को पराजित कर मलिक काफ़ूर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहा।

4. सुदूर दक्षिण में स्थित मदुरा राज्य में सुन्दर पाण्ड्य तथा वीर पाण्ड्य के मध्य हो रहे गृहयुद्ध में सुन्दर पाण्ड्य ने होयसल अभियान के दौरान मलिक काफ़ूर से सहायता मांगी। मलिक काफ़ूर ने मदुरा पर आक्रमण कर दिया। वीर पाण्ड्य भाग निकला। सुन्दर पाण्ड्य को सहायता देने का काफ़ूर का कोई इरादा नहीं था। उसने जमकर मदुरा को लूटा उसने अनेक मन्दिरों को ध्वस्त किया। काफ़ूर रामेश्वरम के मन्दिर को ध्वस्त करने पहुंचा या नहीं, यह विवादास्पद है । पाण्ड्यों में से कोई सुल्तान के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ। सुन्दर पाण्ड्य के चाचा पाण्ड्य ने मलिक काफ़ूर की सेना बहुत हानि पहुंचाई किन्तु वह अपरिमित धन-सम्पदा लूट कर दिल्ली लौटने में सफल रहा।

5. सन् 1309 में रामचन्द्रदेव की मृत्यु के बाद शंकरदेव देवगिरि का शासक बना। शंकरदेव ने स्वय को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। सन् 1313 में मलिक काफ़ूर ने शंकरदेव को परास्त कर मार डाला और दक्षिण में राचूर, गुलबर्गा, मुद्गल सहित विशाल क्षेत्र को जीत लिया। सुल्तान के आदेश पर हरपालदेव को देवगिरि का अधीनस्थ शासक बनाकर काफ़ूर, लूट और भेंट की राशि के साथ दिल्ली लौट आया।

3.8 एक शासक के रूप में अलाउद्दीन का आंकलन

अलाउद्दीन ने अपनी बाज़ार नियन्त्रण नीति, उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत की विजयों से मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। दिल्ली का कोई और सुल्तान उसकी व्यावहारिक बुद्धि, उसका रण-कौशल, उसकी दूरदर्शिता और अपनी महत्वाकांक्षाओं को साकार रूप देने की क्षमता में उसका मुकाबला नहीं कर सकता। वह पहला सुल्तान था जिसने धर्म को यथासम्भव राजनीति से अलग रखने में सफलता प्राप्त की थी। मुस्लिम शासकों में अकबर से पूर्व वही था जिसने कि अपने राज्य को भारत के साम्राज्य के रूप में विकसित किया था और अकबर से बहुत पहले वही था जिसने अपने अधीनस्थ शासकों को वार्षिक भेंट तथा अन्य प्रकार की सहायताओं के बदले लगभग स्वतन्त्र शासक की भांति राज्य करने का अधिकार देकर अपनी व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया था। वह एक महान भवन तथा नगर निर्माता था। अमीर खुसरो तथा ज़ियाउद्दीन बर्नी जैसे समकालीन इतिहासकारों ने उसके शासन की उपलब्धियों का विस्तार से उल्लेख किया है। किन्तु अलाउद्दीन एक क्रूर, कृतघ्न, स्वार्थी, शक्की, निरंकुश तथा विलासी शासक था। राज्य की समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर उसने अपने उत्तराधिकारियों को अयोग्य बना दिया था। उसने किसानों पर करों का बोझ इतना बढ़ा दिया कि उनका जीना दूभर हो गया। उसकी बाज़ार नियन्त्रण की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है किन्तु यह भी सत्य है कि इससे आम आदमी का कोई भला नहीं हुआ और व्यापार तथा वाणिज्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अपने वंश के पतन के लिए मुख्य रूप से स्वयं अलाउद्दीन ही उत्तरदायी था। किन्तु इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली सल्तनत का सबसे महत्वपूर्ण शासक था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. जलालुद्दीन खिलजी का राज्यारोहण।
2. जलालुद्दीन खिलजी के शासनकाल में अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक अभियान।
3. अलाउद्दीन का राजत्व का सिद्धान्त।

4. मंगोल आक्रमणों की समस्या के निवारण के प्रयास।

5.अलाउद्दीन द्वारा चित्तौड़ की विजय।

6. मलिक काफ़ूर।

3.9 सारांश

दिल्ली सल्तनत में खिलजी वंश का शासन सन् 1290 से 1320 तक रहा। जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी तथा कुतबुद्दीन मुबारक शाह इस वंश के प्रमुख शासक थे। जलालुद्दीन खिलजी एक उदार किन्तु शिथिल शासक था। उसके शासनकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि उसके भतीजे अलाउद्दीन के भिलसा तथा देवगिरि अभियान थे। अलाउद्दीन खिलजी अपने उपकारी चाचा सुल्तान जलालुद्दीन की हत्या कर सुल्तान बना था। उसने अपने विरोधियों का दमन करने में कभी भी देर नहीं की। अलाउद्दीन ने बलबन के राजत्व के सिद्धान्त को अपनाया। उसने अमीरों की शक्तियों को क्षीण किया तथा उनकी गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त किए। अलाउद्दीन ने धर्म को राजनीति से अलग रखने में सफलता प्राप्त की। मंगोल समस्या का समाधान करना उसकी एक बड़ी उपलब्धि थी। अलाउद्दीन की बाज़ार नियन्त्रण की नीति मुख्य रूप से राज्य के सीमित संसाधनों में एक विशाल सेना के रख-रखाव को सम्भव बनाने के लिए अपनाई गई थी। किन्तु इसके क्रियान्वयन में उसने जिस सक्षमता और व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया उसकी सभी प्रशंसा करते हैं। अलाउद्दीन दिल्ली के सुल्तानों में सबसे बड़ा विजेता था। अलाउद्दीन ने गुजरात, रणथम्भौर, मालवा, मेवाड़, जालौर और मारवाड़ पर विजय प्राप्त कर उत्तर भारत की विजय का विस्तार किया। देवगिरि, वारंगल, द्वारसमुद्र और मदुरा जीतकर उसने दिल्ली सल्तनत का दक्षिण में विस्तार कर उसे एक साम्राज्य का रूप दिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारी केवल 4 वर्ष और शासन कर सके। शक्ति के सकेन्द्रीकरण का दोषी अलाउद्दीन, अपने वंश के पतन के लिए एक सीमा तक स्वयं उत्तरदायी था।

3.10 पारिभाषिक शब्दावली

- आरिज़-ए-मुमालिक - सैन्य मन्त्रालय का मन्त्री
- जलाली अमीर - जलालुद्दीन खिलजी द्वारा नियुक्त अमीर
- टंका - सामान्यतः 175 ग्रेन का चाँदी का सिक्का
- जीतल - तांबे का सिक्का।
- मुद्रा अवमूल्यन - मुद्राओं की क्रय क्षमता में कमी।
- दीवान-ए-रियासत - व्यापार एवं वाणिज्य मन्त्री का कार्यालय।
- शुहना-ए-मण्डी - खाद्यान्न के बाज़ार का मुख्य अधिकारी।
- बरीद - गुप्तचर।
- जौहर - विजयी शत्रुओं से अपने सम्मान की रक्षार्थ स्त्रियों द्वारा सामूहिक आत्मदाह।
- खिराज - भू राजस्व अथवा अधीनस्थ शासक द्वारा शासक को दी जाने वाली पेशकश।

3.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.1 जलालुद्दीन खिलजी का राज्यारोहण
2. देखिए 1.3.3 जलालुद्दीन खिलजी के शासनकाल में अलाउद्दीन खिलजी के सैनिक अभियान।
3. देखिए 1.5.1 अलाउद्दीन का राजत्व का सिद्धान्त।
4. देखिए 1.5.2 मंगोल आक्रमणों की समस्या के निवारण के प्रयास।
5. देखिए 1.7.1 उत्तर भारत की विजय का बिन्दु - 3
6. देखिए 1.7.2 दक्षिण भारत की विजय।

3.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Saran Parmatma – Studies in Medieval Indian History
2. Saksena, B. P. – Delhi Sultanat
3. Lal, K. S. – History of the Khaljis
4. Iqkram Shaikh Mohammad – Muslim Rule in India and Pakistan
5. Farooqi, M. A. – The Economic policy of the Sultans of Delhi
6. Srivastava, K. S. - Political, Social, Cultural History of Delhi Sultanate
7. हबीब, मुहम्मद - दिल्ली सल्तनत भाग 1

3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Nizami, K. S. – Some Aspects of Relgion and Politics in the Thirteenth Century
2. Quereshi, I. – Administration of the Sultanate of Delhi
3. Sirhindi, Yahiya bin Ahmed – Tarikh-i-Mubarak Shahi (Eng. Tr. Basu, K. K.)
4. Hardy, Peter – Historians of Medieval India
5. Khan Mohd, A. W. – Gold and Silver Coins Sultans of Delhi

3.14 निबंधात्मक प्रश्न

1 - अलाउद्दीन खिलजी की बाज़ार नियन्त्रण की नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई चार - तुगलक वंश : मुहम्मद बिन तुगलक की नीतियां, फिरोजशाह तुगलक के सुधार एवं धार्मिक नीति

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 गियासुद्दीन तुगलक का शासन

4.4. सुल्तान मुहम्मद तुगलक

4.4.1 दोआब में कर वृद्धि

4.4.2 राजधानी परिवर्तन

4.4.3 सांकेतिक मुद्रा

4.4.4 खुरासान तथा कराचल पर विजय की योजना

4.5 मुहम्मद तुगलक का चरित्र

4.6 सुल्तान फ़िरोज़ तुगलक

4.6.1 फ़िरोज़ तुगलक के उदारीकरण हेतु प्रयास

4.6.2 फ़िरोज़ तुगलक का राजत्व का सिद्धान्त

4.6.3 राजस्व सम्बन्धी सुधार

4.6.4 सार्वजनिक निर्माण के कार्य

4.6.5 कल्याणकारी राज्य

4.6.6 कट्टर धार्मिक नीति

4.6.7 तुगलक वंश के पतन के लिए फिरोज़ तुगलक का दायित्व

4.9 साराशं

4.10 पारिभाषिक शब्दावली

4.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अप्रैल, 1320 में खिलजी वंश का पतन हो गया था। ख्यातिप्राप्त सेनानायक और पंजाब के तत्कालीन सूबेदार गाज़ी मलिक गियासुद्दीन तुगलक ने नासिरुद्दीन खुसरो शाह को पराजित कर सितम्बर, 1320 में दिल्ली के तख्त पर अधिकार कर लिया।

तुगलक वंश में दो शासकों मुहम्मद तुगलक और फिरोज़ तुगलक ने इतिहास में अपनी अलग छाप छोड़ी है। मुहम्मद तुगलक जहां अपनी विवादास्पद नीतियों और चारित्रिक दुरूहता के लिए कुख्यात है वहीं दूसरी ओर फिरोज़ तुगलक अपने प्रशासनिक सुधारों के लिए विख्यात है।

दिल्ली सल्तनत के इतिहास में तुगलक वंश का शासन, बाकी सभी राजवंशों से अधिक, कुल 94 वर्ष तक रहा था। किन्तु इस काल में तैमूर के आक्रमण जैसी विनाशकारी घटना भी हुई थी और इस आक्रमण के बाद सुल्तान दिल्ली से पालम तक के क्षेत्र के ही शासक रह गए थे। परन्तु दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में बहमनी तथा विजयनगर राज्यों की स्थापना से ही प्रारम्भ हो गई थी। फिरोज़ तुगलक की सैनिक दुर्बलता और उसके उत्तराधिकारियो की अयोग्यता ने इसकी गति को और भी अधिक तेज़ कर दिया था।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य -

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- मुहम्मद तुगलक की विवादास्पद योजनाएं तथा राज्य पर उनका हानिकारक प्रभाव।

2. फिरोज़ तुगलक के प्रशासनिक सुधार।

3. फिरोज़ तुगलक की धार्मिक कट्टरता की नीति।

4. तुगलक वंश का पतन।

4.3 गियासुद्दीन तुगलक का शासन

अलाउद्दीन के शासनकाल के अंतिम वर्षों से ही खिलजी राज्य वंश अवनति की ओर अग्रसर होने लगा था। अलाउद्दीन के अयोग्य उत्तराधिकारियों, मलिक काफ़ूर तथा नासिरुद्दीन खुसरो शाह ने तो उसका पूर्ण पतन कर दिया। अलाउद्दीन के काल से उत्तर-पश्चिमी सीमा पर मंगोलों के विरुद्ध निरन्तर सफलता प्राप्त करने वाले और पंजाब के तत्कालीन सूबेदार गाज़ी मलिक गियासुद्दीन तुगलक ने अपने पुत्र जूना खाँ (तत्कालीन अमीर-ए-खुर्द) तथा समाना, सिविस्तान और मुल्तान के सूबेदारों के सहयोग से नासिरुद्दीन खुसरो शाह को पराजित कर मार डाला। सितम्बर, 1320 में उसने दिल्ली के तख्त पर अपना अधिकार कर लिया। सुल्तान बनते ही गियासुद्दीन तुगलक ने अलाई अमीरों को उनके पूर्व पदों पर पुनर्प्रतिष्ठित करके तथा अपने विश्वस्त समर्थकों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर अराजकता व अशान्ति की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। उसने भ्रष्ट अधिकारियों को अपदस्थ किया तथा योग्य कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें पुरस्कृत किया। अल्प काल ही में उसने अपने राज्य की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार किया। उसकी धार्मिक नीति असहिष्णुता से ग्रस्त थी किन्तु कृषि-विकास, उद्योग तथा व्यापार को प्रोत्साहन देने में उसने अपनी धार्मिक नीति को कभी आड़े नहीं आने दिया। सैनिक सुधार कर उसने अपनी सेना में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर किया। गियासुद्दीन तुगलक के काल में वारंगल तथा बंगाल में विरोधी शक्तियों का सफलतापूर्वक दमन किया गया तथा मंगोलों द्वारा उसके राज्य पर आक्रमण करने के प्रयास को निष्फल किया गया। बंगाल अभियान से लौटने के बाद अपने पुत्र जूना खाँ द्वारा दिल्ली के निकट

अफ़गानपुर में आयोजित स्वागत समारोह में अपने ऊपर तम्बू गिर जाने से गियासुद्दीन की सन् 1325 में मृत्यु हो गई।

4.4. सुल्तान मुहम्मद तुगलक

4.4.1 दोआब में कर वृद्धि

मुहम्मद तुगलक एक सुशिक्षित, बुद्धिमान तथा मौलिक प्रतिभा का धनी व्यक्ति था। वह जानता था कि शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए राजस्व प्रशासन को सुव्यवस्थित बनाना आवश्यक है। उसने प्रान्तीय सूबेदारों को आदेश दिए कि वे अपने-अपने प्रान्त की आय तथा व्यय का लेखा तैयार कर उसे दीवान-ए-विज़ारत को भेजें। उसका उद्देश्य समस्त राज्य में एक सी राजस्व व्यवस्था स्थापित करना था। दिल्ली सल्तनत में दोआब (गंगा तथा यमुना के मध्य का भू-क्षेत्र) सबसे उपजाऊ क्षेत्र था। इस कारण इससे अन्य सभी क्षेत्रों की तुलना में सबसे अधिक राजस्व अपेक्षित था किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न थी। सत्तारूढ़ होने के कुछ ही समय बाद (सन् 1325 में) मुहम्मद तुगलक ने दोआब में कर वृद्धि करने का निर्णय लिया। ज़ियाउद्दीन बर्नी के अनुसार दो दशक पूर्व दोआब के हिन्दुओं ने मंगोल - अली बेग और तार्ताक को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था इसलिए मुहम्मद तुगलक कर वृद्धि के बहाने वहां के निवासियों को सबक सिखाना चाहता था। बर्नी के अनुसार यह कर वृद्धि पूर्व कर से 10 से 20 गुनी थी परन्तु इस कथन में अतिशयोक्ति का पुट है। वास्तव में मुहम्मद तुगलक ने गृहकर तथा चराई कर के रूप में नए अबवाब (भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर) लगाए थे जोकि पूर्व निर्धारित कर के 1/20 से लेकर 1/10 तक थे। इस योजना के कार्यान्वयन का समय उपयुक्त नहीं था क्योंकि अनावृष्टि के कारण वहां के किसान पहले से निर्धारित कर चुकाने की भी स्थिति में नहीं थे। दोआब वासियों ने करों की अदायगी से इंकार किया। बरन, डलमऊ और कन्नौज में किसान-विद्रोह हुए। सुल्तान ने स्वयं अभियान का नेतृत्व कर उनका दमन किया। सुल्तान को बहुत देर बाद समझ में आया कि किसानों के दमन से उसका राजस्व बढ़ने के स्थान पर घट रहा है। उसने भूल-सुधार के रूप में अकाल-पीड़ितों को राहत, लगान वसूली पर रोक, किसानों को ऋण, सिंचाई के लिए कूओं का निर्माण आदि के आदेश दिए पर जन-धन की अपार हानि के कारण तब तक दोआब उजड़ चुका था।

4.4.2 राजधानी परिवर्तन

अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित करना मुहम्मद तुगलक की एक ऐतिहासिक भूल थी। दक्षिण में साम्राज्य विस्तार के कारण अब दिल्ली से पूरी सल्तनत पर शासन कर पाना कठिन हो गया था। मुहम्मद तुगलक एक ऐसे स्थान को अपनी राजधानी बनाना चाहता था जो उसकी सल्तनत के केन्द्र में स्थित हो। दौलताबाद नगर (पुराना नाम देवगिरि) दिल्ली, गुजरात, लखनौती, सतगांव, सुनारगांव, वारंगल, द्वारसमुद्र, माबर और कम्पिला से लगभग एक समान दूरी पर था। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत धन-धान्य से परिपूर्ण था और वहां अपेक्षाकृत शान्ति भी स्थापित थी। सन् 1327 में सुल्तान ने विशेषज्ञों से परामर्श किए बिना राजधानी परिवर्तन का ऐतिहासिक किन्तु मूर्खतापर्ण निर्णय ले लिया। उसने इस निर्णय के दूरगामी परिणामों पर कोई विचार नहीं किया और न ही देश की राजनीतिक राजधानी व सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में दिल्ली के गौरवशाली

इतिहास को महत्व दिया। उत्तर-पश्चिमी सीमा से निरन्तर हो रहे मंगोल आक्रमणों की समस्या से दौलताबाद जैसे दूरस्थ क्षेत्र से कैसे निपटा जाएगा, इस प्रश्न का हल खोजना भी उसने आवश्यक नहीं समझा। वह सख्ती के साथ अपने इस अव्यावहारिक और अटपटे निर्णय के कार्यान्वयन में जुट गया। इब्न बतूता ने सुल्तान पर आरोप लगाया है कि दिल्ली वासियों को उसकी गुप्त पत्रों के माध्यम से भर्त्सना करने का दण्ड, राजधानी परिवर्तन और दिल्ली से निर्वासन के रूप में दिया गया था। इस अव्यावहारिक निर्णय के विनाशकारी परिणाम हुए। इब्न बतूता के सन् 1334 के वृतान्त से ज्ञात होता है कि सुल्तान, दिल्ली के सभी निवासियों को दौलताबाद नहीं ले गया था। अपने मूर्खतापूर्ण निर्णय के विनाशकारी परिणाम देखने के बाद सन् 1337 में सुल्तान ने फिर से दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया लेकिन इस दस वर्ष की अवधि के दौरान इतने व्यापक जन-स्थानान्तरण ने अकल्पनीय कठिनाइयां उत्पन्न कीं, इसमें हज़ारों लोग मारे गए, अपरिमित आर्थिक हानि हुई तथा सुल्तान सदैव के लिए उपहास और भर्त्सना का पात्र बन गया।

4.4.3 सांकेतिक मुद्रा

दोआब में कर-वृद्धि की योजना की असफलता, राजधानी परिवर्तन की प्रक्रिया में अपरिमित व्यय, विद्रोहों को कुचलने में और आक्रमणकारी तार्माशीरीन मंगोल को वापस लौटने के लिए भारी मात्रा में धनराशि देने के कारण मुहम्मद तुगलक का राजकोष काफ़ी खाली हो चुका था। अपने अभियानों के लिए सुल्तान को एक विशाल सेना का संगठन करना था जिसके लिए उसे अतिरिक्त धनराशि की आवश्यकता थी। सुल्तान की प्रवृत्ति नए-नए प्रयोग करने की पहले से ही थी। अपने राजकोष में अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप सोने-चाँदी की पर्याप्त मात्रा के अभाव की स्थिति में उसने सांकेतिक मुद्रा का प्रयोग किया। 13 वीं शताब्दी में चीन और ईरान में सांकेतिक मुद्रा का प्रयोग किया जा चुका था। चीन में कागज़ की सांकेतिक मुद्रा का प्रयोग सफल रहा था। मुहम्मद तुगलक ने चाँदी के टंके के स्थान पर पीतल और तांबे की सांकेतिक मुद्रा जारी करने का आदेश दिया। सुल्तान ने सांकेतिक मुद्राओं के ढाले जाने में इस प्रकार की कोई सावधानी नहीं बरती कि जाली सिक्कों को सांकेतिक मुद्रा के रूप में बाज़ार में चलाया न जा सके। बर्नी के अनुसार हिन्दुओं के घर जाली सिक्के ढालने वाली टकसाल बन गए परन्तु सत्य तो यह है कि सुल्तान की असावधानी का लाभ अनेक अवसरवादियों ने उठाया और अपने ढाले हुए तांबे और पीतल के सिक्के चाँदी के टंके के रूप में बाज़ार में चलाए। जब जाली सिक्कों से बाज़ार पटने के कारण आर्थिक जीवन ठप्प पड़ने लगा तो सुल्तान ने सांकेतिक मुद्राओं का चलन रोकने तथा जाली सिक्कों के बदले राज्य की ओर से उनकी तौल के बराबर चाँदी लौटाए जाने का आदेश दिया। जाली सिक्कों के बदले राज्य की ओर से चाँदी लेने के लिए तुगलकाबाद में जाली सिक्कों का पहाड़ खड़ा हो गया किन्तु सुल्तान ने बिना कोई आपत्ति उठाए राजकोष से उनका भुगतान करा दिया। इस प्रकार अपने जल्दबाज़ी वाले अव्यावहारिक निर्णय से राजकोष और अपनी प्रतिष्ठा, दोनों को ही सुल्तान ने एक साथ, कभी भी न भर पाने वाली चोट पहुंचाई।

4.4.4 खुरासान तथा कराचल पर विजय की योजना

1. मुहम्मद तुगलक को तार्माशीरीन मंगोल ने खुरासान तथा ईराक़ की राजनीतिक अस्थिरता की जानकारी दी थी। इन क्षेत्रों की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर मुहम्मद तुगलक ने उन पर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य में मिलाने की महत्वाकांक्षी किन्तु अव्यावहारिक योजना बनाई। बर्नी के अनुसार उसने इसके लिए न केवल

370000 की सेना संगठित की अपितु इन सैनिकों को एक वर्ष के अग्रिम वेतन का भुगतान भी कर दिया। दूरस्थ एवं अनजान देश की युद्धप्रिय जातियों को अत्यन्त दुर्गम मार्ग से गुज़रते हुए जीतना कोई आसान बात नहीं थी। शीघ्र ही सुल्तान को अपनी योजना की अव्यावहारिकता समझ में आ गई और उसने भारी नुक्सान उठाकर अभियान शुरू होने से पहले ही उसको रद्द कर दिया।

2. सन् 1337 में मुहम्मद तुगलक ने कांगड़ा में नगरकोट पर विजय प्राप्त की थी। इस विजय से उत्साहित होकर उसने कराचल विजय की योजना बनाई। गॉर्डन ब्राउन के अनुसार यह मध्य हिमालय में स्थित कुल्लू तथा कांगड़ा का क्षेत्र था जब कि मेहंदी हुसेन इसे कुमाऊँ तथा गढ़वाल मानते हैं। फ़रिश्ता के अनुसार चूंकि कराचल हिन्दुस्तान और चीन के मध्य में स्थित था इसलिए यह अभियान उसके द्वारा चीन पर विजय प्राप्त करने हेतु सैनिक अभियान का पूर्वाभ्यास था। खुसरो मलिक के नेतृत्व में भेजे गए इस सैनिक अभियान को कराचल के शासक को सुल्तान की आधीनता स्वीकार कर खिराज देने के लिए राज़ी करने में अवश्य सफलता मिली। इब्न बतूता के अनुसार लौटते समय वर्षा और बीमारी से जूझ रही खुसरो मलिक की सेना पर पहाड़ियों पर छिपे हमलावरों ने आक्रमण कर उसे लूटा और उसे लगभग पूरी तरह नष्ट कर दिया। इस सेना के मुट्ठी भर अधिकारी और सैनिक अपनी जान बचाकर वापस आ सके। इस अभियान की असफलता से अनेक महत्वाकांक्षी अधिकारियों तथा अधीनस्थ शासकों को सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा मिली और इसके बाद विधिवत साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया।

4.5 मुहम्मद तुगलक का चरित्र

साहित्य, दर्शन, तर्कशास्त्र, इतिहास, गणित और खगोलशास्त्र का उद्भट विद्वान, एक लब्धप्रतिष्ठ कवि एवं लेखक, सुलेख में पारंगत, कुशल वक्ता, शास्त्रार्थ में निपुण और मौलिक चिन्तक सुल्तान मुहम्मद तुगलक अपनी अव्यावहारिकता, जल्दबाज़ी, अनियन्त्रित क्रोधी एवं हिंसक प्रवृत्ति के कारण 'वाइज़ैस्ट ऑफ़ फ़ूल्स' तथा 'मिक्सचर ऑफ़ अपोज़िट्स' की अपमानजनक उपाधियों से जाना जाता है। इस बदनाम छवि के पीछे उसके समकालीन ज़ियाउद्दीन बर्नी तथा इब्न बतूता के अतिरंजित वृतान्तों का कुछ भी हाथ हो किन्तु इसके लिए मुख्य रूप से उसकी गलत नीतियां और उसका अपना अस्थिर व दुर्बोध चरित्र ही उत्तरदायी है। इब्नबतूता उसके द्वारा अपने महल के मुख्य द्वार पर आए दिन शवों को लटकाए जाने और अनावश्यक रक्तपात की घटनाओं का उल्लेख करता है। मेहंदी हुसेन और ईश्वरी प्रसाद सुल्तान के क्रूरतापूर्ण कृत्यों को मध्यकालीन वातावरण में आम बात मानते हैं किन्तु वे हताशा और आक्रोश में उसके द्वारा दिए गए अमानुषिक दण्ड दिए जाने की घटनाओं को उचित नहीं मानते हैं। धार्मिक संकीर्णता से परे, प्रगतिशील विचारधारा के बुद्धिवादी मुहम्मद तुगलक ने अलाउद्दीन की भांति मध्यकालीन मुस्लिम शासकों की परम्पराओं को तोड़कर धर्म को राजनीति से अलग रखने के लिए राज्य में उलेमा वर्ग की ही नहीं अपितु खलीफ़ा की भी उपेक्षा की थी। मुहम्मद तुगलक ने उलेमा वर्ग, क़ाज़ियों, खातिबों और फ़क़ीरों का न केवल अपमान किया था अपितु अनेक बार उन्हें प्रताड़ित भी किया था। इसी कारण इस वर्ग ने अक्सर उसके विरुद्ध विद्रोह करने वालों का साथ दिया था। इसामी और बर्नी मुहम्मद तुगलक को नास्तिक ठहराते हैं किन्तु वह अपने जीवन में शरियत के नियमों का पालन करता था। उसके सिक्कों में क़लमा का अंकित किया जाना खुदा में उसकी आस्था को व्यक्त करता है। कुल मिलाकर मुहम्मद तुगलक के चरित्र में गुण-अवगण का

अद्भुत एवं जटिल सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। वह खुद दुनिया से और दुनिया उससे परेशान थी। उसकी मृत्यु ने जहां जीवन के जंजाल से उसे मुक्ति दी वहां उसकी प्रजा को उस जैसे क्रूर और सनकी सुल्तान से छुटकारा मिल गया।

4.6 सुल्तान फ़िरोज़ तुगलक

4.6.1 फ़िरोज़ तुगलक के उदारीकरण हेतु प्रयास

सन् 1351 में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद उसके चाचा के लड़के फिरोज़ ने अमीरों तथा विधिविज्ञों के समर्थन से ख्वाजा जहां द्वारा मुहम्मद तुगलक के पुत्र के रूप में सुल्तान बनाए गए एक बालक को अपदस्थ कर दिल्ली का तख्त हासिल किया। एक कुशल प्रशासक के रूप में ख्याति प्राप्त मलिक मक़बूल को उसने 'खाने जहां' की उपाधि प्रदान कर अपना वज़ीर नियुक्त किया। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में उपजी राजनीतिक अस्थिरता, विद्रोहों की पुनरावृत्ति, साम्राज्य का विघटन, अनावश्यक रक्तपात, आर्थिक संकट, सुल्तान-अमीर सम्बन्धों में कटुता, सुल्तान के प्रति उलेमा वर्ग का आक्रोश और जनता में सुल्तान के प्रति बढ़ती हुई घृणा के भाव को मिटाकर फ़िरोज़ तुगलक शान्ति, सद्भाव, सभी वर्गों के साथ ताल-मेल, आपसी विश्वास और सहयोग के साथ सु-शासन स्थापित करना चाहता था।

4.6.2 फ़िरोज़ तुगलक का राजत्व का सिद्धान्त

फिरोज़ तुगलक बलबन, अलाउद्दीन तथा मुहम्मद तुगलक की भांति न तो स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक बनना चाहता था और न ही राजत्व के दैविक सिद्धान्त में आस्था रखते हुए उसे सुल्तान के आदेश में ईश्वर के आदेश की प्रतिध्वनि सुनाई देती थी। सुल्तान-अमीर सम्बन्ध के विषय में भी वह उदारवादी था। सुल्तान के रूप में राज्य के महत्वपूर्ण अमीरों तथा उलेमा वर्ग ने उसका चुनाव किया था। वह स्वयं को सल्तनत का स्वामी नहीं बल्कि उसका ट्रस्टी समझता था। सुल्तान ने अपने वज़ीरों तथा अधिकारियों को अपने दायित्व निर्वाहन हेतु पर्याप्त स्वतन्त्रता और अधिकार प्रदान किए। वह राज्य में अमीरों की महत्ता स्वीकार करता था और उनको वह अपने सेवकों के रूप में नहीं, अपितु अपने सहयोगियों के रूप में देखता था। उसकी दृष्टि में उलेमा वर्ग का राज्य में महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक स्थान था। अलाउद्दीन तथा मुहम्मद तुगलक ने राज्य में उलेमा वर्ग की भूमिका नगण्य कर दी थी किन्तु फ़िरोज़ तुगलक ने उनके साथ तुष्टीकरण की नीति अपनाई। उसने स्वयं को खलीफ़ा का नाइब घोषित किया। सन् 1356 में दिल्ली सल्तनत के वैधानिक शासक के रूप में उसने खलीफ़ा से अधिकार पत्र भी प्राप्त किया।

4.6.3 राजस्व सम्बन्धी सुधार

1. फ़िरोज़ तुगलक के तख्तनशीन होने के समय सल्तनत की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी। उसने राजस्व हेतु परम्परागत कर खिराज, खम्स, जज़िया और ज़कात को ही पर्याप्त माना। किसानों के कंधों पर मुहम्मद तुगलक के काल का दो करोड़ टंकों के ऋण का बोझ था। निर्धन किसानों से ऋण की वसूली असम्भव थी। फ़िरोज़ तुगलक ने व्यावहारिक उदारता का परिचय देते हुए किसानों का ऋण माफ़ कर दिया। अब तक भू-राजस्व एकत्र करने के लिए जिन आँकड़ों को आधार बनाया जाता था (इसे जमा कहा जाता था) वे अतिरंजित होते थे और उनके आधार पर

की जाने वाली वसूली (हासिल) कभी उनके बराबर नहीं होती थी। फ़िरोज़ ने जमा और हासिल के अन्तर को दूर करने के लिए ख्वाजा हिसामुद्दीन को नियुक्त किया जिसने सभी प्रान्तों के राजस्व सम्बन्धी दस्तावेज़ों का छह वर्षों की अवधि तक अध्ययन किया। अथक प्रयास के बाद राज्य का महसूल (जमा) 6 करोड 75 लाख टंका निर्धारित किया गया। अपने दीर्घकालीन शासन में फ़िरोज़ ने जमा में कोई बदलाव नहीं किया और अबवाबों के बोझ से किसानों को परेशान नहीं किया। इस प्रकार उसने राजस्व प्रशासन को सुनिश्चितता प्रदान की जिससे शासन में सुस्थिरता आई, राज्य की आय सुनिश्चित हो गई और किसानों को भी अप्रत्याशित कर वृद्धि की आशंका नहीं रही। बाद में शेरशाह ने जमा और हासिल में अन्तर कम करने में और भी अधिक सफलता प्राप्त की थी।

2. उद्योग एवं व्यापार की उन्नति के लिए यह आवश्यक था कि व्यापारियों से बार-बार चुंगी न वसूली जाए। स्वीकृत करों के अतिरिक्त अन्य करों की वसूली पर उसने रोक लगा दी। राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारियों - खुत, मुकद्दम आदि को अपने परम्परागत करों को वसूलने के लिए बल का प्रयोग करने से रोक दिया गया।

3. मुस्लिम परम्परा के अनुसार खम्स अर्थात युद्ध में लूटे हुए धन में से शासक को 1/5 तथा सैनिक को 4/5 भाग रखने का अधिकार है किन्तु आमतौर पर शासक इसका 4/5 भाग अपने पास रख लेते थे और 1/5 भाग सैनिक को देते थे। फ़िरोज़ तुगलक ने इस विषय में मुस्लिम परम्परा को फिर से प्रचलित किया।

4. राजस्व में जज़िया का महत्वपूर्ण स्थान था। फ़िरोज़ तुगलक गैर-मुस्लिम प्रजा के प्रति असहिष्णु था। फ़िरोज़ तुगलक से पूर्व के मुस्लिम शासकों ने ब्राह्मणों को निर्धन मानकर जज़िया से मुक्त कर रखा था किन्तु उसने ब्राह्मणों से सख्ती के साथ जज़िया वसूलने का आदेश दिया।

5. राजस्व में वृद्धि के उद्देश्य से फिरोज़ तुगलक ने कृषि-विस्तार की महत्ता को समझा। उसने कृषि-प्रोत्साहन के लिए 5 बड़ी नहरों का निर्माण कराया। यमुना, सतलज और घग्घर नदी पर नहरों का निर्माण किया गया। नहरों से सिंचित क्षेत्र में हक-ए-शिर्ब (सिंचाई कर) कुल उपज का 1/10 निर्धारित किया गया। राजस्व में वृद्धि के उद्देश्य से बागवानी को प्रोत्साहन दिया गया। सुल्तान ने दिल्ली तथा उसके आसपास 1200 बाग लगवाए।

शम्स-ए-सिराज अफ़ीफ़ ने फ़िरोज़ तुगलक के शासनकाल में किसानों की खुशहाली और बिना सरकारी नियन्त्रण के खाद्यान्न के सस्ते होने का उल्लेख किया है। जनता की खुशहाली और स्त्रियों के गहनों से लदे होने का भी वह उल्लेख करता है।

6. फ़िरोज़ तुगलक ने राजस्व एकत्र करने के लिए ठेकेदारी की प्रथा और जागीरदारी की प्रथा को पुनर्जीवित कर किसानों के शोषण तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार का रास्ता खोल दिया था।

4.6.4 सार्वजनिक निर्माण के कार्य

फ़िरोज़ तुगलक महान निर्माता था। फ़रिश्ता के अनुसार उसने 40 मस्जिदें, 20 महल, 100 सराय, 5 बड़ी नहरे, 5 जलाशय, 100 दवाखाने, 5 मकबरे, 100 हमाम, 10 स्तम्भ स्मारक और 150 पुलों के साथ लगभग 300 नगरों का निर्माण किया था। हिसार, फिरोज़ाबाद, फ़िरोज़पुर तथा जौनपुर उसके बनवाए हुए प्रसिद्ध नगर हैं। दिल्ली का फिरोज़ शाह कोटला उसी की देन है। बिजली गिरने से क्षतिग्रस्त कुतुब मीनार की मरम्मत भी उसने कराई थी।

4.6.5 कल्याणकारी राज्य

फ़िरोज़ तुगलक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में विश्वास रखता था। अनाथों तथा विधवाओं की परवरिश, खैराती दवाखानों, मदरसों तथा मक़्तबों का निर्माण, गरीब कन्याओं के विवाह हेतु आर्थिक सहायता, बेरोज़गारों को उनकी योग्यतानुसार रोज़गार दिए जाने की व्यवस्था करना आदि उसके कल्याणकारी कार्यों में सम्मिलित थे किन्तु उसकी जन-कल्याण की भावना केवल मुस्लिम प्रजा तक सीमित थी।

4.6.6 कट्टर धार्मिक नीति

फ़िरोज़ तुगलक धार्मिक प्रवृत्ति का एक धर्मभीरु, आस्थावान मुसलमान था और वह इस्लाम के संरक्षक के रूप में अपनी छवि बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था। सत्ता-प्राप्ति में उसे उलेमा वर्ग का समर्थन प्राप्त हुआ था। सुल्तान बनते ही उसने अलाउद्दीन खिलजी व मुहम्मद तुगलक की धर्म से राजनीति को अलग करने की नीति को पलटते हुए उलेमा वर्ग का राजनीतिक महत्व बढ़ा दिया और उसे आर्थिक सुविधाएं भी उपलब्ध कराईं। खलीफ़ा से उसके नाइब और सुल्तान के रूप में वैधानिक अधिकार पत्र प्राप्त करने को भी उसने अत्यधिक महत्व दिया। उसने अपने राज्य को दारुल इस्लाम का रूप दिया और गैर-मुस्लिम परम्पराओं के अनुपालन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सुल्तान को मुसलमानों का कल्याण ही सर्वोपरि था। गैर-मुस्लिमों के प्रति उसकी नीति असहिष्णुतापूर्ण थी। उसने ब्राह्मणों को जज़िया के दायरे में लाकर अपनी धर्मांधता का परिचय दिया था। उसने हिन्दुओं को ही नहीं अपितु शियाओं, महदवियों तथा सूफ़ियों का भी उत्पीड़न किया। उसने हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित होने के लिए प्रलोभन देने की नीति अपनाई। अपनी आत्मकथा फ़ुतूहात-ए-फ़िरोज़शाही में वह बड़े दम्भ के साथ प्रलोभन देकर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म में दीक्षित होने के लिए प्रेरित करने की बात स्वीकार करता है। नगरकोट और जाजनगर पर आक्रमण तथा वहां मन्दिरों व मूर्तियों का विनाश करना उसकी धार्मिक उत्पीड़न की नीति के उदाहरण थे।

4.6.7 तुगलक वंश के पतन के लिए फिरोज़ तुगलक का दायित्व

फिरोज़ तुगलक ने 37 वर्ष तक शासन किया। अपने प्रशासनिक सुधारों के लिए उसके समकालीन इतिहासकारों - ज़ियाउद्दीन बर्नी तथा शम्स-ए-सिराज अफ़ीफ़ ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आधुनिक इतिहाकारों ने उसके लोक-कल्याणकारी कार्यों के लिए उसकी तुलना अशोक व अकबर से की है। परन्तु फ़िरोज़ तुगलक ने दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया को रोकने के स्थान पर उसकी गति को और बढ़ा दिया।

1. फिरोज़ तुगलक में सैनिक प्रतिभा का नितान्त अभाव था। उसके शासनकाल में साम्राज्य विस्तार की नीति का परित्याग कर दिया गया। सैनिक अनुशासन में कमी, सैनिकों की भर्ती के नियमों में शिथिलता, पदों को वंशानुगत करना, घोड़ों को दागने तथा सैन्य-निरीक्षण की प्रथा का स्थगन और सेना में व्याप्त भ्रष्टाचार ने राज्य की सैन्य-शक्ति को अत्यन्त क्षीण कर दिया।
2. धार्मिक कट्टरता की नीति अपना कर फ़िरोज़ तुगलक ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा का सद्भाव तथा सहयोग खो दिया। उसने इस्लाम के संरक्षक का चोला पहन कर धर्मांधता तथा धार्मिक वैमनस्य को बढ़ावा दिया। उलेमा वर्ग को राजनीति में हस्तक्षेप करने का अधिकार देकर भी उसने दिल्ली सल्तनत को पतन की ओर ढकेल दिया।
3. फिरोज़ तुगलक ने दास प्रथा को बढ़ावा देकर राज्यकोष पर अनावश्यक बोझ डाला।

4. शक्ति के विकेन्द्रीकरण की नीति अपना कर फिरोज़ तुगलक ने प्रशासनिक शिथिलता को और बढ़ा दिया। उसकी अनावश्यक उदारता ने भ्रष्ट अधिकारियों तथा कर्मचारियों के दुःसाहस का पोषण किया।

5. फिरोज़ तुगलक ने अपने पुत्रों को प्रशासनिक व सैनिक प्रशिक्षण से दूर रखा। सभी परवर्ती तुगलक सुल्तानों के अयोग्य सिद्ध होने के पीछे उसका भी दायित्व है।

6. सैनिक दुर्बलता के कारण उत्तर-पश्चिमी सीमा से होने वाले आक्रमणों को रोक पाना असम्भव हो गया था। तैमूर का आक्रमण फ़िरोज़ तुगलक की मृत्यु के एक दशक बाद हुआ किन्तु उसके लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करने का दायित्व बहुत कुछ उसी का था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक।
2. सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा दोआब में कर वृद्धि।
3. सांकेतिक मुद्रा।
4. खुरासान अभियान की असफलता।
5. फ़िरोज़ तुगलक के राजस्व सम्बन्धी सुधार।
6. फ़िरोज़ तुगलक की धार्मिक नीति।

4.7 सारांश

तुगलक वंश में दो शासकों मुहम्मद तुगलक और फिरोज़ तुगलक ने इतिहास में अपनी अलग छाप छोड़ी है। मुहम्मद तुगलक जहां अपनी विवादास्पद नीतियों और चारित्रिक दुरूहता के लिए कुख्यात है वहीं दूसरी ओर फिरोज़ तुगलक अपने प्रशासनिक सुधारों के लिए विख्यात है। मुहम्मद तुगलक की अव्यावहारिक योजनाओं - दोआब में कर वृद्धि, राजधानी परिवर्तन, सांकेतिक मुद्रा तथा खुरासान व कराचल अभियान, ने दिल्ली सल्तनत को खोखला कर दिया। सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में बहमनी तथा विजयनगर राज्यों की स्थापना से प्रारम्भ हो गई। फिरोज़ तुगलक प्रशासनिक सुधार कर राज्य में शान्ति स्थापित करने एवं कृषि, उद्योग तथा व्यापार का विकास करने में सफल रहा किन्तु उसकी सैनिक दुर्बलता, अनावश्यक उदारता और धर्मांधता ने उसके राज्य को इतना कमज़ोर बना दिया कि वह वाह्य आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करने में नितान्त असमर्थ हो गया। यद्यपि तैमूर के आक्रमण से तुगलक वंश का पतन अवश्यम्भावी हो गया था किन्तु तुगलक वंश के दोनों महत्वपूर्ण शासक - मुहम्मद तुगलक तथा फ़िरोज़ तुगलक, तुगलक वंश के पतन के लिए एक सीमा तक उत्तरदायी कहे जा सकते हैं।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

- दीवान-ए-विज़ारत - वित्त मन्त्रालय।
- वाइज़ैस्ट ऑफ़ फूल्स - मूर्खों के मध्य सबसे बड़ा विद्वान।
- मिक्सचर ऑफ़ अपोज़िट्स - विरोधी प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण।

- कलमा - ला इलाहा लिल्लिलाह मुहम्मदुर्रसूलिल्लिाह (ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं है और मुहम्मद उसका पैगम्बर है।)
- ज़क़ात - मुसलमानों से लिया जाने वाला धार्मिक कर।
- जमा - अनुमानित राजस्व।
- हासिल - वास्तव में वसूला गया राजस्व।
- दारुल इस्लाम - मुसलमानों का देश।

4.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.3 गियासुद्दीन तुगलक का शासन।
2. देखिए 3.4.1 दोआब में कर वृद्धि।
3. देखिए 3.4.3 सांकेतिक मुद्रा।
4. देखिए 3.4.4 खुरासान तथा कराचल पर विजय की योजना का पहला बिन्दु।
5. देखिए 3.6.3 फ़िरोज़ तुगलक के राजस्व सम्बन्धी सुधार।
6. देखिए 3.6.6 कट्टर धार्मिक नीति।

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Husain, M. – Life and Times of Muhammad bin Tughlaq
2. Surhone, Lambert, M. – Tughlaq Dynasty
3. Nizami, K. A. (Editor) – Politics and Society in Early Medieval Period
4. Ahmed, M. – Sultan Firoz Shah Tughlaq
5. हबीब, मुहम्मद - दिल्ली सल्तनत भाग 2

4.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Venkatramanyya, N. – The Early Muslim Expansion in South India
2. Habib, M. – Hazrat Amir Khusro of Delhi
3. फ़िरोज़ शाह - फ़ुतूहात-ए-फ़िरोज़शाही (हिन्दी अनुवाद - उमर, एम0)
4. रिज़वी, अतहर अब्बास - तुगलक कालीन भारत भाग 1, 2

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

मुहम्मद तुगलक के चरित्र का आकलन कीजिए। क्या वह विरोधी प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण था?

इकाई पाँच- बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी, इब्राहिम लोदी एवं सामाजिक स्थिति

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 सुल्तान बहलोल लोदी

5.3.1 अफ़गान राजत्व का सिद्धान्त

5.3.2 बहलोल लोदी की उपलब्धियां

5.3.2.1 जौनपुर के शर्की राज्य पर विजय

5.3.2.2 विद्रोहियों का दमन

5.3.2.3 दिल्ली सल्तनत के सम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा

5.4 सुल्तान सिकन्दर लोदी

5.4.1 राज्यारोहण के समय की समस्याएं

5.4.2 समस्याओं का निराकरण

5.4.2.1 राज्य के बटवारे को समाप्त करना

5.4.2.2 हुसैन शाह शर्की का दमन

5.4.2.3 अमीरों पर नियन्त्रण तथा राजत्व के सिद्धान्त में बदलाव

5.4.3 साम्राज्य विस्तार

5.5 धार्मिक नीति

5.6 सुल्तान इब्राहीम लोदी

5.6.1 अमीरों से टकराव

5.6.2 पानीपत का प्रथम युद्ध तथा दिल्ली सल्तनत का पतन

5.7 सल्तनत काल में सामाजिक स्थिति

5.7.1 हिन्दुओं तथा अन्य गैर-मुस्लिम समुदायों की जीवन शैली

5.7.2 मुसलमानों की जीवन शैली

5.7.3 स्त्रियों की दशा

5.7.4 हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध

5.8 सारांश

5.9 पारिभाषिक शब्दावली

5.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

सुल्तान फिरोज़ शाह तुगलक के शासनकाल के अंतिम वर्षों में जिस राजनीतिक अस्थिरता ने दिल्ली सल्तनत को जकड़ा था वह अगले साठ वर्षों से भी अधिक काल तक बनी रही। वास्तव में 1451 में बहलोल लोदी के सुल्तान बनने पर ही स्थिति में कुछ सुधार आया परन्तु राज्य को पुनर्संगठित करना और विरोधी शक्तियों

का स्थायी रूप से दमन कर पाना लोदी शासकों की सामर्थ्य से परे था। राज्य के आर्थिक संसाधन भी सीमित थे। अफ़गान राजत्व के सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए सुल्तान बहलोल ने स्वयं को राज्य संघ का प्रमुख माना न कि राज्य का सार्वभौमिक शासक। जौनपुर राज्य का दिल्ली सल्तनत में विलय बहलोल लोदी की सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

बहलोल लोदी की मृत्यु के बाद सुल्तान सिकन्दर लोदी ने सुल्तान को सर्वोपरि स्थान देकर राजत्व के सिद्धान्त में परिवर्तन किया और अमीरों की शक्ति को नियन्त्रित किया। सिकन्दर लोदी की साम्राज्य विस्तार की नीति एक सीमा तक सफल रही किन्तु उसके शासनकाल में सुल्तान-अमीर सम्बन्धों में कटुता आ गई। सिकन्दर लोदी की धर्मांधता ने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को बढ़ावा दिया। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद सिंहासनारूढ़ इब्राहीम लोदी अपने दम्भ और असहिष्णुता के कारण एक असफल शासक सिद्ध हुआ। सीमा सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध न कर पाना और अपने विरुद्ध पनप रहे षडयन्त्रों के प्रति असावधान रहने के कारण पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर से पराजित होने पर उसका अन्त हुआ।

दिल्ली सल्तनत काल का समाज वर्ग भेद, जाति भेद और लिंग भेद से ग्रस्त था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समुदायों के सामाजिक जीवन में परम्परा के नाम पर रूढ़िवादिता, धर्म के नाम पर कर्म काण्ड और आस्था के नाम पर अंधविश्वास का बोलबाला था। इस काल का ग्राम्य जीवन सादगी का और शहरी, विशेषकर आभिजात्य वर्ग के शहरियों का जीवन विलासिता से परिपूर्ण था। इस काल में स्त्रियां सामान्यतः अभिशप्त जीवन व्यतीत करने के लिए विवश थीं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- अफ़गान राजत्व का सिद्धान्त, बहलोल लोदी द्वारा राज्य की अराजकतापूर्ण स्थिति में सुधार।

2- सिकन्दर लोदी के सैनिक अभियान तथा उसकी कट्टर धार्मिक नीति।

3. इब्राहीम लोदी की दोषपूर्ण नीतियां तथा पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की विजय के उपरान्त भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना।

4. दिल्ली सल्तनत काल की सामाजिक स्थिति।

5.3 सुल्तान बहलोल लोदी

5.3.1 अफ़गान राजत्व का सिद्धान्त

बहलोल अफ़गान जाति का था। अफ़गानों की कबाइली राजनीतिक अवधारणा में विश्वास करता था। शासक की पूर्ण सम्प्रभुता और उसकी निरंकुश शक्ति में अफ़गानों की आस्था नहीं थी। उनका विश्वास शासक अथवा मुखिया के चुनाव में था न कि राजत्व के दैविक सिद्धान्त और वंशानुगत शासन की अवधारणा में। अपनी कबाइली संस्कृति में विश्वास रखते हुए अफ़गानों के विभिन्न कबीले, शासक को अपनी बिरादरी का मुखिया मानते थे न कि अपना स्वामी। बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के राजत्व के दैविक सिद्धान्त के

विपरीत, सुल्तान बहलोल लोदी अफ़गानों के कबाइली और कुनबे की राजनीतिक अवधारणा में विश्वास करता था। बहलोल ने कभी भी एक स्वेच्छाचारी, निरंकुश एवं पूर्णसम्प्रभुता प्राप्त शासक की भांति व्यवहार नहीं किया। वह स्वयं को राज्य संघ का प्रमुख मात्र मानता था। उसने अपने पुरखों के स्थान रोह से अपने कबीले वालों को अपने राज्य में आने के लिए निमन्त्रित किया था। अपनी बिरादरी के अमीरों को उसने अपनी बराबरी का दर्जा दिया और सल्तनत में उनको अपना हिस्सेदार माना। उनके रूठने पर उनको मनाने के लिए उनके घर तक जाने में उसे कोई ऐतराज़ नहीं था और उनके साथ एक ही मसनद पर बैठने में उसे कोई संकोच नहीं था। उसने अपने राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को अपने सम्बन्धियों और अपने अमीरों में बांटने का निर्णय लिया था। अफ़गान राजत्व के सिद्धान्त का पोषण कर बहलोल लोदी ने अमीरों की महत्वाकांक्षाओं को बढ़ावा तो दिया था किन्तु उसने सुल्तान-अमीर सम्बन्धों में बढ़ती हुई कटुता को दूर करने में और स्वजातीय अफ़गान अमीरों के सहयोग से विघटित होती हुई दिल्ली सल्तनत में राजनीतिक स्थायित्व स्थापित करने में सफलता अवश्य प्राप्त की थी।

5.3.2 बहलोल लोदी की उपलब्धियां

5.3.2.1 जौनपुर के शर्की राज्य पर विजय

सुल्तान बनने के बाद बहलोल लोदी को विद्रोही अमीरों तथा शत्रु पड़ौसी राज्यों से घिरा, आर्थिक दृष्टि से बहुत कमज़ोर और एक अस्थिर राज्य प्राप्त हुआ था। जौनपुर के शर्की शासक दिल्ली सल्तनत के लिए सबसे बड़ा खतरा थे। सन् 1452, 1457, 1473, 1474 तथा 1479 में जौनपुर के सुल्तानों दिल्ली पर तथा दोआब पर अधिकार करने के लिए असफल सैनिक अभियान किए। जौनपुर के शासकों ने विद्रोही अमीरों का गुप्त समर्थन प्राप्त कर बहलोल के लिए दोआब में कठिनाइयां खड़ी कीं किन्तु उसने उनका भी सफलतापूर्वक सामना किया। दीर्घकालीन संघर्ष के बाद बहलोल सन् 1479 में जौनपुर पर निर्णायक विजय प्राप्त करने में सफल रहा। उसने अपने पुत्र बरबक शाह को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया। जौनपुर पर विजय प्राप्त करने के बाद बहलोल के राज्य का क्षेत्रफल व उसके संसाधन पहले की तुलना में दो गुने हो गए।

5.3.2.2 विद्रोहियों का दमन

राज्य की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर मुल्तान, मेवात तथा दोआब के अमीरों तथा जागीरदारों ने न केवल बहलोल को राजस्व देना रोक दिया अपितु शर्की सुल्तानों से उसके विरुद्ध सांठगांठ करना भी प्रारम्भ कर दिया। बहलोल ने मेवात, सम्भल, कोल, साकित, इटावा, रापरी, भोगाँव, ग्वालियर आदि के विरुद्ध अभियान किए तथा जौनपुर पर विजय प्राप्त करने के बाद इन क्षेत्रों के अमीरों, जागीरदारों तथा शासकों को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए विवश भी किया।

5.3.2.3 दिल्ली सल्तनत के सम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा

बहलोल लोदी ने राज्य की आर्थिक स्थिति में सुधार किया। यद्यपि उसने अपने राज्य के लिए इस्लाम के सिद्धान्तों को आधार बनाया किन्तु बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा का उत्पीड़न करने में उसने कोई रुचि नहीं ली। अनेक हिन्दू शासक व जागीरदारों से उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। बहलोल लोदी ने साठ वर्ष से भी अधिक समय से

चली आ रही राजनीतिक अस्थिरता को समाप्त कर साम्राज्य-विघटन की प्रक्रिया पर अंकुश लगाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

5.4 सुल्तान सिकन्दर लोदी

5.4.1 राज्यारोहण के समय की समस्याएं

1. निज़ाम खाँ 16 जुलाई, 1489 को सिकन्दर लोदी के रूप में दिल्ली का सुल्तान बना। बहलोल लोदी ने अपने पुत्र निज़ाम खाँ (सुल्तान बनने के बाद सिकन्दर लोदी) को पंजाब, दिल्ली और दोआब देकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था किन्तु अपनी मृत्यु से पूर्व उसने अपने अन्य सम्बन्धियों तथा अमीरों में अपने शेष राज्य का बटवारा कर दिया था। उसने अपने पुत्र बरबक शाह को जौनपुर का राज्य, आलम खाँ को मानिकपुर, अपने भांजे काला पहाड़ को बहराइच और अपने पौत्र आज़म हुमायूं को लखनऊ एवं कालपी तथा खान जहां लोदी को बदायूं का क्षेत्र दिया था।

2. बहलोल की मृत्यु के बाद अमीरों का एक प्रभाशाली वर्ग निज़ाम खाँ के स्थान बरबक शाह यां आज़म हुमायूं को सुल्तान बनाए जाने का पक्षधर था।

3. जौनपुर के अपदस्थ शर्की शासक हुसेन शाह ने जौनपुर के बागी अमीरों के सहयोग से उस पर पुनराधिकार का प्रयास किया।

4. बहलोल की उदारता के कारण राजकोष रिक्त हो गया था। ग्वालियर तथा बयाना आदि ने खिराज देना बन्द कर दिया था।

5.4.2 समस्याओं का निराकरण

5.4.2.1 राज्य के बटवारे को समाप्त करना

सुल्तान बनते ही सिकन्दर लोदी ने अपने विरोधियों के दमन हेतु आवश्यक कदम उठाए। उसने अपने भाई आलम खाँ को अपनी ओर मिलाया तथा अपने भतीजे आज़म हुमायूं व चाचा ईसा खाँ को पराजित किया। बरबक शाह को अनेक बार पराजित और क्षमा प्रदान करने के बाद उसने उसे अपदस्थ कर जौनपुर अपने अधिकार में कर लिया।

5.4.2.2 हुसेन शाह शर्की का दमन

जौनपुर के अपदस्थ शर्की शासक हुसेन शाह को सिकन्दर लोदी ने पराजित किया। हुसेन शाह बंगाल चला गयया। कुछ वर्षों के अन्तराल के बाद हुसेन शाह ने फिर सर उठाया किन्तु सन् 1494 में सिकन्दर ने एक बार फिर हुसेन शाह को पराजित किया।

5.4.2.3 अमीरों पर नियन्त्रण तथा राजत्व के सिद्धान्त में बदलाव

सिकन्दर लोदी के अमीर उसको अपना स्वामी नहीं, अपितु अपना मुखिया मात्र मानते थे। उसके अनेक अमीर उसके स्थान पर बरबक शाह अथवा आज़म हुमायूं को सुल्तान बनाना चाहते थे। सिकन्दर ने बहलोल द्वारा पोषित राजत्व के सिद्धान्त में बदलाव कर सुल्तान पद की गरिमा को बढ़ाया और अमीरों के महत्व को कम किया। सुल्तान ने अपने अमीरों को अपने साथ एक ही मसनद पर बिठाने के स्थान पर उन्हें अपने सामने खड़े रहकर

सम्मान प्रदर्शित करने के लिए विवश किया। अमीरों को सुल्तान के आदेश को पैदल चलकर ग्रहण करने के लिए बाध्य किया गया। अनुशासनहीन एवं भ्रष्ट अमीरों को उसने दण्डित किया और उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए गुप्तचर नियुक्त किए। जौनपुर के सूबेदार मुबारक खाँ लोदी को गबन करने पर दण्डित किया गया और अपने छोटे भाई फ़तेह खाँ को सुल्तान बनाने का षडयन्त्र करने वाले 22 अमीरों को उसने निर्वासित किया। इस प्रकार सिकन्दर ने बहलोल द्वारा पोषित राजत्व के सिद्धान्त में बदलाव कर सुल्तान पद की गरिमा को बढ़ाया और अमीरों के महत्व तथा उनकी महत्वाकांक्षाओं को कम किया किन्तु बुजुर्ग अमीरों के साथ उसने सम्माजनक व्यवहार किया। सिकन्दर लोदी ने विद्रोही अमीरों का कठोरतापूर्वक दमन किया।

5.4.3 साम्राज्य विस्तार

1. हुसेनशाह शर्की ने बिहार में रहकर जौनपुर पर पुनराधिकार करने के लिए सन् 1494 में आक्रमण किया किन्तु सिकन्दर लोदी ने उसे पराजित किया और उसका पीछा करते हुए वह पटना जा पहुंचा। वहां उसने बिहार को अपने अधिकार में किया। इसी अभियान के दौरान उसने तिरहुत के शासक को भी अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

2. सन् 1502 में सिकदर ने धौलपुर के शासक विनायक देव को पराजित कर धौलपुर अपने राज्य में मिला लिया। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर पर उसने कई आक्रमण किए परन्तु वह ग्वालियर पर अधिकार करने में असफल रहा। उसने ग्वालियर राज्य के नरवर, मन्दर तथा उतगिर पर अधिकार करने में अवश्य सफलता प्राप्त की।

3. राजपूत राज्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए उसने बयाना पर अधिकार किया और उसके एक अंग आगरा को अपनी राजधानी के रूप में विकसित किया। सन् 1509 में सिकन्दर ने नागौर के शासक मुहम्मद खाँ को अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। सन् 1513 में चन्देरी भी उसके अधिकार में आ गया।

5.5 धार्मिक नीति

सिकन्दर लोदी यद्यपि विवाह से पूर्व हिन्दू रही माँ का पुत्र था, उसने एक हिन्दू कन्या से विवाह भी किया था किन्तु उसने स्वयं को इस्लाम के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया। बहुसंख्यक गैर-मुस्लिम प्रजा के साथ उसने दमन की नीति अपनाई। नरवर, उतगिर तथा मन्दर पर अधिकार करने के बाद उसने मन्दिों को ध्वस्त करके उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया। नरवर के मन्दिरों की मूर्तियों को खण्डित कर उसने उनके टुकड़ों को बांट के रूप में प्रयुक्त करने के लिए कसाइयों में वितरित कर दिया। मथुरा में उसने भक्तों का पवित्र घाटों पर स्नान करना तथा मुण्डन कराना निषिद्ध कर दिया। बोधन नामक ब्राह्मण को उसने केवल इसलिए प्राणदण्ड दिया क्योंकि वह अपने धर्म और इस्लाम में एक ही सत्य का वास मानता था। सूफ़ियों की उदार परम्पराओं पर भी उसने प्रतिबन्ध लगाया। मुहर्रम के समय ताज़ियों को निकालने और स्त्रियों के पीरों-फ़कीरों की मज़ार पर जाने पर उसने प्रतिबन्ध लगा दिया। जनश्रुति के अनुसार सन्त कबीर से भी उनकी नीतियों को लेकर उसका वाद-विवाद हुआ था। सुल्तान सिकन्दर लोदी की असहिष्णु धार्मिक नीति ने न केवल हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध में कटुता को बढ़ावा दिया अपितु राजपूत शासकों को मुस्लिम सत्ता के विरुद्ध संगठित होने के लिए प्रेरित भी किया।

5.6 सुल्तान इब्राहीम लोदी

5.6.1 अमीरों से टकराव

सन् 1517 में जब इब्राहीम लोदी दिल्ली का सुल्तान बना तब इब्राहीम लोदी के छोटे भाई जलाल खाँ समर्थक दल ने उस पर राज्य के विभाजन के लिए दबाव डाला और जलाल खाँ को जौनपुर का स्वतन्त्र शासक बनवाने में सफलता प्राप्त की। जलाल खाँ के विद्रोह से लेकर उसके पतन, कारावास तथा हत्या के दौरान इब्राहीम लोदी को आज़म हुमायूं सरवानी तथा मलिक आदम की सक्रिय भूमिका से निपटना पड़ा। इब्राहीम लोदी इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सुल्तान के पद की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु उसे अफ़गानों के कबाइली मूल्यों पर आधारित राजत्व के सिद्धान्त के स्थान पर तुर्कों द्वारा पोषित राजत्व के दैविक सिद्धान्त को स्थापित करना होगा। सुल्तान की निरंकुश, स्वेच्छाचारी शक्ति के पोषण की नीति स्वाभिमानी तथा स्वतन्त्रताप्रिय अफ़गान अमीरों के लिए अपमानजनक था। जलाल खाँ के विद्रोह के बाद सुल्तान अमीरों के प्रति सशंकित हो गया था। उसने पुराने अमीरों के स्थान पर अपने विश्वस्तों व वफ़ादारों को अमीर बनाया और अपने विरोधी अमीरों का दमन किया। उसने अमीर मियाँ भोजा, आज़म हुमायूं सरवानी तथा उसके पुत्र फ़तेह खाँ कैद कर लिया। आज़म हुमायूं के एक अन्य पुत्र इस्लाम खाँ ने आगरा पर आक्रमण कर दिया। विद्रोही सेना तथा सुल्तान की सेना में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें सुल्तान की जीत हुई। सुल्तान को विद्रोह का दमन करने की भारी कीमत चुकानी पड़ी। योग्यतम अफ़गान सैनिक इस गुह युद्ध में मारे गए। सुल्तान के विरुद्ध बिहार के सूबेदार दरिया खाँ नूहानी, उसके पुत्र मुहम्मद शाह तथा खानेजहां लोदी ने विद्रोह किए। सुल्तान ने चन्देरी के सूबेदार शेख हसन करमली की हत्या करवा दी। अपने पुत्र दिलावर खाँ को सुल्तान द्वारा दिल्ली में धमकाए जाने के कारण पंजाब का सूबेदार दौलत खाँ लोदी नाराज़ हो गया और उसने मुगल बादशाह बाबर को सुल्तान पर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रित किया। इब्राहीम लोदी ने अमीरों के दमन के प्रयास में खुद को अकेला और असुरक्षित कर दिया।

5.6.2 पानीपत का प्रथम युद्ध तथा दिल्ली सल्तनत का पतन

बाबर ने 1504 में काबुल पर अधिकार कर लिया था। सन् 1519 में उसने भारत पर पहला सैनिक अभियान किया था। 1524 में उसने सुल्तान के चाचा आलम खाँ लोदी तथा पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी के निमन्त्रण पर पंजाब पर आक्रमण कर बहार खाँ लोदी के नेतृत्व में शाही सेना को परास्त किया और लाहौर व दीपलपुर पर अधिकार कर लिया। सन् 1525 में पंजाब पर पूर्ण अधिकार कर बाबर ने दिल्ली की ओर कूच किया। अपने अधिकांश अमीरों का अब तक समर्थन खो चुका इब्राहीम लोदी उसका मुकाबला करने के लिए पानीपत पहुंचा। 21 अप्रैल, 1526 को दोनों सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ। बाबर की सेना से संख्या में अधिक होते हुए भी इब्राहीम लोदी की सेना, बाबर के कुशल सेनानायकत्व व तुलुगमा (तोपखाने तथा घुड़सवार सेना का अप्रत्याशित संयुक्त आक्रमण) रणनीति के समक्ष पराजित हुई। इब्राहीम लोदी लड़ते हुए मारा गया। इस निर्णायक युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली।

5.7 सल्तनत काल में सामाजिक स्थिति

5.7.1 हिन्दुओं तथा अन्य गैर-मुस्लिम समुदायों की जीवन शैली

दिल्ली सल्तनत काल में हिन्दुओं तथा अन्य गैर-मुस्लिम समुदायों के सामाजिक जीवन में कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं आया। वर्ण-व्यवस्था जन्मनाजाति की अवधारणा पर आधारित रही और सामाजिक असमानता को धार्मिक समर्थन भी प्राप्त रहा। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का सामाजिक प्रभुत्व पूर्ववत स्थापित रहा। धनाढ्य वैश्य समुदाय साधन-सम्पन्न होते हुए भी सम्मान का पात्र नहीं बन पाया। शूद्रों की स्थिति पहले की भांति दयनीय रही। सामाजिक जीवन में धर्म की प्रधानता रही परन्तु धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड और आस्था के नाम पर अंधविश्वास का बोलबाला रहा। धनाढ्यों एवं निर्धनों के खानपान में बहुत अन्तर था। जहां गरीब के लिए भरपेट भोजन के नाम पर दाल-रोटी पर्याप्त होती थी वहां समृद्ध वर्ग छप्पन भोग का आनन्द उठाता था। ब्राह्मण तथा वैश्य मुख्यतः शाकाहारी थे और क्षत्रियों व शूद्रों के मध्य मांसाहार प्रचलित था। इस काल के आभिजात्य वर्ग में सुरा का सेवन प्रचलित था। ग्रामों में पंचायतों, चौपाल और पनघट का सामुदायिक जीवन में बहुत अधिक महत्व था। ग्रामीणों की भेषभूषा बहुत साधारण होती थी, उनमें सिले हुए कपड़ों का चलन कम था। जूते पहनना उनके मध्य अपवाद था। शहरी जीवन में भौतिकतावादी सुखों के प्रति अधिक रुझान था। शहरों में अमीर-गरीब के मध्य खाई और अधिक चौड़ी थी।

5.7.2 मुसलमानों की जीवन शैली

मुस्लिम समाज में जन्मनाजाति की अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था का चलन नहीं था किन्तु अमीर-गरीब, मालिक-गुलाम, शहरी-ग्रामीण आदि के मध्य गहरी खाई अवश्य थी। मुसलमानों में भी धर्म की महत्ता बहुत अधिक थी। उलेमा वर्ग का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था। मुसलमानों में जादू-टोटके, गण्डा, ताबीज़, जिन्न, परी, मन्नत, नज़र लगना आदि अंधविश्वास व्याप्त थे। मुसलमानों में मांसाहार का चलन था। आभिजात्य वर्ग के खानपान में बहुत अधिक विविधता थी और मदिरापान एक आम बात थी। मुसलमानों में अचकन, शेरवानी, कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा, शरारा, गरारा, सलवार, कमीज़, लहंगा आदि पहनावों का चलन था। गांवों में बसे मुसलमान और हिन्दू के रहन सहन में कोई अन्तर खोज पाना कठिन था किन्तु शहरों में आभिजात्य मुस्लिम वर्ग अन्य समुदायों के सभ्य समाज की तुलना में अधिक विलासिता की जीवन व्यतीत करता था।

5.7.3 स्त्रियों की दशा

हिन्दू समाज में सती प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, दहेज की प्रथा, स्त्री की आर्थिक पराधीनता, स्त्री-शिक्षा पर प्रतिबन्ध आदि के कारण स्त्रियों का जीवन अभिशप्त था। मुस्लिम समाज में भी स्त्री शोषण और दमन का शिकार थी। इस्लाम में पुरुषों के लिए चार विवाह तक जायज़ होने के कारण लाखों मुस्लिम स्त्रियों को बहुपत्नीवाद की त्रासदी से गुज़रना पड़ता था। अन्य समुदायों में भी पुरुषों में बहु विवाह का प्रचलन था, किन्तु मुसलमानों की तुलना में यह कम था। पर्दा प्रथा के कारण मुस्लिम स्त्रियों को आमतौर पर घर की चहारदीवारी में कैद रहकर ही अपना सारा जीवन बिताना पड़ता था। मुस्लिम प्रभाव से अन्य समुदायों में स्त्रियों को पर्दे में रखने का चलन हो गया था। सभी समुदायों की स्त्रियां आभूषणों के प्रति अनुरक्त थीं और अपने परिवार की आर्थिक स्थिति

के अनुरूप उन्हें बनवाती थीं। स्त्री-शिक्षा का चलन एक अपवाद होने के कारण स्त्री समाज में अंधविश्वासों का व्यापक प्रसार था। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस काल में स्त्रियों की दशा सामान्यतः शोचनीय तथा दयनीय थी।

5.7.4 हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध

इस काल में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध धूप-छांव की तरह रहे। दोनों समुदायों में वैमनस्य रहा। हिन्दुओं के लिए मुसलमान म्लेच्छ थे तो मुसलमानों के लिए हर गैर-मुस्लिम काफ़िर था। मुसलमान मूर्तिभंजक थे तो हिन्दू मूर्तिपूजक। दोनों के आचार-विचार, खान-पान, वेशभूषा, भाषा आदि सभी में अन्तर था। इसी कारण दोनों समुदायों के मध्य एक तनावपूर्ण और कटुतापूर्ण वातावरण रहता था किन्तु समय के साथ-साथ दोनों समुदायों को एक-दूसरे को समझने का अवसर मिला। सूफ़ी फ़कीरों और भक्त सन्तों ने दोनों को आपस में मिलजुल कर रहने का उपदेश दिया। जहां मुस्लिम संस्कृति ने भारत की प्राचीन संस्कृति को प्रभावित कर उसमें बदलाव किया वहीं भारतीय संस्कृति ने भी मुसलमानों के जीवन और उनके विचारों को प्रभावित किया। दो महान किन्तु भिन्न-भिन्न समुदायों की संस्कृतियों के संगम से भारत में गंगा-जमुनी संस्कृति अथवा तहज़ीब का विकास हुआ।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. बहलोल लोदी द्वारा दिल्ली सल्तनत के सम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा।
2. जौनपुर पर अधिकार।
3. सिकन्दर लोदी की साम्राज्य विस्तार की नीति।
4. सिकन्दर लोदी की धार्मिक नीति।
5. पानीपत का प्रथम युद्ध।
6. हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध।

5.8 सारांश

1451 में बहलोल लोदी के सुल्तान बनने पर पिछले साठ वर्षों से व्याप्त राजनीतिक अराजकता में कुछ सुधार आया। बहलोल लोदी अफ़गान राजत्व के सिद्धान्त में विश्वास रखते हुए स्वयं को अपने अमीरों का मुखिया मानता था, उनका स्वामी नहीं। जौनपुर राज्य का दिल्ली सल्तनत में विलय बहलोल लोदी की सबसे बड़ी उपलब्धि थी किन्तु प्रशासनिक सुधार के क्षेत्र में उसकी कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं है।

बहलोल लोदी की मृत्यु के बाद सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अपने पिता द्वारा राज्य के विभाजन के निर्णय को अस्वीकार कर दिया। एकछत्र शासक बनने के लिए उसने सुल्तान के पद की गरिमा को बढ़ाया अमीरों की शक्ति तथा उनकी महत्वाकांक्षाओं को नियन्त्रित किया। सिकन्दर लोदी की साम्राज्य विस्तार की नीति सफल रही किन्तु उसके शासनकाल में सुल्तान-अमीर सम्बन्धों में कटुता आ गई। उसकी धर्मांधता ने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को बढ़ावा दिया।

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद सिंहासनारूढ़ इब्राहीम लोदी अपने दम्भ और असहिष्णुता के कारण एक असफल शासक सिद्ध हुआ। वह न तो सीमा सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध कर सका और न ही अपने विरुद्ध पनप रहे

षडयन्त्रों के प्रति सावधान रहा। पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर से पराजित होने पर उसका तथा उसके राज्यवंश का अन्त हुआ।

दिल्ली सल्तनत काल में असमानता, सामुदायिक वैमनस्य, रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, दलितों तथा स्त्रियों का शोषण आदि सामाजिक पतन के लिए उत्तरदायी थे। धर्म के नाम पर कर्म काण्ड का बोलबाला था। इस काल का ग्राम्य जीवन सादगी पूर्ण और आभिजात्य वर्ग के शहरियों का जीवन विलासितापूर्ण था। इस काल में स्त्रियों की दशा सामान्यतः शोचनीय थी। इस काल में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में आमतौर पर वैमनस्य बना रहा किन्तु दोनों समुदायों के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ और इसके परिणाम स्वरूप भारत में गंगा-जमुनी सभ्यता का विकास हुआ।

5.9 पारिभाषिक शब्दावली

- कबाइली संस्कृति - कबीले के सभी लोगों का एक परिवार की तरह रहना।
- बिरादरी -वृहत्तर परिवार रूपी जाति-समूह।
- बागी - विद्रोही।
- ताजिया - मुहर्रम के अवसर पर जुलूस में निकाले जाने वाले प्रतीक।
- छप्पन भोग - नाना प्रकार के व्यंजन
- गंगा-जमुनी संस्कृति अथवा तहज़ीब - हिन्दू संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति के संगम के फलस्वरूप विकसित संस्कृति।

5.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.2.3 दिल्ली सल्तनत के सम्मान की पुनर्प्रतिष्ठा।
2. देखिए 4.3.2.1 जौनपुर के शर्की राज्य पर विजय।
3. देखिए 4.4.3 साम्राज्य विस्तार।
4. देखिए 4.5 धार्मिक नीति।
5. देखिए 4.6.2 पानीपत का प्रथम युद्ध तथा दिल्ली सल्तनत का पतन।
6. 4.7.4 हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध

5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Lal, K. S. – Twilight of the Delhi Sultanate
2. Habib, M., Habib, I. – Delhi Sultanate & Its Times
3. Srivastava, K. L. – The Position of Hindus Under the Delhi Sultanate
4. Nand, Lokesh Chandra – Women in Delhi Sultanate
5. हबीब, मुहम्मद - दिल्ली सल्तनत भाग 2

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Husain, Y. – Glimpses of Medieval Indian Culture

2. Ashraf, K. M. - Life and Condition of the People of Hindostan

3. Tara Chand – Influence of Islam on Indian culture

4. Jafar, S. M. – Some Cultural Aspects of the Muslim ule in India

5.13 निबंधात्मक प्रश्न

लोदी काल के परिप्रेक्ष्य में अफ़गान राजत्व के सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।

इकाई छह - शर्की साम्राज्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 जौनपुर राज्य एक दृष्टि में

6.4 शर्की वंश का राजनीतिक उत्कर्ष

6.5 ख्वाजाजहाँः प्रारम्भिक जीवन (1394–1399ई0)

6.6 सल्तनत का वजीर

6.7 ख्वाजाजहाँः जौनपुर का स्वतन्त्र शासक

6.8 सैनिक कार्यवाहियाँ

6.9 बिहार पर आक्रमणःउज्जैनियाँ राजपूतों से युद्ध

6.10 मुबारक शाह (1399 – 1402 ई0)

6.11 इब्राहिम शाह (1402–1496 ई0)

6.12 महमूद शाह (1436–1457 ई0)

6.13 हुसैन शाह (1458–1500 ई0)

6.14 शर्की राजवंश की स्थापत्य कला

6.15 सारांश

6.16 अभ्यास प्रश्न

6.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.18 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

14 वीं शताब्दी में जिन स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ उसमें जौनपुर उत्तर भारत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित राज्य था। इसने न केवल राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता हासिल की बल्कि आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी पर्याप्त विकास किया। साहित्य और स्थापत्य कला के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की। इसी कारण जौनपुर को शिराज–ए–मलिक कहा जाने लगा। इस राज्य ने अपने वैभव एवं सम्पन्नता के लिए काफी ख्याति अर्जित की।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान संकेगे कि–

- जौनपुर के शर्की वंश का स्थापना एवं विकास।
- शर्की वंश के शासकों के कला एवं साहित्य का संरक्षण।
- शर्की वंश के काल में जौनपुर का कलात्मक विकास।
- जौनपुर की राजनीतिक,आर्थिक,साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियां।

6.3 जौनपुर राज्य एक दृष्टि में

तैमूर के तुफानी आक्रमण ने सल्तनत की बची–खुची शक्ति का भी नाश कर दिया। अब तो दिल्ली के सुल्तान में इतनी शक्ति भी शेश नहीं रह गयी कि वह स्वयं अपनी रक्षा करता। इस प्रकार धीरे–धीरे साम्राज्य संकुचित होता चला गया। सैय्यद और लोदी शासकों के शासन काल में सल्तनत का विस्तार सिर्फ पंजाब तथा दोआब के क्षेत्रों में रह गया था। इस समय तक विकेन्द्रीकरण तथा विघटनकारी तत्व अत्यन्त ही सक्रिय हो उठे। सुल्तान अपने अमीरों के षड्यन्त्रों और विद्रोहों का दमन करने में ही फँसे रह गये। उन्हें सल्तनत को संगठित करने का अवसर ही नहीं मिला और नही ऐसा करने की क्षमता अथवा योग्यता उनमें थी। इस प्रकार सारे उत्तर भारत में छोटे–छोटे राज्यों का प्रार्दुभाव हुआ जो अपने क्षेत्रीय विस्तार के लिए आपस में ही संघश ंरत हो गये। सुल्तान चुपचाप इन घटनाओं को घटित होते देख रहे थे, क्योंकि इनकी स्वतन्त्रता अथवा राज्य विस्तार को रोकने में वे पूर्णतः असमर्थ थे। इन राज्यों की कोई प्राकृतिक सीमाएँ निर्धारित नहीं थी। ये राज्य शक्ति पर आधारित थे, अतः इनमें जो अधिक शक्तिशाली होता था वही अपने पड़ोसी राज्यों को जीत कर अपने अधीन कर लेता था। सारे भारत में अराजकता, अशान्ति, अव्यवस्था तथा संघश ं का सूत्रपात हो गया था जिसका अन्त बाद में बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् ही हो पाया।

वस्तुतः सल्तनत काल में विभिन्न प्रान्तों का शासन–सूत्र मुस्लिम प्रान्तपतियों के हाथ में ही था। अतः दिल्ली के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी इन प्रान्तों पर मुसलमान शासकों का ही प्रभुत्व बना रहा। इन स्वतन्त्र मुस्लिम शासकों ने प्रशासन आदि के क्षेत्रों में दिल्ली के सुल्तान की नीतियों का ही अवलंबन किया। इस प्रकार देश में मुस्लिम सत्ता का ह्रास नहीं हुआ। यद्यपि वह विकेन्द्रित हो गया था। दूसरी ओर यह समझ लेना कि प्रान्तों में स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यों की स्थापना से हिन्दूओं के राजनीतिक प्रभुत्व की समाप्ति हो गई, भ्रममूलक होगा। उत्तर में हिमालय की तराई के प्रदेश, काँगड़ा, नेपाल तथा असम, हिन्दू सत्ता, प्रभुत्व और संस्कृति के केन्द्र थे। मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा आदि में मुसलमानों का प्रभुत्व अभी भी स्थापित नहीं हो पाया था और इन क्षेत्रों में हिन्दुओं की राजनीतिक सत्ता स्थापित थी। दक्षिण में विजयनगर का राज्य इस काल में हिन्दू राजनीति, सभ्यता और संस्कृति का महान केन्द्र बन गया। इन हिन्दू राज्यों की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इतना होने पर भी ये आपस में संगठित न हो सके और आपसी ईर्ष्या, द्वेश , कलह एवं संघश ं के द्वारा इन्होंने अपनी शक्ति को क्षीण ही किया।

6.4 शर्की वंश का राजनीतिक उत्कर्ष

अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलक (जूना खाँ) की स्मृति में फिरोज शाह तुगलक ने जौनपुर नगर की स्थापना की थी। फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् कुछ ही वश र्ों के भीतर दिल्ली सल्तनत के कुछ प्रान्तों ने अपनी स्वतन्त्रता की स्थापना कर ली थी। ऐसे राज्यों में जौनपुर पहला था। जौनपुर के प्रान्तपति ख्वाजा जहाँ ने तुगलक सुल्तान के शक्तिहीन होने और तैमूर के आक्रमण से व्याप्त विघटनकारी प्रवृत्ति का लाभ उठाकर अपनी स्वतन्त्रता की घोश णा कर दी।

6.5 ख्वाजाजहाँ प्रारम्भिक जीवन (1394–1399 ई0)

जौनपुर की सल्तनत शर्की अर्थात् 'पूर्वी' सल्तनत के नाम से प्रसिद्ध है और शर्की शासक, जिन्होंने जौनपुर में शासन किया, मलिक उस्–शर्क या पूर्वी प्रदेश का अधिपति के नाम से जाने जाते हैं।

जौनपुर राजवंश का प्रतिष्ठाता मलिक सरवर था। उसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है उसने प्रारम्भिक जीवन सुल्तान फिरोज तुगलक के गुलाम के रूप में प्रारम्भ किया था, जिसे 'ख्वाजासरा' कहा जाता था। इस प्रकार फिरोजश ाह के काल में यह ख्वाजासरा था। सुल्तान नासिरूद्दीन मुहम्मद शाह (फिरोज शाह के पुत्र) ने मलिक सरवर को ख्वाजासराओं का नेता बनाया। मलिक सरवर ने अपनी योग्यता तथा बुद्धिमानी से इतनी ख्याति प्राप्त कर ली कि उसे 'हस्तिशाला का निरीक्षक' नियुक्त किया गया, जिसे दरोगा–ए–पीलखाना कहा जाता था।

मुहम्मद तुगलक (द्वितीय) को यह सिपहसालार सैय्यद रज्जब अली (गयासुद्दीन द्वितीय के भाई) द्वारा दिया गया था। तुगलक शाह (फिरोज शाह के पौत्र एवं फतह खाँ के पुत्र) ने जब दिल्ली सल्तनत पर अधिकार किया तो उसने मलिक सरवर की व्यवहारिक बुद्धि से प्रभावित होकर उसे दिल्ली शहर का 'शाहना' नियुक्त किया।

6.6 सल्तनत का वजीर

1389 इ0 में जब मुहम्मद शाह (फिरोजशाह का छोटा पुत्र) गद्दी पर बैठा तो उसने मलिक सरवर को 'ख्वाजाजहाँ' की सम्मानित उपाधि से विभूशि त कर सल्तनत के वजीर का सम्मानित पद प्रदान किया। इस प्रकार मलिक सरवर ने अपनी तीव्र बुद्धि और निष्ठा के बल पर 1389 ई0 में 'वजीर' का उच्च पद प्राप्त किया।

जब दरबार के एक अन्य प्रतिष्ठित अमीर इस्लाम खाँ, को यह आभास हुआ कि यदि उसकी नियुक्ति ऐसी ही बनी रहेगी तो उसकी प्रतिष्ठा पूर्णरूप से समाप्त हो जायेगी। अतः उसके निरन्तर विरोध के कारण दूसरे ही वश र्ख्वाजाजहाँ पदच्युत कर दिया गया। परन्तु ख्वाजाजहाँ चूंकि एक तीक्ष्ण बुद्धि–सम्पन्न व्यक्ति था। अतः उसने 1392 ई0 में इस्लाम खाँ द्वारा रचे जा रहे दरबारी शड़यंत्र की सूचना सुल्तान मुहम्मद शाह को दी क्योंकि वह स्वयं भी इस्लाम खाँ से विद्वेश रखता था। थोड़ी सी असन्तोश जनक छानबीन के बाद इस्लाम खाँ के ही भतीजे जाजू के साक्ष्य पर उसे मृत्यु–दण्ड दिया गया। इसके पश्चात् ख्वाजाजहाँ को पुनः विजारत का भार सौंपा गया।

एक वजीर के रूप में उसने सुल्तान मुहम्मद शाह, सुल्तान सिकन्दर शाह को अपनी महान सेवाएँ प्रदान की।

सन् 1394 ई0 में फिरोज शाह का पौत्र और मुहम्मद शाह का पुत्र महमूद शाह तुगलक सुल्तान नासिरूद्दीन की पदवी धारण कर गद्दी पर बैठा। उसको सिंहासन पर बैठाने में वजीर ख्वाजाजहाँ का प्रमुख हाथ था। सुल्तान ने उसकी राजभक्ति के परिणाम स्वरूप जमादि–उल–अव्वल, 796 हि0 (1394 ई0) में उसे मलिक–उस–शर्क की सम्मानित उपाधि से विभूशि त किया। सुल्तान ने ख्वाजाजहाँ की यह प्रतिष्ठित उपाधि देने के साथ ही साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश के गर्वनर के रूप में उसकी नियुक्ति की जिसका प्रमुख केन्द्र जौनपुर को बनाया गया।

बदायूँनी ने महमूद तुगलक द्वारा दी गयी सम्मानपूर्ण उपाधि सुल्तान–उस–शर्क कही है। परन्तु फरिश्ता इत्यादि इतिहासकारों ने ख्वाजाजहाँ द्वारा प्राप्त की गयी प्रारम्भिक उपाधि 'मलिक–उस–शर्क'

ही बतायी है। उनके अनुसार परवर्ती काल में महमूद तुगलक के शासन में व्याप्त विश्रृंखलता से लाभ उठाकर ख्वाजाजहाँ ने सुल्तान–उस–शर्क की उपाधि स्वयं ग्रहण की थी जिसका अर्थ है 'पूर्वी प्रदेश का शासक।'

6.7 ख्वाजाजहाँः जौनपुर का स्वतन्त्र शासक

सुल्तान महमूद तुगलक ने मलिक–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ को कन्नौज से बिहार तक के समस्त प्रदेश का प्रशासन का भार सौंपा। जौनपुर नामा से यह ज्ञात होता है कि महमूद शाह ने उन अमीरों को, जिन्होंने उसकी परेशानी में उसका साथ दिया था, उनके पद एवं प्रतिष्ठा के अनुसार राजानुग्रह प्रदर्शित किया। अतः साम्राज्य से दूरवर्ती प्रान्तों के विद्रोहों का दमन करने के लिए उसने चार अमीरों को चार विभिन्न दिशाओं में भेजा। मलिक–उस–शर्क को पूर्वी प्रान्त की ओर, दिलावर खाँ को मालवा, जफर खाँ को गुजरात एवं खिज खाँ को मुल्तान की ओर भेजा। जिस समय ये चार अमीर गवर्नर की हैसियत से अपने–अपने प्रान्तों में जाने लगे तो दिल्ली दरबार के ज्योतिषियों में से मुहम्मद शरीफ ने यह भविष्यवाणी की कि जिन मुहूर्तों में ये अमीर दिल्ली से प्रस्थान कर रहे हैं, उसके फलस्वरूप प्रत्येक सूबेदार अपने–अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र होकर, दिल्ली सल्तनत से पृथक राज्य की नींव डालेंगे। आगे चलकर ज्योतिशी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

796 हि0 (मई, 1394 ई0) में मलिक–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ ने विद्रोहियों को दण्ड देने हेतु दिल्ली से प्रस्थान किया। वह 20 सुसज्जित हाथियों के साथ इटावा कोल, खोर या कहूरा कनील, कंवल एवं कन्नौज के आस–पास के विद्रोहियों का दण्ड देकर जौनपुर की ओर अग्रसर हुआ। उसने अत्यन्त सरलतापूर्वक कन्नौज, कड़ा, अवध, काम्पिल्य, डलमऊ, संडीला रापरी बहराइच बिहार एवं तिरहुत के प्रदेश को अपने अधीन किया। उड़ीसा, मैनपुर, सम्भल, बरेली, आगरा भी धीरे–धीरे उसके अधीन होते गये।

इन विजयों से उत्साहित होकर एवं तुगलक शासन में व्याप्त अराजकता से लाभ उठाकर मलिक–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ 'सुल्तान–उस–शर्क' की उपाधि धारण कर ली।

सुल्तान–उस–शर्क ने पूर्वी प्रान्त के शासक को रूप में उन हिन्दू विद्रोहियों का दमन किया जिन्होंने उस क्षेत्र के प्रशासन को एक विकट परिस्थिति में ला दिया था। उन प्रान्तों को उसने सुव्यवस्थित किया। हिन्दुओं ने जिन किलों को मुसलामानों से छीनकर नष्ट कर दिया था उनको सुल्तान–उस–शर्क ने उनके आधिपत्य से मुक्त किया और नये सिरे से उनका पुननिर्माण किया। किलों तथा उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में अपनी सेना नियुक्त की। परगना कोल (अलीगढ़), इटावा, बहराइच और काम्पिल्य के विद्रोहियों को दण्ड देकर दिल्ली की ओर कोल तथा रापरी तक और दूसरी ओर बिहार तथा तिरहुत तक के विद्रोहियों को दण्ड दिया।

इस प्रकार सुल्तान–उस–शर्क ने अल्पकाल में ही अपनी उच्चस्तरीय राजनीतिक प्रतिभा के प्रदर्शन से एक विशाल क्षेत्र में अपनी प्रभुता स्थापित की। जिसके अन्तर्गत अवध, गंगा की घाटी, पश्चिम में कोल से पूर्व में बिहार तक का प्रदेश शामिल था। 14 वीं शताब्दी के अन्त में दिल्ली के सुल्तान महमूद के पास राजधानी दिल्ली एवं समीपवर्ती 5 जिलों को छोड़कर कुछ भी अवशिष्ट नहीं था।

6.8 सैनिक कार्यवाहियाँ

रजब 798 हि0 (1395 ई0) में सुल्तान–उस–शर्क ने अपने दत्तक पुत्र मुबारक खाँ को मलिक–उस–शर्क (पूर्वी शासक) की उपाधि प्रदान कर उसे राज्य की समस्त राजकीय कार्यवाहियों का भार सौंपा एवं बंगाल पर आक्रमण के लिए भेजा। मुबारक खाँ ने विद्रोह एवं विद्रोहियों का अत्यन्त कुशलता से दमन किया और बंगाल के शासक से उपहार सामग्री एवं राजस्व प्राप्त कर लौटा। बदाऊँनी का कथन है कि सुल्तान–उस–शर्क ने उड़ीसा के जाजनगर तक सैनिक कार्यवाही की और उसे हस्तगत किया। उसने उस क्षेत्र से बहुत सी उपहार सामग्री एवं हाथी प्राप्त किये और उसी समय से लखनौती का शासक प्रति वर्ष हाथी भेजने लगा जैसा वह दिल्ली भेजा करता था।

फरिश्ता के अनुसार सुल्तान–उस–शर्क की शक्ति इतनी बढ़ गयी कि बंगाल के लखनौती में शासन कर रहे पूर्वी शासक रीति के अनुसार हाथी तथा अन्य उपहार–सामग्री (खिराज तथा पेशकश) दिल्ली सुल्तान को भेजने के स्थान पर शर्की शासक 'सुल्तान–उस–शर्क' की प्रगति से संशकित होकर उसी को भेंटस्वरूप देकर सन्तुष्ट किया।

निजामुद्दीन अहमद ने भी इस बात की पुष्टि की है कि लखनौती के शासक बिना मांगे राजस्व प्रतिवर्ष जौनपुर भेजने लगे, जो वे प्रतिवर्ष फिरोज को भेजते थे। यह कहा जाता है कि बंगाल का शासक गयासुद्दीन आजमशाह (795–813 हि0) जो सिकन्दर शाह का पुत्र था, जौनपुर के ख्वाजाजहाँ की निरन्तर प्रगति से संशकित होकर ख्वाजाजहाँ की निरन्तर प्रगति से संशकित होकर ख्वाजाजहाँ को राजस्व भेजने लगा, जो कि फिरोजशाह तुगलक के साथ की गयी सन्धि की शर्तों के अनुसार दिल्ली सुल्तान को भेजा जाना था। परन्तु इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि यह राजस्व लगातार दिल्ली सुल्तान को भेजा जाता था क्योंकि ख्वाजाजहाँ पर यह आरोप लगाया जाता है कि जिस समय यह राजस्व दिल्ली भेजा जा रहा था उसने उसे बलपूर्वक हस्तगत कर लिया, परन्तु यह कथन सत्य नहीं है। जो राशि ख्वाजाजहाँ को भेजी गयी थी वह शायद एक प्रशंसनीय उपहार था। डिस्ट्रिक्ट गजेटियर बान्दा से यह ज्ञात होता है कि सुल्तान–उस–शर्क जमुना के दक्षिण ओर अपने अधिकार–क्षेत्र का विस्तार नहीं कर सका था।

इस प्रकार ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क की क्रमशः प्रगति दिल्ली सल्तनत के स्वार्थ के विरूद्ध प्रमाणित हुई। 1398 ई0 में तैमूर के दिल्ली पर आक्रमण के समय जब दिल्ली का सुल्तान कठिनाईयों से घिरा हुआ था, ख्वाजाजहाँ ने दिल्ली के सुल्तान महमूद तुगलक को किसी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं की और पूर्व में अपने क्षेत्रीय विस्तार में संलग्न रहां

जब सुल्तान महमूद तुगलक ने तैमूर लंग के विरूद्ध युद्ध में अपनी पराजय के बाद गुजरात में शरण ली तो दिल्ली सल्तनत में किसी केन्द्रीय शक्ति एवं शक्तिशाली प्रभुत्व के अभाव मे ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क को जौनपुर में एक नवीन राजवंश को स्थायी रूप से स्थापित करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर 'अतावक–ए–आजम' की सम्मानित उपाधि धारण की एवं दिल्ली से पृथक होकर जौनपुर में एक स्वतन्त्र राजवंश 'शर्की राजवंश' की स्थापना की।

6.9 बिहार पर आक्रमण–उज्जैनियाँ राजपूतों से युद्ध

ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क की सबसे महत्वपूर्ण सैनिक कार्यवाही बिहार पर है। फरिश्ता के अनुसार ख्वाजाजहाँ ने गोरखपुर तथा बहराइच को अपने अधीन करके अन्तर्वेद तथा बिहार की ओर प्रस्थान किया। इससे सिद्ध होता है कि उसने बिहार पर सैनिक कार्यवाही की थी।

ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क के बिहार के उज्जैनियाँ राजपूतों से संघर्ष के सम्बन्ध में बहुत से इतिहासकार मौन हैं। फारसी की हस्तलिखित पुस्तकों में भी इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की गयी है। केवल बिहार तक ख्वाजाजहाँ के अधिकार का समर्थन किया गया है।

बीकानेर के बोधराज द्वारा शर्कियों एवं दक्षिणी बिहार के शाहाबाद जिले के उज्जैनियाँ राजपूतों के पारस्परिक सम्बन्ध पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला गया है। इसके द्वारा हमें ख्वाजाजहाँ के उज्जैनियाँ राजपूतों के विरूद्ध आक्रमणात्मक कार्यवाही का कुछ संकेत मिलता है।

ख्वाजाजहाँ ने 1394 ई0 में बिहार पर आक्रमण करने के लिए जौनपुर से प्रस्थान किया। उस समय संवत् 1400 में भोजपुर की गद्दी पर देवराज के पश्चात् सोमराज बैठा था। हरराज, गजराज एवं जगदेव तीन पुत्रों का छोडकर संवत् 1445 में स्वर्गवासी हुआ।

हरराज के समय संवत् 1450 (1394 ई0) में जौनपुर के सूबेदार ख्वाजाजहाँ के सैनिक जौनपुर से बिहार के लिए प्रस्थान करके चौसाघाट से उतरकर बक्सर में ठहरे। उनमें से कुछ सैनिक सैर करने हेतु गंगा के किनारे पहुंचे। ब्राह्मणों को पूजापाठ करते देख उन्हें सताने लगे एवं अशोभनीय कार्य करने

लगे। ब्राह्मणों के विरोध करने पर वे उनसे उलझ पड़े एवं एक–दूसरे पर प्रहार करने लगे। उज्जैनियाँ राजपूतों के संघर्ष का यह एक महत्वपूर्ण कारण बताया जाता है।

उसी समय राजकुमार गजराज के राजपूत सैनिक घटनास्थल पर पहुंचे। उन्होंने मुस्लिम सैनिकों को धर दबाया। महाराजकुमार गजराज इस संघर्ष का संवाद पाकर अपने सैनिकों की सहायता के लिए स्वयं उपस्थित हुआ। बहुत से यवन सिपाही मारे गये, जो शेष बचे वे भागकर जौनपुर पहुंचे।

ख्वाजाजहाँ उज्जैनियाँ के हाथों अपने सैनिकों के मारे जाने का समाचार पाकर भोजपुर पर आक्रमण हेतु प्रस्थान किया। इस युद्ध में महाराज हरराज लड़ता हुआ मारा गया। महाराजकुमार गजराज और देवराज राज–परिवार के समस्त सदस्यों के साथ निकल भागे। मुस्लिम सैनिकों ने नगर में प्रवेश कर लूटमार मचायी एवं मन्दिरों को विध्वंस कर दिया। राज प्रसाद में आग लगाकर भोजपुर को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया।

उज्जैनियों ने भोजपुर से पलायन कर महाराजकुमार गजराज से गद्दी पर बैठाया। अगम्य जंगलों और पहाड़ों का आश्रय लेकर वे शर्की सैनिकों से लोहा लेते रहे। समय–समय पर वे पहाड़ों से उतरकर यवनों पर टूट पड़ते एवं लूट–मारकर वापस लौट जाते। इसी प्रकार उज्जैनियाँ राजपूतों के सैनिक गुरिल्ला युद्ध के द्वारा शर्की सैनिकों से उस समय तक उलझते रहे जब तक कि वि0सं0 1456 (1399 ई0) में सुल्तान–उस–शर्क ख्वाजाजहाँ की मृत्यु के बाद पुनः महाराजकुमार गजराज ने पहाड़ों से निकलकर कुरूर पर अधिकार कर लिया।

ख्वाजाजहाँ के दक्षिणी बिहार पर आधिपत्य के प्रमाण स्वरूप हम कह सकते हैं कि बिहार पर महमूद तुगलक का आधिपत्य, जैसा कि उसके प्रलेखों से ज्ञात होता है, ख्वाजाजहाँ ने अपने को स्वतन्त्र घोषित नहीं किया, तब तक उसने सभी सार्वजनिक इमारतों में अपने सम्प्रभु (महमूद तुगलक) के नाम का ही प्रयोग किया था। क्योंकि महमूद तुगलक के बिहार में प्राप्त 4 प्रलेखों में से 3 प्रलेखों की तिथि 796 हि0 के पश्चात् की है, जब मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ सुल्तान की ओर से पूर्वी प्रदेश के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त हुआ था।

इससे स्पष्ट होता है कि ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क ने दक्षिणी बिहार के शहाबाद जिले तक अपनी सैनिक कार्यवाही की थी। मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क अपनी समस्त कार्यवाहियों में एक स्वतन्त्र शासक के समान था, यद्यपि उसने 'सुल्तान' की उपाधि ग्रहण नहीं की थी। परन्तु वह अपने को दिल्ली सल्तनत का अधीनस्थ मानने को भी तैयार नहीं था। इसलिए उसने केवल सुल्तान–उस–शर्क की उपाधि तक ही अपने को सीमित रखा।फरिष्ता के अनुसार सुल्तान–उस–शर्क की यह हार्दिक इच्छा थी कि वह खुतबा एवं सिक्का अपने नाम का पढ़वाए एवं ढाले। जिस प्रकार पूर्वी शासक (लखनौती के श ासक) करते थे उसी प्रकार भी अपने सिर पर राजछत्र धारण करे। परन्तु मृत्यु ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया।

निजामुद्दीन अहमद इस सम्बन्ध में मौन है।यह भी हो सकता है कि मृत्यु ने उसे अधिक अवसर प्रदान नहीं किया क्योंकि 802 हि0 (1399 ई0) में अपने अल्पकालीन शासन के पश्चात् ख्वाजाजहाँ सुल्तान–उस–शर्क कर मृत्यु हो गयी। उसने 5 वर्ष 6 माह तक शासन किया।

इस अल्पावधि के शासन के बावजूद भी ख्वाजाजहाँ को जौनपुर में उस उज्जवल और गौरवशाली राजवंश की स्थापना का महान श्रेय प्राप्त हुआ जिसके आगे दिल्ली सल्तनत की ज्योति मद्धिम पड़ गयी। जौनपुर के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का श्रेय सम्पूर्ण रूप से ख्वाजाजहाँ को ही है। उसने उस समय व्याप्त राजनीतिक अशान्ति को समाप्त कर जौनपुर में एक सुव्यवस्थित शासनकी नींव डाली, हेग ने तो उसके जौनपुर की ओर प्रस्थान की तिथि को ही शर्की राजवंश की स्थापना की तिथि के रूप में चिन्हित कर दिया है।

ख्वाजाजहाँ ने एक ऐसे राजवंश की स्थापना की जिसका अस्तित्व आगामी 100 वर्षो के लिए सुरक्षित हो गया। तैमूर के चले जाने के पश्चात् दिल्ली सल्तनत की ओर अराजकतापूर्ण परिस्थिति से

मुक्ति पाने के लिए अनेक प्रतिष्ठित और उल्लेखनीय विद्वानों ने राजधानी दिल्ली को त्यागकर जौनपुर के दरबार में शरण ली, जिन्हें शर्की राजाओं की ओर से सम्पूर्ण राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। अल्पकाल के भीतर ही जौनपुर भारत का शिराज–ए–हिन्द नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ख्वाजाजहाँ ने अत्यन्त उदारता एवं न्यायपूर्वक शासन किया। वह अपनी हिन्दू मुस्लिम प्रजा में समान रूप से प्रिय था। हिन्दुओं की विशेष सहायता से ही उसने स्वतन्त्रता प्राप्त कर जौनपुर में

शर्की श ासन की नींव डाली और शर्की सल्तनत की सीमा का विस्तार किया। ख्वाजाजहाँ ने इमाद–उल–मुल्क बख्तियार खाँ को सम्पूर्ण दरबारी अमीरों से पृथक करके राज्य का मंत्री बनाया। उसने जौनपुर को विशेष आकर्षण प्रदान किया। उसने धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व प्रदान किया और इसके लिए खानकाहें (मठ) और मदरसे खोले गये। 1399 ई0 में उसके आकस्मिक निधन ने उसके शासन काल को अत्यन्त संक्षिप्त बना दिया। अपने जीवन–काल में ही उसने सैय्यद मुबारक शाह करनफल को अपना दत्तक पुत्रद एवं शर्की राज्य का भावी उत्तराधिकारी घोषित कर दिया जिसे उसके उच्चस्तरीय मानसिक विवेचन, दूरदर्शिता एवं शर्की राज्य की सुदृढ़ता के ज्वलन्त उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

6.10 मुबारक शाह (1399–1402 ई0)

1399 ई0 में ख्वाजा जहाँ का दत्तक पुत्र मलिक करनफूल गद्दी पर बैठा ओर उसने 'मुबारक शाह' की उपाधि धारण की। वह शर्की वंश का पहला शासक था जो सुल्तान कहलाया और जिसके नाम के सिक्के प्रचलित हुए तथा खुतबे पढ़े गये। मुबारक शाह के समय से ही जौनपुर का दिल्ली के साथ कटु सम्बन्ध शुरू हुआ।

6.11 इब्राहिम श ाह (1402–1496 ई0)

1402 ई0 में मुबारक शाह की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई इब्राहिम शाह जौनपुर का सुल्तान बना। वह शर्की वंश का सर्वश्रेश्ठ शासक था। दिल्ली के साथ उसका सम्बन्ध अच्छा नहीं था। एक बार जब सुल्तान महमूद अपने वजीर मल्लू से तंग आकर भाग कर जौनपुर आया तो इब्राहिम ने उसके साथ सम्मानोचित व्यवहार नहीं किया। इससे चिढ़कर महमूद ने जौनपुर के कन्नौज जिले पर अधिकार कर लिया। महमूद के उत्तराधिकारी खिज खाँ के साथ भी इब्राहिम के संघर्ष हुए। इब्राहिम ने कन्नौज को पुनः प्राप्त करने और बंगाल को जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु इसमें वह असफल रहा।

इब्राहिम निःसंदेह शर्की वंश का महानतम शासक था। उसने चौंतीस वर्ष तक शासन करके अपने राज्य को विशाल एवं उन्नत बनाया। वह एक सुसंस्कृत सुल्तान तथा कला एवं विद्या का महान् प्रेमी था। उसने पाठशालाओं तथा विद्यालयों की स्थापना की और राजकोष से उन्हें उदार धर्मस्व प्रदान किये। उसने देश के विभिन्न भागों से विद्वानों तथा धर्मशास्त्रज्ञों को आमन्त्रित किया और उन्हें निर्वाह के लिए भत्ते तथा हर प्रकार से राज्य की ओर से संरक्षण दिया। उसने शिक्षा–साहित्य और कला को राज्य का संरक्षण आमंत्रित कर उन्हें राज्य की ओर से संरक्षण प्रदान किया। उसकी राज्य सभा में उच्चकोटि के विद्वान थे। उसके शासनकाल में जौनपुर इस्लामी धर्म–शास्त्रों कानून तथा अन्य विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई। उसने अनेक भारतीय ग्रंथों का अनुवाद फारसी में भी करवाया । उसके शासनकाल में जौनपुर मुस्लिम शिक्षा तथा संस्कृति का एक प्रधान केन्द्र बन गया। इब्राहिम शाह ने अनेक भवनो का निर्माण कर जौनपुर को अधिक सुंदर, आर्कषक और वैभवशाली बनाया। उसके द्वारा र्निमित मस्जिदों में जौनपुर की अटाला मस्जिद सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसके शासनकाल में स्थापत्य कला के क्षेत्र में एक नवीन शैली का विकास हुआ। जो शर्की शैली के नाम प्रसिद्ध है। इस शैली में र्निमित मस्जिदों में सामान्य मीनारों का अभाव था और इस पर हिन्दू स्थापत्य का भी प्रभाव पड़ा था। इब्राहिम को संगीत तथा अन्य ललित कलाओं से भी प्रेम था। संस्कृति के क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों के कारण जौनपुर उसके शासनकाल में 'भारत के शिराज' के नाम से विख्यात हुआ। किन्तु, योग्य होने पर भी धर्मान्ध और असहिष्णु था। उसने हिन्दुओं पर अत्याचार किये। अटाला मस्जिद का निर्माण अटाला

देवी के मंदिर को विध्वंश करके उसके भग्नावशेषों पर किया गया था। 1436 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई।

6.12 महमूद शाह (1436–1457 ई0)

इब्राहिम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र महमूद शाह जौनपुर का शासक बना। उसने इक्कीस वर्ष (1436–1457 ई0) तक शासन किया। उसने अनेकों बार दिल्ली पर आक्रमण किये और उसको जीतने का प्रयास किया किन्तु सुल्तान बहलोल लोदी ने उसे परास्त कर दिया। महमूद शाह भी योग्य शासक था। शिक्षा–साहित्य तथा कला–कौशल के क्षेत्र में उसके शासनकाल में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। उसने भी कई मस्जिदों का निर्माण करवाया। 1457 ई0 में महमूद शाह की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र मिक्खन मुहम्मद शाह के नाम से गद्दी पर बैठा, पर वह बड़ा ही निर्दयी, अत्याचारी और अदूरदर्शी शासक था। उसने अपने अमीरों से झगड़ा मोल ले लिया और अपने एक भाई की हत्या भी करवा दी। उसके कार्यों और नीतियों से असंतुष्ट और क्षुब्ध होकर अमीरों ने उसका वध करके उसके छोटे भाई हुसैन शाह को गद्दी पर बैठा दिया।

6.13 हुसैन शाह (1458–1500 ई0)

हुसैन शाह ने लगभग बयालीस वर्ष (1458–1500 ई0) तक राज्य किया। हुसैन शाह को संगीत से प्रेम था। जौनपुर के सल्तान ने प्रसिद्ध राग हुसैनी, कान्हड़ा और तोड़ी का आविष्कार किया था। उसके दरबार में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदाय के विद्वान थे जिनमें नायक बख्श , बैजू (बावरा), पांडवी, लोहुंग, जुजू देंढी और डालू के नाम प्रमुख हैं। उसने बिहार के जमींदारों का दमन किया तथा उसके राज्य से कर वसूल कर लिया। उसने ग्वालियर को जीतने का भी असफल प्रयास किया था। इसी बीच में दिल्ली तथा जौनपुर के बीच पुनः संघर्ष आरम्भ हो गया। सन् 1489 ई0 में सुल्तान बहलोल लोदी ने उसे परास्त और पदच्युत करके अपने ज्येष्ठ पुत्र बरबरक शाह को जौनपुर का शासक नियुक्त कर दिया। हुसैन श ाह शर्की वंश का अंतिम शासक था। उसकी पराजय से जौनपुर की स्वतंत्रता समाप्त हो गई। हुसैन शाह को बिहार में शरण लेनी पड़ी। बिहार में बैठकर उसने दिल्ली के सुल्तान के विरूद्ध कुचक्र चलाये और जौनपुर राज्य के जमींदारों को उसके विरूद्ध विद्रोह करने का भड़काया। सिकंदर लोदी को इससे काफी ईर्ष्या हो गई और उसने जौनपुर को स्थायी रूप से दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। हुसैन शाह की मृत्यु 1500 ई0 में निर्वासित दशा में हो गई। इसके साथ ही शर्की राजवंश का अवसान हो गया।

लगभग अस्सी वर्षों तक जौनपुर शर्की वंश के अधीन स्वतंत्र रहा। इस काल में वह इस्लामी शिक्षा, कला और संस्कृति का एक मुख्य केन्द्र बन गया। शर्की शासकों के प्रयत्न से शिक्षा–साहित्य तथा कला–कौशल का काफी विकास हुआ। यहाँ अनेक मस्जिदों , मकबरों और भवनों का निर्माण किया गया। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में अल्पकालिक होते हुए भी जौनपुर का शर्की राजवंश बड़ा ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

6.14 शर्की राजवंश की स्थापत्य कला

मध्य काल में स्थापत्य कला का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र जौनपुर रहा है। इस शहर की स्थापना 1359–60 ई0 में फिरोजशाह तुगलक ने की थी। यह एक लम्बे काल तक दिल्ली सल्तनत के अधीन रहा। 1394 ई0 में ख्वाजाजहाँ के अधीन जौनपुर एक स्वतंत्र राज्य बन गया। यह लगभग एक सदी तक स्वतंत्र राज्य रहा जिसके पष्चात् सिकन्दर लोदी ने पुनः उसे जीत कर सल्तनत का अंग बना लिया। ख्वाजाजहाँ ने जौनपुर में शर्की राजवंश की स्थापना की थी जिसके शासकों ने लगभग एक सदी तक स्वतंत्र रूप से जौनपुर पर शासन किया। शर्की शासकों ने जौनपुर में स्थापत्य को काफी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने यहाँ बहुत ही इमारतों का निर्माण करवाया जिनमें महल, मस्जिदें और मकबरे आदि सभी शामिल थे। दुर्भाग्यवश आज इनमें से अधिकांश नष्ट हो गये हैं, किन्तु जो बचे हुए हैं उनसे

शर्की–शैली की महानता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। शर्की शासकों द्वारा निर्मित भवनों में हिन्दू एवं मुस्लिम शैलियों का सुन्दर समन्वय मिलता है। यहाँ की शैली की अपनी कुछ खास विशेशताएँ थीं। यहाँ पर जितने भी भवन बनाए गये हैं, उनमें भारी ढालू दीवारें, संकीर्ण दहलीजें तथा चौकोर स्तम्भों का प्रयोग विशेश रूप से किया गया है। यहाँ की अधिकांश मस्जिदों में विध्वंस किये गये हिन्दू मन्दिरों की साम्रगी का ही प्रयोग हुआ है। मस्जिदों में इस्लामी शैली की मीनारें भी देखने को नहीं मिलती है।

जौनपुर के किले का निर्माण 1377 ई0 में किया गया था। अब यह किला खण्डहर के रूप में परिणित हो गया है। इसका केवल पूर्वी द्वार बचा हुआ है जिसकी स्थिति भी दयनीय है।

जौनपुर की शर्की शैली का सबसे महत्वपूर्ण इमारत अटालादेवी की मस्जिद है। इसका निर्माण कार्य 1377 ई0 में प्रारम्भ हुआ था और यह 1408 ई0 में बन कर तैयार हो गयी। इसमें हिन्दू शैली का अपूर्व समन्वय है, जैसा कि इसके नाम से ही परिलक्षित होता है। आज जहाँ यह मस्जिद स्थापित है वहाँ इससे पहले अटालादेवी का मन्दिर था। उसे नष्ट कर उस स्थान पर ही मस्जिद का निर्माण किया गया। इसके निर्माण में अटालादेवी के मन्दिर की सामग्री का प्रयोग किया गया है। इस मस्जिद में एक खुला वर्गाकार आँगन है जिसके उत्तर और दक्षिण पूर्व में खम्भेदार कमरे हैं। इसके पश्चिम में प्रार्थना–स्थल है। मस्जिद के तीन ओर प्रवेश–द्वार हैं जो गुम्बदों द्वारा आच्छादित हैं। यद्यपि निर्माण एवं शैली की दृष्टि से यह मस्जिद तुगलक–मस्जिदों से बहुत हद तक मिलती–जुलती है, फिर भी इनके बीच अनेक बातों में भिन्नता है। यह अपेक्षाकृत अधिक अलंकृत है। इसके प्रार्थना स्थल के सामने जो विशाल एवं प्रभावशाली महराबी जालियाँ लगी हुई हैं, यह शर्की–शैली की खास विशेषता है। इस प्रकार अटालादेवी की मस्जिद में मस्जिद निर्माण की शैली का एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया गया है, जो बाद में चलकर जौनपुर की स्थापत्य कला शैली की एक विशेषता बना गया। स्थापत्य की दृष्टि से अटालादेवी मस्जिद एक प्रभावशाली एवं आकर्षक नमूना है।

सुल्तान इब्राहिम (1401–40 ई0) के शासन काल में एक अन्य मस्जिद का निर्माण उसके दो गर्वनर मलिक खालिस और मलिक मुखालिस ने अपने नाम पर किया। यह एक अलंकरणहीन सादा मस्जिद है।

जौनपुर के भवनों में सबसे प्रमुख जामा मस्जिद है। इसका निर्माण हुसैनशाह शर्की ने 1417 ई0 के लगभग करवाया था। यह जौनपुर की सबसे विशाल मस्जिद है। सम्पूर्ण इमारत एक बहुत बड़े चबूतरे पर स्थित है। इसका प्रार्थना–स्थल दुमंजिला है। मस्ज्दि के मध्य का सिंह–द्वार बड़ा ही आर्कषक है। अन्दर का प्रार्थना –कक्ष पाँच भागों में विभाजित है। इसके दोनों ओर दो मंजिले खम्भेदार भाग हैं। इसका बड़ा हॉल, जिसकी छत बिना किसी आधार के टिकी है, खास रू‍प से आकर्शक है। जामा मस्जिद की योजना और शिल्प–शैली अटालादेवी की मस्जिद से बहुत कुछ मिलती–जुलती है।

इब्राहिम शर्की ने 1430 ई0 में झँझरी मस्जिद का निर्माण करवाया। आज यह खण्डहर की अवस्था में पड़ी हुई है। इसके अवशेशों में केवल मध्य का बड़ा प्रवेश–द्वार ही बचा हुआ है। झँझरी मस्जिद भी अटालादेवी मस्जिद के नमूने पर बनी है। मस्जिद की भीतरी दीवारों पर अलंकरण और नक्काशियाँ की गयी हैं।

पन्द्रह सदी के मध्य में 'लाल दरवाजा' मस्जिद का निर्माण किया गया। इसके मुख्य प्रवेश–द्वार का रंग लाल है, अतः इसे इस नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि यह मस्जिद भी अटालादेवी मन्दिर के समान है, परन्तु उससे कुछ बातों में भिन्न है। यह भिन्नता दोनों मस्जिदों के मुख्य प्रवेश–द्वारों में खास तौर पर देखने को मिलती है। इस मस्जिद के प्रवेश–द्वार की ऊँचाई उसके आधार की चौड़ाई की तुलना में कम है। पुनः अराला मस्जिद में महिलाओं की गैलरियाँ दूर कोनों में हैं जबकि झांझर मस्जिद में वे लगभग मध्य भाग में है। इसके भीतरी महराबी–निम्बर के मध्य भाग के ऊपर केवल एक ही गुम्बद है और उसके बगल में निकली छत भी अटाला मस्जिद से भिन्न है। इस प्रकार लाल दरवाजा मस्जिद अपनी कुछ मौलिकता लिए हुए हैं।

उपर्युक्त मस्जिदों के अतिरिक्त शर्की शैली में कई अन्य मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण हुआ। किन्तु, उनकी शैली में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं है। शर्की शैली में कुछ खास दोश हैः गुम्बदों की कम ऊँचाई, निर्माण योजनाओं की भद्दी बनावट तथा इमारती अनुपात की कल्पना का अभाव। यद्यपि इस शैली में बनी इमारतों के अलग–अलग भाग सुन्दर एवं प्रभावोत्पदक है, परन्तु इन दोशों के कारण सम्पूर्ण इमारत स्थापत्य की दृष्टि से प्रभावोत्पादक एवं आकर्षक प्रतीत नहीं होते हैं। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि शर्की वंश के शासकों ने प्रथम श्रेणी के अनेक इमारतों का निर्माण करवाया जिनका मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

6.15 सारांश

शर्की सल्तनत का अस्तित्व लगभग सौ वर्ष (1394–1500 ई0) तक ही बना रहा। अपनी उन्नति के काल में शर्की वंश की राज्य सीमा पष्चिमी उत्तर–प्रदेश के अलीगढ़ से उत्तरी बिहार के दरभंगा तक और उत्तर नेपाल से दक्षिणी में बुन्देलखण्ड तक थी। यद्यपि जौनपुर नगर की स्थापना फिरोजशाह तुगलक ने की थी, परन्तु स्वतंत्र शर्की वंश राज्य की स्थापना करने का श्रेय मलिक सरवर ख्वाजाजहाँ को जाता है। जौनपुर के शर्की वंश के सभी श ासकों ने कला एवं साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। कला एवं साहित्य के उत्थान के कारण जौनपुर न केवल महत्वपूर्ण शिक्षा का केन्द्र बन गया बल्कि इसे शिराज–ए–मशरिक के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। इस समय लोग दूर–दूर से शिक्षा प्राप्त करने जौनपुर आया करते थे। बीबी राजा बेगम का मदरसा जौनपुर की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था थी। प्रारम्भिक अवस्था में शेरशाह सूरी ने भी जौनपुर में ही शिक्षा प्राप्त की थी। जौनपुर के शासकों ने स्थापत्यकला की ओर भी अपना विशेष ध्यान दिया तथा कलाकारों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन भी प्रदान किया था। हिन्दू और इस्लामिक शैली के समन्वय से स्थापत्यकला से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इस नई विकसित शैली को जौनपुर की शैली का नाम भी दिया गया। इस शैली के प्रमुख इमारतों में जामा मस्जिद, अटाला देवी मस्जिद, झँझरी मस्जिद और लाल दरवाजा मस्जिद आदि प्रमुख हैं। जौनपुर राज्य न केवल राजनीतिक एवं आर्थिक उन्नति की बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की। दिल्ली सल्तनत के बिखराव के बाद यह एक सम्पन्न और समृद्ध राज्य के रूप में विख्यात हुआ। अनेक विद्वानों एवं कलाकारों ने जौनपुर को अपना स्थाई ठिकाना बनाया। इन कलाकारों एवं विद्वानों के आगमन से कला और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। संक्षेप में हम कह सकते हैं नवउदित सभी स्वतंत्र राज्यों में जौनपुर का स्थान सर्वोत्तम और सराहनीय बन गया।

6.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इब्राहिम शाह शर्की की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. जौनपुर की कलात्मक उपलब्धि की व्याख्या कीजिए।
3. जौनपुर स्वतंत्र राज्य के पतन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

6.17 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एल0 पी0 श र्मा– मध्यकालीन भारत
2. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव– भारत का इतिहास
3. लईक अहमद– मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
4. हरिष्चन्द्र वर्मा– मध्यकालीन भारत–भाग–1
5. विपिन बिहारी सिन्हा– मध्यकालीन भारत
6. आर0 एस0 त्रिपाठी– हिस्ट्री ऑफ कन्नौज

6.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. जौनपुर शर्की वंश के उदय पर एक लेख लिखिए।
2. जौनपुर को शिराज–ए–मलिक क्यों कहा जाता है।

इकाई सात- बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 विजयनगर का राजवंश

7.4 शासन प्रबन्ध

7.4.1 कर व्यवस्था

7.4.2 न्याय व्यवस्था

7.4.3 सैन्य प्रशासन

7.4.4 नायकारा प्रणाली

7.4.5 अयागार प्रणाली

7.5 विजयनगर में सांस्कृतिक जीवन

7.6 बहमनी एवं विजयनगर साम्राज्य

7.7 बहमनी राज्य का विघटन

7.8 साराशं

7.9 तकनीकी शब्दावली

7.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

दक्षिण भारत की राजनीतिक परिस्थितियों से लाभ उठाकर 14वीं शताब्दी में अनेक स्थानीय शक्तियों ने छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये, शीघ्र ही संगम के पुत्रों द्वारा स्थापित विजयनगर साम्राज्य और हसन गंगू द्वारा स्थापित बहमनी राज्य ने प्रतिष्ठा प्राप्त की और दीर्घकाल तक ये राज्य दक्षिण भारत की राजनीति के नियन्ता बने रहे।

विजयनगर साम्राज्य और बहमनी साम्राज्य का संपूर्ण काल एक-दूसरे के साथ निरंतर युद्धों में व्यतीत हुआ और कभी एक पक्ष विजयी होता तो कभी दूसरा। लेकिन आपसी युद्धों के बावजूद भी इन दोनों ही राज्यों ने कला ,साहित्य और स्थापत्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व उपलब्धियां हासिल की और इस काल में अनेक विदेशी यात्रियों ने इन राज्यों का भ्रमण किया और अपने प्रंक्षण लिखे जो इन राज्यों के पूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं।

दक्षिण के इन राज्यों के आपसी संघर्ष के अलावा उत्तर के विस्तारवादी मुगल साम्राज्य के साथ भी इनका संघर्ष हुआ। राजनीतिक प्रतिद्वंदिता के चलते बहमनी साम्राज्य का विघटन हो गया और बीजापुर गोलकुण्डा, बीदर, बरार और अहमदनगर की रियासतें अस्तित्व में आयीं लेकिन विजयनगर के साथ इनकी प्रतिद्वन्दता बनी रही। सन् 1565 ई. को राक्षसटंगड़ी के युद्ध में विजयनगर साम्राज्य की पराजय हुई और साम्राज्य का विजयी राज्यों ने बंटवारा किया हांलाकि विजयनगर राज्य पुनर्जीवित हुआ लेकिन यह पुनर्जीवन अल्पावधि का था और धीरे-धीरे विस्तारवादी मुगल साम्राज्य में दक्षिण के इन राज्यों को समाहित कर लिया गया।

7.2 उद्देश्य

पिछली ब्लाक की इकाइयों में आपको सल्तनतकालीन उत्तर भारतीय राज्यों के इतिहास के विविध पक्षों की जानकारी दी गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी।इस इकाई का उद्देश्य आपको विजयनगर साम्राज्य और बहमनी राज्य के समाज, संस्कृति एवं अर्थब्यवस्था से संबंधित तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. विजयनगर का राजवंश
2. विजयनगर का शासन प्रबन्ध
3. विजयनगर में सांस्कृतिक जीवन
4. बहमनी एवं विजयनगर साम्राज्य के आपसी संबंध

7.3 विजयनगर का राजवंश

विजयनगर का प्रारम्भिक इतिहास स्पष्ट नहीं है, बताया गया है कि संगम के पांच पुत्रों ने (जिनमें से दो का नाम हरिहर और बुक्का था) तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी तट पर उसके उत्तरी तट वाले अनागोण्डी दुर्ग के सामने विजयनगर साम्राज्य की नींव डाली थी। हरिहर प्रथम व बुक्का प्रथम द्वारा संस्थापित वंश संगम वंश के नाम से प्रसिद्ध है। हरिहर और बुक्का ने कोई शाही उपाधि ग्रहण न की क्योंकि होयसल वंश का बल्लाल तृतीय अभी जीवित था जब होयसल वंश का अंतिम राजा विरूपाक्ष बल्लाल 1346 में मदुरा के सुल्तान से लड़ते हुए मारा गया तो हरिहर और बुक्का ने

होयसल राज्य को अपने अधीन कर लिया। लगभग 1353 में हरिहर की मृत्यु हो गयी और बुक्का का राज्यारोहण हुआ। बुक्का ने 1353 से 1379 तक राज्य किया। उसने विजयनगर के शहर का निर्माण कार्य पूर्ण कराया और साम्राज्य भी बढाया, उसने चीन के सम्राट के पास अपना दूत भेजा। बुक्का प्रथम एक उदार शासक था एक बार उसने जैनियों तथा वैष्णवों के बीच एक समन्वय करवाया। बुक्का के बाद उसका पुत्र हरिहर द्वितीय गद्दी पर बैठा उसने 1379 से 1406 तक शासन किया। हरिहर द्वितीय के बाद उसका पुत्र देवराय प्रथम राजा बना जिसने 1406 से 1422 तक शासन किया, देवराय द्वितीय 1422 से 1446 तक राजा बना , 1442 में फारस का दूत अब्दुर्रज्जाक विजयनगर आया, उसने विजयनगर का आखों देखा विवरण दिया है।

विजयनगर साम्राज्य

विरूपाक्ष मंदिर

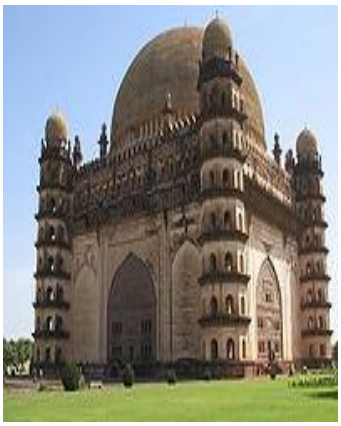

गोलगुंबज , बीजापुर

देवराय द्वितीय के बाद उसका पुत्र मल्लिकार्जुन (1446-1465) गद्दी पर बैठा। उसके बाद विरूपाक्ष द्वितीय (1465-863) गद्दी पर बैठा, वह एक अयोग्य शासक था, विजयनगर साम्राज्य को बचाने के लिए 1486 में नरसिंह ने विरूपाक्ष द्वितीय को अपदस्थ कर दिया और स्वयं गद्दी पर अधिकार कर लिया इसे प्रथम अपहरण कहते हैं इससे संगम वंश का अन्त हुआ और उसके स्थान पर सलूवा वंश की सत्ता आरम्भ हुई। 1486 से 1492 तक नरसिंह सलवा के दो पुत्रों की हत्या कर दी, किन्तु अभिलेखों से पता चलात है कि नरेश नायक ने नरसिंह सलूबा के पुत्र इम्मादी नरसिंह केा गद्दी पर बैठा दिया, 1505 में नरेश नायक की मृत्यु हो गयी और उसके पुत्र वीर नर सिंह ने सलूवा वंश के अन्तिम शासक को हटा कर गद्दी का अपहरण कर लिया इसे द्वितीय अपहरण कहते है। वीर नरसिंह तलूवा वंश का संस्थापक हुआ उसने 1505 से 1509 तक शासन किया। वीर नरसिंह के बाद उसके भाई कृष्णदेवराय ने 1509 से 1530 तक राज्य किया। पुर्तगाली यात्री डोमिन्गो पेस उसके शासन काल में आया। कृष्णदेवराय स्वंय एक विद्वान ही नहीं वरन् विद्या प्रेमी भी था। यद्यपि उसकी व्यक्तिगत रूचि वैष्णव धर्म की ओर थी किन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी वह सहिष्णु था। कृष्णदेवराय के सम्बन्ध पुर्तगालियों से बहुत मैत्रीपूर्ण रहे, उसने उन्हें बहुत सी सुविधाऐं दीं, क्योंकि घोड़ों और अन्य वस्तुओं के आयात से उसे बहुत लाभ हुआ था, 1510 में पुर्तगाली अल्बुकर्क ने बटकल में दुर्ग बनाने की स्वीकृति मांगी जो उसे मिल गयी। कृष्णदेव राय के बाद अच्युत राय आया जिसने 1530 से 1542 तक शासन किया,

उसके बाद उसका भतीजा रामराय एक योग्य व्यक्ति था, कुछ समय तक उसके प्रयत्न सफल रहे किन्तु अन्त में साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुए। राक्षस व टंगड़ी के ग्रामों के बीच मित्र दक्षिण राज्यों ने विजयनगर के विरूद्ध युद्ध किया और इसमें मुसलमानों की विजय हुई, इसे तलीकोटा का युद्ध भी कहते हैं। तलीकोटा के युद्ध ने विजयनगर के साम्राज्य को बहुत क्षति पंहुचायी। वेंकटा द्वितीय राजा विजयनगर का अन्तिम महान शासक हुआ जिसने साम्राज्य को सुरक्षित रखा, वेंकटा द्वितीय की मृत्यु के बाद साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया, पारस्परिक संघर्षों ने मुसलमानों को उनके विरूद्ध विजय पाने में सफलता प्रदान की, इन्हीं परिस्थितियों के वश में आकर विजयनगर का साम्राज्य समाप्त हो गया।

7.4 शासन प्रबन्ध

साम्राज्य का शासक राज्य की सारी सत्ता का सर्वोच्च स्त्रोत था, कृष्णदेवराय ने अपने ग्रंथ ''अमुक्तमाल्यदा'' में राजपद का आदर्श स्थापित किया। विजयनगर का साम्राज्य एक विशाल सामन्ती संगठन था और राजा सारी व्यवस्था के उपर था, उसे कार्य में एक परिषद सहायता करती थी, जिसमें मंत्री, प्रान्तीय अध्यक्ष गण, सेनानी, पुरोहित होते थे, परिषद के सदस्यों का चुनाव नहीं होता था वरन् राजा उन्हें मनोनीत करता था, मन्त्रिगण क्षत्रिय तथा वैश्यों से भी लिये जाते थे ब्राहमणों के अलावा एक मन्त्री का पद कभी पैतृक और कभी अपैतृक होता था। नुनिज के अनुसार, पुलिस संरक्षक को नगर में होने वाली चोरी व डकैतियों का उत्तर देना पडता था।

शासक प्रबन्ध के लिए विजयनगर बहुत से प्रान्तों में बंटा हुआ था, प्रान्त के लिए राज्य, मंडल और चवादी शब्दों का प्रयोग किया जाता था, तमिल के भाग में कोट्टम, पार्रू और नादू नाम के प्रान्तीय टुकडे थे और कर्नाटक भाग में नादू, सीमा, बैंथ और स्थल नामक प्रान्तीय भाग थे। प्रत्येक प्रान्त एक नायक (नाइक) या अध्यक्ष के आधीन था। यदि नाइक अपनी आय का 1/3 भाग केन्द्रीय सरकार को न भेजता तो उसकी जागीर का उन्मूलन किया जा सकता था। ग्राम शासन प्रबन्ध की इकाई था प्रत्येक गाँव आत्मनिर्भर था गाँव के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व ग्राम सभा पर था। राजा एक अधिकारी महानायकाचार्य द्वारा ग्राम पर नियन्त्रण रखता था।

7.4.1 कर व्यवस्था

विजयनगर साम्राज्य की आय का मुख्य साधन भूमिकर था, इसका प्रबन्ध अठवणे नामक विभाग के आधीन था। भूमिकर लगाने के उद्देश्य से भूमि को तीन भागों में बांटा गया था- गीली भूमि, सूखी भूमि व उद्यान तथा वन। हिन्दू विधि के अनुसार राज्य का हिस्सा उपज का 1/6 भाग था। भूमिकर के अतिरिक्त कृषकों को अन्य कर जैसे चरागाह कर, विवाह कर इत्यादि भी देने पडते थे। राज्य की आय के साधन और भी थे जैसे चुंगी, व्यापार कर, उद्यान कर व धोबियों, व्यापारियों, सौदागरों, मजदूरों, कलाकारों, भिक्षुओं नाइयों, चमारें व वैश्याओं पर कर। वैश्याओं द्वारा हेाने वाली आय को पुलिस व्यवस्था में व्यय किया जाता था।

7.4.2 न्याय व्यवस्था

राजा सर्वोच्च न्यायाधीष था पर न्याय के लिए सुव्यवस्थित न्यायालय तथा विशेष न्याय संबंधी अधिकारी भी थे। स्थानीय संस्थाओं की सहायता से भी झगडों को सुलझाया जाता था। देश का एकमात्र कानून ब्राहमणों का कानून या पुरोहितों का कानून नहीं था वरन् यह प्राचीन एवं परम्परागत नियमों, रीति रिवाजों तथा देश के संवैधानिक व्यवहारों पर आधारित थे। दण्ड विधान कठोर था तथा जुर्माने , सम्पति हरण के साथ ही अंग भंग तथा मृत्यु दण्ड भी सामान्य प्रचलित दण्ड थे।

7.4.3 सैन्य प्रशासन

होयसलों की भांति ही विजयनगर का सैनिक विभाग भी सावधानी से संगठित था, इस विभाग का नाम कन्दाचार था और दण्डनायक या दण्डनायक के नियन्त्रण में था। राज्य में एक विशाल एवं कार्यक्षम सेना थी जिसकी संख्या समयानुसार धटती बढती थी। आवश्यकता के समय जागीरदारों तथा सरदारों की सहायक सेना भी सम्मिलित की जाती थी। सेना के विविध अंग थे- पदाति जिसमें मुसलमानों को भी लिया जता था, अश्वारोही सेना को पुर्तगालियों की सहायता से अच्छे अश्व लेकर सबल बनाया गया था। हाथी तथा ऊटों का भी प्रयोग होता था। तोपों का भी उल्लेख मिलता है संभवतः यह अविकसित अवस्था में रही होगी। प्रतीत हेाता है कि विजयनगर की सेना का अनुशासन तथा लड़ने की शक्ति दक्कन के मुस्लिम राज्यों की सेना से कम रही होगी।

7.4.4 नायकारा प्रणाली

प्रान्तीय संगठन की एक विशेषता नायकारा प्रणाली थी। इस प्रणाली में राजा जो कि भूमि का स्वामी माना जाता था, अपने आश्रितों को भूमि प्रदान करता था। इसके भूस्वामी नायक कहलाते थे। इनको बदले में दो कार्य करने होते थे प्रथमतः वे एक निश्चित वार्षिक राशि साम्राज्य के खजाने में भेजते थे, नुनिज के अनुसार यह राशि उनके कुल राजस्व का आधा हेाती थी। द्वितीयतः उनहें एक कुशल सेना रखनी होती जो कि आवश्यकता के समय राजा को देनी होती थी। उनहें अपने क्षेत्र में शान्ति स्थापित करनी हेाती थी और अपराधों का पता लगाना हेाता था। नायकों की संवैधानिक स्थिति, प्रान्तों के शासकों से भिन्न प्रतीत हेाती है हाँलाकि दोनों को ही अनेक समान कर्तव्य निभाहने होते थे। नायक तुलनात्मक दृष्टि से अपने प्रान्तों में अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे। संभवतः नायकों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानान्तरण नहीं होता था। नायक उपाधि प्रारंभ में व्यक्तिगत थी परन्तु जैसे जैसे शासक केन्द्र में कमजोर होते गये यह उपाधि वंशानुगत हो गयी ।नायक दो प्रकार के अधिकारी केन्द्र में रखते थे। जिनमें से एक सैन्य अधिकारी होता था तथा दूसरा स्थानपति या नागरिक ऐजेण्ट होता था जो अपने स्वामी के हितों की राजधानी में रक्षा करता था। विजयनगर के बाद के काल में नायकों की स्वतन्त्रता पर अंकुश रखने के लिए विशेष आयुक्तों की नियुक्ति की गयी थी।

7.4.5 अयागार प्रणाली

ग्राम्य संगठन की एक प्रमुख विशेषता अयागार प्रणाली थी। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक गाँव एक पृथक इकाई थी, और इसका कार्य संचालन 12 व्यक्तियों के एक निकाय द्वारा संचालित किया जाता था, जिनहें सम्मिलित

रूप से आयागार पुकारा जाता था। आयागारों को सामान्यता सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता था परन्तु एक बार आयगार बन जाने पर इनका यह वंशानुगत अधिकार हो जाता था। जब कभी किसी निश्चित कार्य क्षेत्र को लेकर विवाद उठता तो सरकार बडी सावधानी से पता लगाती थी ---- प्रजा और सुदीर्घ प्रयोग के आधार पर किस आयगार का यह क्षेत्राधिकार है। आयगारों को कर विमुक्त भूमि मिली होती थी। उन्हें अपने क्षेत्र में शान्ति स्थापित रखने का अधिकार था। बिना आयगारों के ज्ञान के सम्पत्ति का स्थानान्तरण या अनुदान नहीं दिया जा सकता था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1- विजयनगर का सैनिक विभाग अठवणे कहलाता था। सत्य/असत्य

2- निकोलो कोण्टी इंग्लैण्ड का निवासी था। सत्य/असत्य

3- विजयनगर में हिन्दू विधि के अनुसार राज्य का हिस्सा उपज का 1/6 भाग था। सत्य/असत्य

7.5 विजयनगर में सांस्कृतिक जीवन

कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में विजयनगर साम्राज्य में असाधारण उन्नति हुई। विजयनगर साम्राज्य के प्रारंभिक काल में वेदों के प्रख्यात भाष्यकार सायण तथा उनके भाई माधव विधारण्य हुए थे । विजयनगर के शासक संस्कृत, तेलुगु, तमिल एवं कन्नड़ सभी भाषाओं के संरक्षक थे। अन्य क्षेत्रों की भांति ही कृष्णदेव राय का काल सांस्कृतिक उत्थान की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। वह स्वंय विद्वान, संगीतज्ञ एवं कवि था। उसने अपनी महत्पूर्ण कृति अमुक्त माल्यदा'' तेलुगु में लिखी, जिसकी भूमिका में उसने संस्कृत में लिखी अपनी पांच पुस्तकों की चर्चा की है। उसके दरबार में अष्टदिग्गज थे । उसका राजकवि पेद्दन की बडी ख्याति थी, तथ तेलुगु लेखकों में उसका स्थान सर्वोपरि था। आरवीडु वंश के शासकों तक ने जिनकी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत खराब हो गयी थी, साहित्य को संरक्षण दिया और उनके अधीन भी तेलुगु साहित्य की उन्नति हुइ्र। छोटे नायकों तथा राजाओं के सम्बन्धियों में लेखक थे। संगीत, नृत्य, नाटक, व्याकरण, न्याय, दर्शन इत्यादि के ग्रन्थों को समा्रटों तथा मन्त्रियों से प्रोत्साहन मिलता। इस साम्राज्य के अन्तर्गत ग्रन्थों को समा्रटों तथा मन्त्रियों से प्रोत्साहन मिला। इस साम्राज्य के अन्तर्गत माध्वाचार्य ने ''पाराशरमाधव'', ''काल-निर्णय'' तथा ''स्मृति-संग्रह'' गन्थ लिखें। लक्ष्मीधर ने ''सरस्वती विकास'' तथा ''सौन्दर्य लहरी'' का सृजन किया। व्यासराज ने खण्डव ''मायावाद खण्डन'' ग्रन्थ लिखा। विजयनगरी साम्राज्य में साहित्य निर्माण के क्षेत्र में स्त्रियों ने भी विशेष योगदान दिया। तिरूमलम्बादेवी ने ''बरदाम्बिका परिरगयम्'' तथा गंगादेवी ने ''मथुराविजयम्'' महाकाव्य लिखा। संक्षेप में संस्कृत, तेलुगु, तमिल एवं कन्नड भाषाओं में रचित विजयनगर साम्राज्य का साहित्य दक्षिण भारतीय संस्कृति का एक सुखद समन्वय है।

साहित्य के विकास के साथ साथ कला और वास्तुकला की भी विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत विलक्षण उन्नति हुई। अब्दुर्रज्जाक तथा निकोलो कोण्टी ने विजयनगर का भव्य वर्णन किया है। हम्पी नगर के अवशेषों से भी पता चलता है कि इसके कलाकारें ने यहां वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला की एक पृथक शैली का विकास

किया था। विठ्ठलस्वामी मन्दिर भी विजयनगर शैली का एक उत्तम नमूना है। विजयनगर के शासकों ने चित्रकला तथा संगीत को भी पर्याप्त संरक्षण दिया था। चित्रकला उत्तमता की ऊँची सीढी पर पहुंच चुकी थी और संगीत कला का भी तीव्रता से विकास हुआ। संगीत के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें लिखी गयी। कृष्णदेव राय तथा संरक्षक रामराय संगीत कला में प्रवीण थे। नाट्यशालाओं द्वारा जनता के मनोरंजन का उल्लेख मिलता है।

अभिलेखीय तथा साहित्यिक प्रमाण स्पष्टतः बतलाते हैं कि विजयनगर के शासक धार्मिक प्रवृत्ति के तथा धर्म में अनुरक्त थे पर वे धर्मोन्मत्त नहीं थे। तत्कालीन चार सम्प्रदायों शैव, बौद्ध, वैष्णव एवं जैन तथा विदेशियों ईसाई तथा यहूदी तथा इस्लाम तक के प्रति उनका रूख उदारता पूर्ण था। तमिल, तेलुगु, कन्नड, संस्कृत को वो समान संरक्षण देते थे। उन्होंने अपनी सेना में मुसलमानों को भी रखा और विदेशियों का भी अपने दरबारों ने स्वागत किया। इस प्रकार विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिण भारतीय संयुक्त संस्कृति का विकास हुआ और धर्मरत् रहते हुए भी शासकों ने आधुनिक धर्मनिरपेक्ष तथा सहिष्णुतावादी नीतियों का पालन किया।

7.6 बहमनी एवं विजयनगर साम्राज्य

मुहम्मद तुगलक के काल में दक्षिण के अमीरों ने सम्राट के विरूद्ध विद्रोह किया और दौलताबाद के दुर्ग में अधिकार कर लिया और अफगान इस्माईल मख को नासिरूद्दीन शाह की उपाधि देकर दक्षिण का शासक घोषित कर दिया, मगर इस्माइल मख ने अपनी इच्छा से हसन, जिसकी उपाधि जफर खॉ थी के पक्ष में अपना सिंहासन त्याग दिया। 1347 में अबुल मुजफफर अलाउद्दीन बहमनशाह की उपाधि के साथ हसन गंगू का सिंहानारोहण हुआ। सिंहासनारोहण के पश्चात उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी चुना और उसका नाम अहसानाबाद कर दिया। उसने गैर मुस्लिम शासकों के प्रदेशों को एक-एक करके जीत लिया। अपने राज्य के प्रबन्ध के लिए उसने उसे चार प्रान्तों में – गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार व बीदर में बांटा व प्रत्येक के प्रबन्ध के लिए उसे प्रान्ताध्यक्ष को सौंपा जिसे सेना रखना आवश्यक था। 1358 में उसकी मृत्यु हो गयी। हसन के बाद उसका बडा पुत्र मुहम्मद शाह प्रथम गद्दी पर बैठा, उसका सारा जीवन वारंगल व विजय नगर के शासकों के विरूद्ध युद्ध करने में बीता, विजयनगर के साथ युद्ध का तत्कालीन कारण यह था कि उस दूत का अपमान किया गया जिसे वहॉ कर वसूलने के लिए भेजा गया था, विजयनगर का शासक बहमनी क्षेत्र में आ गया और उसने उतने भाग का संहार कर दिया जो कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच था। मुहम्मद शाह प्रथम के बाद मुजाहिद शाह गद्दी पर बैठा, इसके समय भी विजयनगर के साथ युद्ध हुआ रायचूर दोआब संघर्ष का मुख्य कारण था। मुसलमानों की धोर पराजय हुई और एक सन्धि कर ली गयी। अगला शासक मुहम्मद शाह द्वितीय हुआ, वह शांतिप्रिय था। उसने अपना सारा समय विज्ञान व साहित्य की खोज में व्यय किया, उसने प्रसिद्ध फारसी कवि हफीज को आमन्त्रित किया, किन्तु कठिनाईयों के कारण हफीज भारत न आ सका, उसने अपनी एक कविता भेजी जिसके बदले में उसे काफी पुरस्कार दिया गया, 1397 में मुहम्मद शाह द्वितीय का निधन हो गया।

1397 में उसके सिंहासन पर अलाउद्दीन हसन बहमनी के पौत्र फीरोज ने अधिकार जमा दिया। 1398 में विजयनगर सम्राज्य के साथ युद्ध छिड गया, जिसका शासक मुदगल के दुर्ग में अधिकार जमाने के उद्देश्य से रायचूर दोआब में घुस आया था, । 1403 में विजयनगर के साथ एक अन्य युद्ध छिड गया, इसका तत्कालीन कारण यह था

कि विजयनगर का राजा मुदुगल के एक किसान की सुन्दर कन्या को छीनना चाहता था। फीरोज शाह ने उस कन्या का विवाह, जिसके कारण यह सारा उपद्रव हुआ अपने पुत्र से कर दिया। 1420 में विजयनगर और बहमनी साम्राज्य के बीच पुनः युद्ध छिड गया और अन्त में बहमनी राज्य केा पराजय मिली। 1422 में फिरोज को अपनी गद्दी विवश होकर अपने भाई अहमद शाहके पक्ष में छोडनी पडी। अहमद शाह ने 1422 से 1435 तक शासन किया। उसका अन्तिम अभियान तेलिंगाना के विरूद्ध हुआ। उसने अपनी राजधानी गुलबर्गा से हटाकर बीदर कर ली थी , 1435 में उसकी मृत्यु हो गयी। अहमदशाह के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन द्वितीय (1435-57) गद्दी पर बैठा, अलाउद्दीन द्वितीय इस्लाम का अनुयायी था और मुसलमानों के प्रति वह बहुत दयालु भी था। उसने मस्जिदें बनवायी सार्वजनिक शिक्षालय व कल्याणकारी संस्थाऐं स्थापित कीं जिनमें उसकी राजधानी बीदर में बना हुआ पूर्ण वैभव व शैली की शुद्धता वाला चिकित्सालय भी हैं, अलाउद्दइीन द्वितीय के बाद उसका पुत्र हुमायूं गद्दी (1457-1461) पर बैठा, वह इतना निर्दयी था कि उसे ‘‘जालिम‘‘ या ‘‘र्निदयी‘‘ की उपाधि मिली। हुमायूं के बाद उसका पुत्र निजाम शाह का राज्यारोहण हुआ वह अवयस्क था, इसलिए शासन प्रबन्ध उसकी माता मख्दूम जहॉ, ख्वाजा जहॉ और महमूद गवां की सहायता से करती थी। उसके काल में एक रूसी व्यापारी निकितन 1470 में भारत आया था। यद्यपि मुहम्मद शाह तृतीय का सैनिक जीवन विजय से भरा था परनतु 1481 में उसकी एक महान् गलती महमूद गवां की हत्या कराना थी। फरिश्ता के अनुसार गवां दो पुस्तकों ‘‘रौजत-उल-इंशा‘‘ व ‘‘दीवान-ए-अशर‘‘ का लेखक है। लेकिन गवां के चरित्र पर एक धब्बा है, उसे गैर मुसलमानों को सताने में काफी आनन्द आता था, वह अपने स्वामी की भांति ही हिंदुओं के प्रति निर्दयी व उनके रक्त का प्यासा था।

मुहम्मद शाह तृतीय के पश्चात उसके पुत्र महमूद शाह का सिहासनारोहण हुआ, राज्यारोहण के समय वह अवयस्क था, युवावस्था में आते आते वह दुराचारी हो गया। फैली हुई गडबड को देखकर प्रान्तों के अध्यक्षों ने लाभ उठाया और अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। ।बहमनी राज्य का अन्तिम शासक कलीम उल्लाह शाह था, 1524 में वह सिंहासन पर बैठा 1563 में उसकी मृत्यु हो गयी 180 वर्षों से चला आ रहा बहमनी साम्राज्य भी समाप्त हो गया।

उल्लेखनीय है कि बहमनी राज्य में 18 शासक हुए 5 की हत्या हुई, दो असंयमी होने के कारण जाते रहे तीन को पद से हटाया गया और उनमें से दो को चक्षुरहित कर दिया गया।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1- अबुल मुजफफर अलाउद्दीन बहमनशाह की ने सिंहासनारोहण के पश्चात ..... को अपनी राजधानी चुना।

2-महमूद गवां दो पुस्तकों ‘‘रौजत-उल-इंशा‘‘ तथा.....का लेखक था।

3- मुहम्मद शाह द्वितीय ने प्रसिद्ध फारसी कवि .....को आमन्त्रित किया था ।

7.7 बहमनी राज्य का विघटन

बहमनी राज्य के विघटन के बार पांच स्वाधीन राज्यों का उदय हुआ। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बीजापुर का अदिलशाही राज्य था जिसका संस्थापक युसुफ आदिलशाह था। 1489-90 में उसने अपने को बीजापुर का स्वतन्त्र

शासक बना लिया, यद्यपि वह अपने शिया वर्ग के प्रति रूचि रखता था किन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहनशील था 1686 में औरंगजेब ने बीजापुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

अहमदनगर का निजामशाही राज्य मलिक अहमद ने 1490 में स्थापित किया 1603 में बकबर ने अहमदनगरी को जीत लिया किंतु 1636 में इसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

बरार में इमादशाही राज्य का संस्थापक फतह उल्लाह इमादशाह था वह 1490 में स्वाधीन बन बैठा, 1574 में अहमदनगर ने उसकों जीत कर अपने राज्य में मिला लिया।

गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य कुतुबशाह ने स्थापित किया जो बहमनी राज्य में एक तुर्क अधिकारी था, 1687 में औरंगजेब ने उसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

बीदर का बारिदशाही राज्य 1526-27 में अमीर अली बारिद ने स्थापित किया, 1618-19 में बीदर को बीजापुर में मिला दिया गया।

7.8 साराशं

बहमनी और विजयनगर राज्य 14वीं शताब्दी में दक्षिण में उत्पन्न राजनीतिक अव्यवस्था के फलस्वरूप अस्तित्व में आये थे। ये दोनों ही राज्य रायचूर दोआब में अधिकार हेतु निरंतर संघर्षरत रहे। इसके बावजूद भी यह काल में दक्षिण भारत में अनेक उपलब्धियों का काल रहा और समाज तथा संस्कृति के क्षेत्र में सर्वतोभद्र उन्नति हुई। यह काल दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य के अंतर्गत आर्य संस्कृति की पराकाष्ठा का काल है। दक्षिण के इन राज्यों ने अपने राज्यों के अंदर सहिष्णुतावादी नीतियों का पालन किया । कृष्णदेवराय ने अपने ग्रंथ अमुक्तमाल्यदा में राजपद का उच्च आदर्श स्थापित किया।

7.9 तकनीकी शब्दावली

अपदस्थ - पद से हटाना

गद्दी का अपहरण - गद्दी पर कब्जा करना

पुर्तगाली - पुर्तगाल देश के निवासी

भाष्यकार - व्याख्याकर्ता

सहिष्णुतावादी - सभी के प्रति उदार होने पर विश्वास

7.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 1.4 के प्रश्न 1 का उत्तर- असत्य

भाग 1.4 के प्रश्न 2 का उत्तर- असत्य

भाग 1.4 के प्रश्न 3 का उत्तर- सत्य

भाग 1.6 के प्रश्न 1 का उत्तर- गुलबर्गा

भाग 1.6 के प्रश्न 2 का उत्तर- दीवान-ए-अशर

भाग 1.6 के प्रश्न 3 का उत्तर- हफीज़

7.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

Sewell : A Forgottan Empire.

Sherwani , H.K. : Mahmud Gawan.

Venkataramanayya , N : Vijaynagar : Origin of the City and Empire.

Aiyangare , S.K. : South India and her Mohammedan Invaders.

Saletore : Social and Political Life in the Vijayanagar Empire Vol. I &II.

7.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Beg, Hindu : Gulistan -i- Ibrahimi alias Tarikh -i- Farista (English translation by Briggs).

Sewell : A Forgottan Empire.

Sherwani , H.K. : Mahmud Gawan.

Haig, Woolseley : Cambridge History of India ,Vol.III.

Venkataramanayya , N : Vijaynagar : Origin of the City and Empire.

Aiyangare , S.K. : South India and her Mohammedan Invaders.

Saletore : Social and Political Life in the Vijayanagar Empire Vol. I &II.

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1- विजयनगर और बहमनी राज्यों के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।

2- विजयनगर साम्राज्य की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

इकाई आठ - सल्तनतकालीन अर्थव्यवस्था एवं समाज, प्रशासन, राजस्व व्यवस्था

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 सल्तनतकालीन समाज

- **8.3.1** सामाजिक वर्ग
- **8.3.2** स्त्रियों की स्थिति
- **8.3.3** भोजन-वस्त्र एवं मनोरंजन

8.4 आर्थिक स्थिति

- **8.4.1** कृषि
- **8.4.2** उद्योग
- **8.4.3** व्यापार

8.5 सल्तनत का प्रशासन

- **8.5.1** सुल्तान
- **8.5.2** मंत्री तथा अन्य कर्मचारी
  - **8.5.2.1** नाइब या नाइब- ए-मामलिकत
  - **8.5.2.2** दिवाने-वजारत या वजीर
  - **8.5.2.3** आरिज-ए-मुमालिक
  - **8.5.2.4** दीवान-ए-रसालत
  - **8.5.2.5** दीवान-ए-इंशा
- **8.5.3** इक्ताओं का शासन

8.6 राजस्व नीति

- **8.6.1** वित्त
  - **8.6.1.1** जजिया
  - **8.6.1.2** आय-कर
  - **8.6.1.3** भू-राजस्व
- **8.6.2** व्यय के साधन

8.7 साराशं

8.8 तकनीकी शब्दावली

8.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.12 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

मुसलमानों के आने से पूर्व भी भारतीय समाज विभिन्न वर्गों में विभक्त था, मुसलमानों के आने से उसका विभक्तिकरण बढ़ गया। स्त्रियों की स्थिति पहले की अपेक्षा और गिर गयी थी। हिन्दु समाज में सामान्यतः लोग निरामिष भोजन करते थे यद्यपि युद्धप्रिय जातियों और शूद्रों में मांसाहार प्रचलित था। सल्तनत काल में दो विरोधी धर्मों एवं संस्कृतियों को मानने वाले व्यक्तियों को एक साथ रहने के अवसर प्राप्त हुए और दोनों ने एक दूसरे को किसी सीमा तक प्रभावित भी किया।

आर्थिक दृष्टि से भारत एक समृद्धिशाली देश था। भारत में प्रायः सभी स्थानों पर विभिन्न प्रकार के अन्न, दालें, फल आदि उत्पन्न किये जोते थे। अधिकांश फसलें वर्ष में दो बार और कहीं-कहीं तीन बार भी उत्पन्न की जाती थीं। उद्योगों की दृष्टि से भी भारत अच्छी स्थिति में था। भारत में आन्तरिक और विदेशी व्यापार उन्नत था। दूरस्थ प्रदेशों को जोड़ने वाली सड़कें पर्याप्त मात्रा में थीं आरे भिन्न-भिन्न वस्तुओं की व्यापारिक मण्डियां विद्यमान थी। परंतु भारत की इस आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य लाभ शासक और व्यापारी वर्ग ने प्राप्त किया था। जनसाधारण की स्थिति शोचनीय तो नहीं परंतु बहुत अच्छी भी नहीं थी।

सल्तनतकाल में भारत की सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था की जानकारी समकालीन साहित्य के अतिरिक्त विदेशी यात्रियों के विवरण में भी मिलता है। इस काल की जानकारी का विवरण उक्त के आधार पर विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

8.2 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपको विजयनगर साम्राज्य तथा बहमनी राज्य के बारे मे जानकारी दी गयी थी और आपको उक्त से संबंधित जानकारी हो पायी । इस इकाई का उद्देश्य आपको सल्तनतकालीन समाज, संस्कृति एवं अर्थब्यवस्था से संबंधित अन्य तथ्यों से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको निम्नांकित तथ्यों के विषय में जानकारी हो सकेगी-

1. सल्तनतकालीन समाज
2. सामाजिक वर्ग , स्त्रियों की स्थिति ,भोजन-वस्त्र एवं मनोरंजन
3. सल्तनतकालीन .आर्थिक स्थिति
4. सल्तनतकालीन कृषि , उद्योग एवं व्यापार

8.3 सल्तनतकालीन समाज

सल्तनत काल में हिंदू एवं मुस्लिम समुदायों को एक साथ रहने का मौका मिला और एक समुदाय ने दूसरे समुदाय से अनेक बातें सीखीं और अनेक अवसरों पर टकराव भी हुआ, किंतु कुल मिलाकर यह काल अनेक बातों में सकारात्मक रहा।

8.3.1 सामाजिक वर्ग

मुसलमानों के आने से पूर्व भी भारतीय समाज विभिन्न वर्गों में विभक्त था, मुसलमानों के आने से उसका विभक्तिकरण बढ़ गया। सल्तनत काल में समाज का सबसे सम्मानित वर्ग विदेशी मुसलमानों का था जो तुर्क,, ईरानी, अरब, अफगान, अबिसीनियन आदि थे। समाज का दूसरा वर्ग भारतीय मुस्लिमों का था जो नस्ल, उत्पति, धर्म, शिक्षा, आजीविका आदि आधार पर बंटे हुए थे। भारतीय समाज का बहुसंख्यक वर्ग हिन्दुओं का था, जो पहले से ही जाति व्यवस्था के कारण विभिन्न वर्गों में विभाजित था। हिन्दुओं में जाति बन्धन, ऊँच-नीच, छुआछूत, व्यवसाय एवं निवास के आधार पर अनेक उपजातियाँ बन गयी थीं, जिनमें खान-पान एवं विवाह सम्बन्ध संभव न थे।

8.3.2 स्त्रियों की स्थिति

हिन्दुओं में स्त्रियों की स्थिति पहले की अपेक्षा और गिर गयी थी। यद्यपि इस काल में अवन्तिसुन्दरी, देवलरानी, रूपमती, पदमिनी और मीराबाई जैसी विदुषी स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं तथापि स्त्रियों की व्यावहारिक स्थिति निम्न हो गयी थी और वे कई नवीन कुप्रथाओं से पीड़ित हो गयीं थी। बहुविवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, अल्पायु विवाह, बाल हत्या, देवदासी आदि कुप्रथाओं ने स्त्री समाज को जकड़ दिया था। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। मुसलमानों में बहुविवाह आम था जबकि उच्च वर्ग सैकड़ों स्त्रियां और दासियां भी रखता था। मुस्लिम स्त्रियों में पर्दा प्रथा कठोर थी और शिक्षा का प्रसार कम था। परन्तु मुसलमान स्त्रियां इस ढंग से बेहतर स्थिति में थी कि उन्हें विधवा पुनर्विवाह, तलाक और मां व बाप की सम्पति में हिस्सा लेने का अधिकार था और उनमें सती प्रथा नहीं थी। परन्तु कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस युग में स्त्रियों की स्थिति खराब हुई थी और स्त्रियों का स्थान ''भोग्या'' के रूप में था।

8.3.3 भोजन-वस्त्र एवं मनोरंजन

हिन्दु समाज में सामान्यतः लोग निरामिष भोजन करते थे यद्यपि युद्धप्रिय जातियों और शूद्रों में मांसाहार प्रचलित था। हिन्दुओं के भोजन में दुध और दुग्ध पदार्थों को महत्व दिया जाता था, मुस्लिमों में सूफी और उनके अनुयायी मांस नहीं खाते थे अन्यथा सभी मुसलमान मांसाहारी थे। हिन्दुओं और मुस्लिमों में शराब और अफीम का प्रयोग स्वच्छदता से किया जाता था। वस्त्र, धोती, अंगिया, पेटीकोट, चुनरी, कुर्ता, पाजामा, चोली, अंगरखा आदि का प्रयोग होता था। आभूषणों का शौक हिंदू और मुसलमान दोनों को था। सोने, चांदी, जवाहरात आदि के आभूषण बनाये जाते थे। मनोरंजन के लिए खेल-कूद, द्वन्द युद्ध, शिकार चौपड़, पशु -पक्षियों के युद्ध, चौगान आदि थे। इसके अतिरिक्त होली, दिवाली, बसन्त, ईद, शब्बेरात, नौरोज आदि त्योहार मनाये जाते थे।

सल्तनत काल में दो विरोधी धर्मों एवं संस्कृतियों को मानने वाले व्यक्तियों को एक साथ रहने के अवसर प्राप्त हुए और दोनों ने एक दूसरे को किसी सीमा तक प्रभावित भी किया। निरंतर सम्पर्क से समाज में खानपान, वेष-भूषा और रीति-रिवाजों में भी कुछ परिवर्तन आया परंतु यह युग सामान्यतः सामाजिक परिवर्तनों का होते हुए भी प्रगति का ना होकर सामाजिक मूल्यों की गिरावट का था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1- सल्तनत काल में समाज का सबसे सम्मानित वर्ग देशी मुसलमानों का था;सत्य/असत्य

2- मुस्लिमों में सूफी और उनके अनुयायी मांस नहीं खाते थे;सत्य/असत्य

3- मुस्लिम स्त्रियों में पर्दा प्रथा नहीं थी और शिक्षा का प्रसार था;सत्य/असत्य

8.4 आर्थिक स्थिति

आर्थिक दृष्टि से भारत एक समृद्धिशाली देश था। 14वीं सदी के अन्त में भारत के एक भाग से ही तैमूर को अतुल सम्पति प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में बड़े-बड़े नगरों और बन्दरगाहों का होना, समाज के उच्च वर्ग का शान-शौकत और विलासिता का जीवन व्यतीत करना, शानदार मकबरों, मन्दिरों, मस्जिदों, मीनारें, महलों और किलों का निर्माण होना तथा विभिन्न विदेशी यात्रियों द्वारा सोना, चॉदी, हीरे, जवाहरात और मोतियों आदि का भारत में प्रचुर मात्रा में प्रयोग बताया जाना आदि इस बात के प्रमाण है कि इस युग में भारत आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न था।

8.4.1 कृषि

भारत में प्रायः सभी स्थानों पर विभिन्न प्रकार के अन्न, दालें, फल आदि उत्पन्न किये जोते थे। अधिकांश फसलें वर्ष में दो बार और कहीं-कहीं तीन बार भी उत्पन्न की जाती थीं। इस काल में सरसुती का चावल, कन्नौज की शक्कर, मालवा का गेहूं और पान, ग्वालियर का गेहूं ,मालाबार के गरम मसाले, दौलताबाद के अंगूर और नाशपाती, दक्षिण भारत की सुपारी आदि प्रख्यात थी। बारबोसा ने बहमनी राज्य की समृद्धि का वर्णन किया है जबकि डॉमिंगो पेइस और अब्दुर्रज्जाक ने विजयनगर साम्राज्य की समृद्धि की अत्यधिक प्रशंसा की है। बारबोसा के अनुसार बंगाल में कपास, गन्ना, चावल, अदरक, आदि अत्यधिक मात्रा में होता था। दोआब का सम्पूर्ण क्षेत्र अपनी उर्वरा शक्ति के लिए प्रसिद्ध था इस प्रकार भारत के सभी हिस्सों में कृषि की स्थिति बहुत अच्छी थी।

8.4.2 उद्योग

उद्योगों की दृष्टि से भी भारत अच्छी स्थिति में था। कपड़ा उद्योग भारत का प्रमुख उद्योग था। सूती, रेशमी और उनी वस्त्रों का निर्माण बहुतायत से होता था। इसके अतिरिक्त शक्कर, कागज रत्न-उद्योग, बर्तन-निर्माण, चंदन और हाथ दॉत में दस्तकारी, आदि उद्योग फल-फूल रहे थे। व्यक्तिगत प्रयासों के अतिरिक्त सुल्तानों ने भी कारखानों का

निर्माण किया था ,जहॉ उनके और अमीरों के लिए श्रेष्ठतम वस्तुऐं निर्मित की जाती थीं। नगरों और ग्रामों में श्रम संघ बने थे जो उद्योगों की उन्नति में सहायक थे।

8.4.3 व्यापार

भारत में आन्तरिक और विदेशी व्यापार उन्नत था। दूरस्थ प्रदेशों को जोड़ने वाली सड़कें पर्याप्त मात्रा में थीं आरे भिन्न-भिन्न वस्तुओं की व्यापारिक मण्डियां विद्यमान थी। इब्नबतूता ने दिल्ली को संसार की सबसे बड़ी व्यापारिक मण्डी बताया था। दौलताबाद मोतियों के व्यापार एवं दभोल तांबे के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। दियू, गोआ, चोल, कालीकट, कोचीन, क्यूलोन पश्चिमी तट के प्रमुख बन्दरगाह थे, पूर्वी तट पर बंगाल तथा उडीसा में अनेक प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। विदेशी व्यापार ईरान, अरब, यूरोप, अफ्रीका, चीन, मलाया, अफगानिस्तान, मध्य एशिया आदि से होता था। अन्न, सूती और रेशमी वस्त्र, अफीम, नील, जस्ता मोती, चन्दन,, केसर, अदरक, मसाले निर्यात किये जाते थे जबकि घोड़े , नमक, गन्धक, सोना, गुलाब जल आदि का आयात होता था। विदेशी व्यापार में भुगतान सन्तुलन भारत के पक्ष में था।

इस प्रकार कृषि उत्पादन उद्योगों की उपस्थिति और आन्तरिक तथा विदेशी व्यापार ने भारत केा एक समृद्धशाली देश बनाया था। परंतु भारत की इस आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य लाभ शासक और व्यापारी वर्ग ने प्राप्त किया था। जनसाधारण की स्थिति शोचनीय तो नहीं परंतु बहुत अच्छी भी नहीं थी। इसी कारण सूखा और अकाल पड़ने पर लाखेां व्यक्ति मर जाते थे ओर राज्य को दान-दक्षिणा अथवा तकाबी ऋण देने की आवश्यकता पड़ जाती थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1- बारबोसा ने .....राज्य की समृद्धि का वर्णन किया है।

2- इस काल में खाद्यान्नों में सरसुती का .....और कन्नौज की .....प्रख्यात थी।

3- इब्नबतूता ने ..... को संसार की सबसे बड़ी व्यापारिक मण्डी बताया था।

4- दौलताबाद ..... के व्यापार एवं दभोल.....के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

8.5 सल्तनत का प्रशासन

सल्तनत काल में धर्म का अत्यधिक प्रभाव था और शरीयत को प्रधान माना जाता था। इस काल में उलेमा वर्ग सबसे प्रभावशाली था और सुल्तान को शरीयत के अनुसार शासन करने के लिए समय-समय पर दबाव डालता था। सुल्तान अपनी सुन्नी प्रजा को दिखाने के लिए खलीफा को नाममात्र का प्रधान मानता था। सल्तनत काल में भारत में नवीन शासन व्यवस्था की नींव डाली गयी, सल्तनत कालीन प्रशासन को निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है-

8.5.1 सुल्तान

अपने समस्त राज्य का प्रधान सुल्तान था। इस युग में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था लेकिन इल्तुतमिश के समय एक ऐसी परंपरा बनी कि सबसे पहले सुल्तान के पुत्र अथवा पुत्री को सिंहासन प्राप्त करने का अधिकार था। सुल्तान कानून बनाने , उन्हें लागू करने और न्याय करने में प्रधान था। सेना का सर्वोच्च सेनापति भी वही होता था। सभी पदाधिकारियों की नियुक्ति , उन्हें हटाने, उपाधियों का वितरण करने आदि के कार्य वही करता था। शासन व्यवस्था लागू करना, शान्ति की स्थापना और बाह्य आक्रमणों से देश की सुरक्षा करने के साथ इस्लाम धर्म का पोषण और विस्तार उसके प्रमुख कार्य थे।

8.5.2 मंत्री तथा अन्य कर्मचारी

सल्तनत काल में सुल्तान की सहायता के लिए कुछ मंत्रियों और अधिकारियों का उल्लेख भी मिलता है; यथा-

8.5.2.1 नाइब या नाइब- ए-मामलिकत

यह पद बहरामशाह के समय शुरू हुआ , इस समय शक्तिशाली सरदारों ने सुल्तान पर अंकुश लगाने के लिए इस पद को प्रारंभ किया। अत: नाइब का पद सुल्तान के पश्चात था और यह राज्य के वजीर से भी श्रेष्ठ होता था। शक्तिशाली सुल्तानों के समय या तो यह पद रखा ही नहीं गया या केवल योग्य सरदारों को केवल सम्मान देने के लिए दिया गया।

8.5.2.2 दिवाने-वजारत या वजीर

इस काल में राज्य के प्रधानमंत्री को वजीर कहा जाता था। वह मुख्यत: दिवाने-विजारत या राजस्व विभाग का प्रधान था। वह लगान, कर-व्यवस्था , दान , सैनिक व्रूय इत्यादि की देखभाल करता था। सुल्तान की अनुपस्थिति में राज्य का प्रबंध, विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति करना उसके अधिकार थेा वजीर की सहायता के लिए नाइब वजीर, मुंसरिफ-ए-मुमालिक , मुस्तौफी-ए-मुमालिक जैसे अधिकारी होते थे।

8.5.2.3 आरिज-ए-मुमालिक

यह सेना विभाग का प्रधान था लेकिन वह सेना का सेनापति नहीं था, सुल्तान समय-समय पर युद्धों के लिए अलग-अलग सेनापतियों की नियुक्ति करता था । सैनिकों की भर्ती, घोड़ों पर दाग लगवाना, सैनिकों का हुलिया रखना,समय-समय पर उनका निरीक्षण करना , उनकी रसद की व्यवस्था करना उसके मुख्य कार्य थे।

8.5.2.4 दीवान-ए-रसालत

यह विदेश संबधी मामलों का प्रधान था। विदेशी पत्र-व्यवहार के साथ ही राजदूतों के आवागमन , देखभाल इत्यादि के कार्य भी करता था।

8.5.2.5 दीवान-ए-इंशा

यह शाही पत्र-व्यवहार का प्रधान था। सुल्तान के सभी आदेशों को राज्य के विभिन्न भागों में भेजना, सरकारी डाक देखना , उनके उत्तर तैयार करना उसी के कार्य थे। उसकी सहायता के लिए अनेक दबीर(लेखक) होते थे।

सल्तनत काल में उपरोक्त चार विभाग ही मुख्य थे, इनके अलावा केन्द्र सरकार में सद्र-उस-सदूर धर्म विभाग का प्रधान था। इस्लाम के कानूनों का पालन कराना उसका मुख्य कर्तव्य था। योग्य व्यक्तियों, कस्जिदों, मकतबों, मदरसोंको आर्थिक सहायता तथा शाही खैरात का प्रबंध करना उसका मुख्य कार्य था। काजी-उल-कजात न्याय विभाग का प्रधान था और बरीए-ए-मुमालिक गुप्तचर विभाग का संगठन देखता था। इसके अलावा दिल्ली के सुल्तानों ने समय-समय पर अपनी इच्छा के अनुसार नये विभाग भी खोले थे।

8.5.3 इक्ताओं का शासन

दिल्ली सुल्तानों ने शासन की सुविधा के लिए एवं अपने सरदारों के वेतन आदि के भुगतान के लिए इक्तादारी व्यवस्था को भी अपनाया था। इक्ता का तात्पर्य प्रांत से है। इनका प्रधान मुक्ती, नाजिम, वली या नाइब सुल्तान पुकारा जाता था। मुक्ती की सहायता के लिए एक प्रांतीय वजीर , एक अरीज और काजी होते थे। 13वीं सदी के पश्चात इक्ता से छोटी इकाइयों अर्थात शिक का अस्तित्व मिलता है, जहां का मुख्य अधिकारी शिकदार होता था ।शिक पुन: परगनों में विभाजित थे जहां एक आमिल, एक मुंशरिफ, एक खजांची और दो कारकून होते थे। शासन की सबसे छोटी इकाई गांव थे जो स्वशासन और पैत्रक अधिकारियों की व्यवस्था के अंतर्गत थे।

8.6 राजस्व नीति

राजस्व नीति के अंतर्गत किसी शासन की आय-व्यय का अध्ययन शामिल होता है। यहां हम संपूर्ण सल्तनत युग की राजस्व व्यवस्था का विवरण दे रहे हैं अतः हम यहां केवल सल्तनत युग के उन सुल्तानों की नीति पर चर्चा करेंगे जिन्होंने राजस्व सुधार के क्षेत्र में कार्य किया था। इसका विवरण अग्रांकित अंतर्गत किया जा सकता है-

8.6.1 वित्त

सल्तनत-युग की वित्त-नीति सुन्नी विधिविज्ञों की हनीफी शाखा के वित्त सिद्धान्तों पर आधारित थी। भारत के प्रारम्भिक तुर्की सुल्तानों ने गजनवी सुल्तानों की यह प्रथा अपना ली थी। मुस्लिम धार्मिक कानून शरियत में राजस्व के मुख्य साधन अग्रांकित बताये गये हैं - (1) उश्र, (2) खराज, 3. खम्स, 4. जकात और 5. जजिया। इनके अतिरिक्त इस काल में आय के कई अन्य साधनों का भी उल्लेख मिलता है- जैसे खानों से होने वाली आय, भूमि से प्राप्त गड़ा हुआ धन, लावारिस इत्यादि। उश्र, भूमि कर था और मुसलमान भूमिधरों की उस भूमि पर लगाया जाता था जिसकी सिंचाई प्राकृतिक साधनों से होती थी। यह उपज के 1/10 की दर से वसूल किया जाता था। गैर मुसलमानों की भूमि पर लगाया जाने वाला कर खराज कहलाता था। इस्लामी कानून के अनुसार इसकी दर 1/10 से 1/2 तक होती थी । खम्स उस लूट के धन को कहते थे जो युद्ध में प्राप्त होता था, सिद्धान्ततः उसका 4/5 भाग सेना में बांट दिया जाता था और 1/5 सुल्तान द्वारा रखा जाता था लकिन व्यवहार में सदैव इसका विपरीत ही होता था। जकात धार्मिक कर था जो केवल मुसलमानों से प्राप्त किया जाता था। यह कर कुछ निश्चित मूल्य से अधिक की सम्पत्ति पर ही लगता था। इसकी दर 2.5

प्रतिशत थी। इस कर से होने वाली आय मुसलमानों के लाभ के लिए व्यय की जाती थी जैसे इा कर से प्राप्त धन को मस्जिदों और कब्रों की मरम्मत, धर्मस्व और धार्मिक लोगों तथा दरिद्रों को दिये जाने वाले भत्ते इत्यादि में खर्च किया जाता था।

8.6.1.1 जजिया

जजिया केवल गैर-मुसलमानों पर लगाया जाता था। कुछ विद्वानों का मानना है कि वह धार्मिक कर था और गैर-मुसलमानों से वसूल किया जाता था और इसके बदले में उन्हें अपने जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा का आश्वासन मिलता था और वे सैनिक-सेवा से मुक्त रहते थे। सुन्नी विचारधारा के अनुसार गैर-मुसलमानों को मुसलमानों के राज्य में रहने का अधिकार नहीं हैं। किन्तु कुछ अन्य मुस्लिम विद्वानों का मत है कि जजिया धर्मनिरपेक्ष कर था और गैर-मुसलमानों पर इसलिए लगाया जाता था क्योंकि वे सैनिक सेवा से मुक्त थे। मुसलमानों को कम से कम सिद्धान्ततः अनिवार्य रूप से राज्य की सैनिक सेवा करनी पड़ती थी। प्रारम्भिक मुसलमान विधिविज्ञों ने करों को दो वर्गों में विभक्त किया, धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष कर, और जजिया को उन्होंने दूसरी कोटि में रखा। प्रारम्भ में भारत के बाहर इस्लामी देशों में इस कर के लगाने का कुछ भी उद्देश्य रहा हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारत में उस समय जजिया धार्मिक कर समझा जाता था। वह गैर मुसलमानों पर इसलिए लगाया जाता था कि राज्य उनके जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करता और सैनिक सेवा से उन्हें मुक्त रखता था। दिल्ली के सुल्तान कठोरता से इस कर को वसूल करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते थे। स्त्रियॉं, बच्चे, भिखारी तथा लंगड़े जजिया से मुक्त थे। इस कर के लिए समस्त हिन्दू जनता को तीन वर्गों में विभक्त किया गया था। पहले वर्ग को 48 दिरहम, दूसरे को 24 दिरहम और तीसरे को 12 दिरहम कर चुकाना पड़ता था।

8.6.1.2 आय-कर

आयात पर भी कर लगता था, जिसकी दर व्यापारिक वस्तुओं के लिए 2.5 प्रतिशत और घोड़ों के लिए 5 प्रतिशत थी। आयात-कर की दर गैर-मुसलमानों के लिए मुसलमानों से दूनी थी। इसके अतिरिक्त मकान-कर, चरागाह-कर, पानी पर कर तथा अन्य साधारण कर भी वसूल किये जाते थे। खनिज पदार्थों तथा गढ़े धन का 1/5 राजकोष में जमा करना होता था। लावारिस लोगों की सम्पत्ति भी राज्य की हो जाती थी। आय के एक अन्य महत्वपूर्ण साधन के अंतर्गत प्रतिवर्ष सुल्तान को जनता, पदाधिकारियों तथा अमीरों से बहुत सा धन भेंट के रूप में मिलता था।

8.6.1.3 भू-राजस्व

दिल्ली सल्तनत की आय का सबसे महत्वपूर्ण साधन, भू-राजस्व या लगान था था। भूमि को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया था, यथा- 1. खालसा भूमि, 2. मुक्तियों की भूमि जो उन्हें कुछ निश्चित वर्षों अथवा जीवन भर के लिए दे दी जाती थी , 3. अधीनस्थ हिन्दू सामन्तों के राज्य की भूमि और 4. मुसलमान विद्वान तथा सन्तों को इनाम अथवा मिल्क अथवा वक्फ के रूप में दी गयी भूमि।

खालसा भूमि का प्रबन्ध सीधा केन्द्रीय सरकार द्वारा होता था किन्तु सरकार प्रत्येक किसान से सीधा नहीं, बल्कि चौधरी, मुकद्दम, खुत आदि स्थानीय राजस्व पदाधिकारियों द्वारा भूमि कर वसूल करती थी। ये पदाधिकारी किसानों से लगान वसूल करते थे और हर एक शिक में आमिल नाम का एक पदाधिकारी रहता, जो कर संग्रहित कर राजकोष में जमा करता था। राजस्व की दर उपज के आधार पर सावधानी से हिसाब लगाकर नहीं, बल्कि अुनमान से ही निश्चित की जाती थी। इक्ता में राजस्व निर्धारित तथा वूसल करने का काम मुक्ती का था। वह अपना भाग काटकर बचत को केन्द्रीय सरकार के कोष में जमा कर देता था। मुक्ती पर नियंत्रण के लिए सुल्तान प्रत्येक इक्ते में ख्वाजा नामक एक पदाधिकारी को नियुक्त करता था जिसका काम राजस्व वसूली की देखरेख करना तथा मुक्ती पर नियन्त्रण रखना था। गुप्तचरों के कारण ख्वाजा तथा मुक्ती में झगड़ा होने की सम्भावना कम रहती थी, क्योंकि वे स्थानीय पदाधिकारियों के कामों की खबरें केन्द्र सरकार को देते थे। अधीन हिन्दू राजा अपने अपने राज्यों में पूर्ण स्वायत्तता का उपभोग करते थे। उन्हें केवल सुल्तान को कर देना पड़ता था। जमींदार भी सरकार को निश्चित कर दिया करते थे और उनके अधिकार क्षेत्रों में रहने वाले किसानों को अपने जमीदारों को छोड़कर अन्य किसी अधिकारी से सम्बन्ध नहीं था। वक्फ अथवा इनाम के रूप में दी गयी भूमि राजस्व से मुक्त थी।

अलाउद्दीन खलजी पहला सुल्तान था जिसने राजस्व नीति तथा व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। उसकी नीति दो मुख्य सिद्धान्तों पर आधारित थी- 1. राज्य की आय में अधिक से अधिक वृद्धि करना और 2. लोगों को आर्थिक अभाव की दशा में रखना जिससे वे विद्रोह अथवा आज्ञा के उल्लंघन का विचार भी न कर सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने निम्नलिखित उपाय कियेः

सबसे पहले उसने मुसलमान अमीरों की तथा मिल्क, इनाम ,इद्रात और वक्फ के रूप में धर्म के नाम पर दी गयी भूमि को जब्त कर लिया। इस प्रकार की अधिकतर भूमि पर राज्यका अधिकार हो गया, किन्तु कुछ लोग पूर्ववत अपने अधिकारों का उपभोग करते रहे। मुकद्दम, खुत,चौधरी आदि राजस्व पदाधिकारी जो सभी हिन्दू थे, उनको जो विशेषाधिकार मिले हुए थे उनसे छीन लिये गये और अब उन्हें भी अन्य लोगों की भांति अपनी भूमि पर राजस्व तथा मकान और चरागाह कर देने पड़ते थे। भू-राजस्व की दर उपज का 1/2 भाग निर्धारित कर दी गयी। अलाउद्दीन ने भू-राजस्व तथा अन्य विद्यमान करों के अतिरिक्त भी किसानों पर मकान कर तथा चरागाह कर लगाये और जजिया और जकात पूर्व की भांति ही था। अलाउद्दीन ने भूमि की वास्तविक उपज जानने के लिए भूमि की नाप करने की परिपाटी प्रचलित की और पटवारियों के अभिलेखों की जांच करवायी, जिससे कि राजस्व विभाग लगान निर्धारित करने के लिए सही जानकारी प्राप्त कर सके। अलाउद्दीन ने सब प्रकार का राजस्व कठोरता से वसूल करने के लिए उसने एक विभाग का निर्माण किया और फसल की किसी प्रकार की हानि होने पर भी राजस्व में छूट देने का नियम नहीं रखा।

अलाउद्दीन की नीति अत्यधिक कठोर तथा अप्रिय थी इसलिए उसके उत्तराधिकारी उसका अनुसरण नहीं कर सके। उसके अनेक कठोर नियम त्याग दिये गये, किन्तु उसके द्वारा निश्चित की गयी लगान की दर में परिवर्तन नहीं किया गया। गियासुद्दीन तुगलक ने भू-राजस्व कर की दर किसी प्रकार से नहीं घटायी और वह पूर्ववत् उपज का 1/2 कायम रही । गियासुद्दीन तुगलक ने फसल को प्राकृतिक अथवा अन्य किन्हीं कारणों से हानि होने पर छूट देने के

सिद्धान्त को स्वीकार किया और उचित अनुपात में राजस्व की छूट दी। गियासुद्दीन तुगलक ने खुत, मुकद्दम और चौधरी लोगों को भूमि कर तथा चरागाह कर से मुक्त कर दिया। गियासुद्दीन तुगलक ने नियम बनाया कि किसी इक्ते में 1 वर्ष में 1/10 अथवा 1/11 से अधिक राजस्व में वृद्धि न की जाय। किंतु गियासुद्दीन की राजस्व नीति में दो मुख्य दोष थे। एक तो गियासुद्दीन तुगलक ने भूमि की नाप कराने की परिपाटी त्याग दी और पूर्ववत अनुमति से राजस्व निर्धारित करने की नीति को अपनाया। दूसरे, गियासुद्दीन तुगलक ने सैनिक तथा असैनिक पदाधिकारियों को जागीरें देने की प्रथा को पुनः प्रचलित कर दिया।

मुहम्मद तुगलक राजस्व शासन को सुव्यवस्थित करने का इच्छुक था। उसकी आज्ञानुसार राजस्व विभाग ने सल्तनत की आय और व्यय का विस्तृत लेखा तैयार करना आरम्भ किया, जिससे राज्य में एक सी राजस्व व्यवस्था स्थापित की जा सके और कोई गांव भूमि कर से न बच सके। किन्तु यह कार्य अधूरा ही रह गया। उसका दूसरा प्रयोग भूमि कर की दर पहले की भॉति 50 प्रतिशत ही कायम रही। रैयतों ने इस नीति के विरूद्ध घोर असन्तोष प्रकट किया किन्तु सुल्तान ने बढ़े हुए करों को वसूल करना जारी रखा। अनावृष्टि के कारण दुर्भिक्ष पड़ गया जिसकी भी उसने चिन्ता नहीं की। परिणामस्वरूप भयंकर विद्रोह उठ खड़ा हुआ, किन्तु सुल्तान ने अपने अध्यादेश को वापस नहीं लिया। बाद में उसने तकावी ऋण बांटा और सिंचाई के लिए कुएं भी खुदवाये किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। अतः दोआब का सम्पूर्ण प्रदेश बरबाद हो गया। सुल्तान का एक अन्य सुधार था, कृषि विभाग की स्थापना करना, जिसे दीवाने-कोही करते थे। इसका उद्देश्य कृषि के क्षेत्र में विस्तार करना था, किन्तु यह योजना भी निष्फल रही।

फीरोज तुगलक के सिंहासन पर बैठने के समय से दिल्ली सल्तनत की कृषि नीति का एक नया युग आरम्भ हुआ। उसने राजस्व सम्बन्धी विषयों की ओर ध्यान दिया और जनता की भौतिक अभिवृद्धि के लिए हृदय से प्रयत्न किया। उसने तकावी ऋण, माफ कर दिया, राजस्व विभाग के पदाधिकारियों के वेतन बड़ा दिये और उन शारीरिक यातनाओं को बन्द कर दिया जो सूबेदारों और राजस्व पदाधिकारियों को भुगतनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त उसने राजस्व सम्बन्धी लेखों की बड़ी सावधानी और परिश्रम से जांच करवायी और समस्त खालसा भूमि का राजस्व स्थारी रूप से निश्चित कर दिया। फीरोज तुगलक ने 24 कष्टप्रद कर हटा दिये जिनमें घृणित मकान कर, तथा चरागाह कर भी सम्मिलित थे। कुरान में बताये गये केवल पांच कर खराज, खम्स, जजिया, जकात तथा सिंचाई कर कायम रखे। फीरोज तुगलक ने खेती की सिंचाई के लिए पांच नहरों का निर्माण कराया और अनेक कुएं खुदवाये। फीरोज तुगलक ने गन्ना, तिलहन, अफीम आदि उत्तम फसलों की कृषि को प्रोत्साहन दिया। फीरोज तुगलक ने अनेक बाग लगवाये और फलों के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न किया। इन सुधारों से राज्य की आय में बहुत वृद्धि और सामान्य जनता की आर्थिक दशा में उन्नति हुई।

किन्तु फीरोज की राजस्व व्यवस्था में तीन दोष थे 1-भू-राजस्व को ठेके पर उठाने के सिद्धान्त को पुनः लागू करना, 2. भू राजस्व के रूप में वेतन देना और पदों को बेचने की आज्ञा देना तथा 3.जजिया के क्षेत्र में वृद्धि करना और कठोरता से उसे वसूल करना।

जब लोदियों के हाथों में राजशक्ति आयी तो उन्होंने अपने राज्य की समस्त भूमि महत्वपूर्ण अफगान परिवारों में बांट दी। खालसा भूमि का क्षेत्र तथा महत्व बहुत कम हो गया। सिकन्दर लोदी ने भूमि की नाप करने की परिपाटी पुनः प्रचलित करने का प्रयत्न किया, अन्यथा उसने राजस्व नियमों तथा उपनियमों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. सल्तनत-युग की वित्त-नीति शियाओं की हनीफी शाखा के वित्त सिद्धान्तों पर आधारित थी
2. मुहम्मद तुगलक की बाज़ार नियन्त्रण की नीति की अनेक अर्थशास्त्री प्रशंसा करते हैं
3. जकात धार्मिक कर था इसकी दर 5.5 प्रतिशत थी
4. आयात कर की दर व्यापारिक वस्तुओं के लिए 2.5 प्रतिशत थी
5. अलाउद्दीन ने भू-राजस्व की दर उपज का 1/2 भाग निर्धारित की
6. फीरोज तुगलक ने कुरान में बताये गये केवल पांच कर खराज, खम्स, जजिया, जकात तथा सिंचाई कर लगाये थे

8.6.2 व्यय के साधन

सल्तनत काल में व्यय की मुख्य मदें थीं, सुल्तान या शाही परिवार का व्यय, सैनिक के वेतन,भत्ते इत्यादि पर खर्च तथा असैनिक सेवाओं पर व्यय, धर्मस्व तथा दान, युद्ध और विद्रोह, खलीफा को बहुमूल्य भेंटें तथा भारत के बाहर धार्मिक स्थानों के लिए दान। इन सभी मदों में पर्याप्त धन व्यय होता था। आम किसानों तथा साधारण जनता की स्थिति शोचनीय थी। प्राकृतिक आपदाओं, बाढ़, सूखा तथा दैवी आपदाओं हैजा इत्यादि के समय हजारों की संख्या में जानमाल की हानि होती थी।

8.7 साराशं

सल्तनतकालीन इतिहास अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण था , इस काल में भारत में तुर्क शासन की स्थापना हुई और मध्य एशिया की संस्कृति के अनेक तत्वों का भारतीय संस्कृति के साथ सामना हुआ। मध्य एशिया की संस्कृति स्वयं विश्व की अनेक संस्कृतियों से प्रभावित रही थी । भारत में इस्लाम की स्थापना के उपरांत शासक वर्ग ने शासन, प्रशासन,स्थापत्य,कला ,साहित्य ,दरबारी रीतिरिवाजों इत्यादि क्षेत्रों में विभिन्न तत्वों का समावेश किया जिससे भारत में नयी सांस्कृतिक प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होने लगीं।तुर्कों ने उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त रूचि दिखाई और विदेशी संपर्कों के नये आयाम स्थापित किये गये ।इन सबके बावजूद भी यह काल भारत में युद्धों और निरंतर युद्धों के साथ-साथ आपसी मेलमिलाप का ना होकर टकराव का था। हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति एक-दूसरे को समझने का प्रयास कर रहीं थीं और सामान्य जन एक-दूसरे के श्रेष्ठ तत्वों को अपनाने का प्रयास कर रहे थे।

8.8 तकनीकी शब्दावली

- विदुषी - विद्वान स्त्री

- कुप्रथा - समाज में प्रचलित हानिकारक प्रथा
- निरामिष - शुद्ध शाकाहारी
- कारखाना- जहां वस्तुओं का निर्माण किया जाता था
- बन्दरगाह- जहाजों के ठहरने का स्थान

8.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

भाग 2.3 के प्रश्न 1 का उत्तर- असत्य

भाग 2.3 के प्रश्न 2 का उत्तर- सत्य

भाग 2.3 के प्रश्न 3 का उत्तर- असत्य

भाग 2.4 के प्रश्न 1 का उत्तर- बहमनी

भाग 2.4 के प्रश्न 2 का उत्तर- चावल , शक्कर

भाग 2.4 के प्रश्न 3 का उत्तर- दिल्ली

भाग 2.4 के प्रश्न 4 का उत्तर- मोतियों , तांबे

8.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

Ashraf ,Kunwar Mohd. : Life and Condition of the people of Hindustan (1200-1550).

Tara Chand : Influence of Islam on Indian Culture.

Havell : Indian Architecture.

Srivastava, A.L. : The Sultanate of Delhi

Majumdar,R.C. (ed.) : The Delhi Sultanate: The History and Culture people, vol.VI

Mohammad Habib and Khaliq Ahmad Nizami(ed) : The Delhi Sultanate: A Comprehensive History of India vol.V.

8.11सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Habibullah : The Foundation of Muslim Rule in India

Ashraf ,Kunwar Mohd. : Life and Condition of the people of Hindustan (1200-1550).

Tara Chand : Influence of Islam on Indian Culture.

Grierson ,Sir George : Modern Vernacular Literature of Hindustan.

Faruqhhas : Outline of the Religious Literature of India

Havell : Indian Architecture.

Haig ,Woolseley : Cambridge History of India, vol.III

Elliot & Dowson: History of India etc. vol. II &III

Srivastava, A.L. : The Sultanate of Delhi

Majumdar,R.C. (ed.) : The Delhi Sultanate: The History and Culture people, vol.VI

Mohammad Habib and Khaliq Ahmad Nizami(ed) : The Delhi Sultanate: A Comprehensive History of India vol.V.

Ghoshal, V.N. : Studies in Indian History and Culture.

8.12 निबंधात्मक प्रश्न

1- सल्तनतकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर एक निबंध लिखिए।

2- सल्तनतकालीन आर्थिक जीवन का परिचय दीजिए।

इकाई नौ – भक्ति आंदोलन एवं इसका प्रभाव

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 भक्ति का अर्थ, स्वरुप, साधन और विभिन्न रूप

9.4 भक्ति आंदोलन का प्रारंभिक उदय

9.4.1 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि

9.4.2 उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन

9.5 भक्ति आंदोलन के समय तत्कालीन परिस्थितियां

9.6 भक्ति आंदोलन के उदय के प्रमुख कारण

9.7 भक्ति आंदोलन का प्रसार और कुछ प्रमुख संतों का परिचय

9.8 भक्ति आंदोलन का महत्त्व

9.9 भक्ति आंदोलन की सीमा

9.10 सारांश

9.11 तकनीकी शब्दावली

9.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप भक्ति आंदोलन तथा भारतीय समाज में भक्ति की पद्धति से साक्षात्कार कर सकेंगे। इस अध्याय के वाचन के बाद आप समझ पाएंगे की भक्ति आंदोलन केवल एक साहित्यिक आंदोलन बस भर नहीं था और न ही यह आंदोलन केवल हिंदी भाषा तक सीमित था, वरन यह उससे कहीं आगे जाकर सम्पूर्ण भारतीयता को अपने आप में समाहित करने वाला एक जनान्दोलन था जो कि अपने भीतर धार्मिक, सामाजिक तथा सम्पूर्ण भारत के सांस्कृतिक स्वरुप को समेटे हुआ था। इस आंदोलन के माध्यम से जहाँ एक ओर सम्पूर्ण भारत में भक्ति भावना का प्रसार हुआ वहीं इसकी एक अन्य विशेषता यह भी है कि इस आंदोलन में समाज के सभी वर्गों, वर्णों तथा अन्य धर्मावलंबियों ने अपना योगदान दिया था। भारतीय इतिहास के दृष्टिकोण से भक्ति आंदोलन का यह काल आठवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक अस्तित्व में रहा जिस दौरान विभिन्न भाषाओं में अनेक विद्वानों ने विविध साहित्यों

की रचना करी। वस्तुतः भक्ति आंदोलन का एक मूल उद्देश्य- सभी को समान अधिकार और सम्मान प्रदान करना भी रहा है।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और धार्मिक आंदोलन बनकर उभरा जिसने भारतीय समाज के धार्मिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रयास किया। इस आंदोलन को समझने के लिए उस समय की सामाजिक, धार्मिक, और आर्थिक परिस्थितियों को समझना अति आवश्यक है। मध्यकालीन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा के प्रभाव के कारण विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच भेदभाव एक प्रमुख समस्या थी। इस भेदभाव को दूर करने और समाज में एकता और सामर्थ्य को बढ़ावा देने के लिए भक्ति आंदोलन उत्पन्न हुआ। इस आंदोलन के दौरान कई महान संतों और महापुरुषों ने भक्ति के माध्यम से मानव जीवन के वास्तविक अर्थ को समझाने तथा मनुष्य को अपनी अंतरात्मा से वास्तविक एकाकार करवाने का प्रयास किया। अलग-अलग प्रवर्तकों द्वारा भिन्न-भिन्न माध्यमों से (संगीत, कथा, और कवि सम्मेलनों) भक्ति मार्ग का प्रचार किया गया। भक्ति आंदोलन में शामिल कुछ प्रमुख संतों के नाम इस प्रकार हैं- रामानुजाचार्य, कबीर दास, गुरु नानक देव, मीराबाई, तुलसीदास, संत एकनाथ, संत तुकाराम और संत गोरखनाथ इत्यादि।

भक्ति आंदोलन के माध्यम से ही लोगों को धर्म की गहराई में जाने और उसे अपने जीवन में उतारने का प्रोत्साहन मिला। अब भक्ति के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन की शुद्धि के लिए प्रयास करते हुए प्रेम और समर्पण की भावना पर आस्था रखते हुए सामाजिक भेदभावों को दूर करने का प्रयास भी करने लगे। साधकों ने अपनी भक्ति और समर्पण के माध्यम से विविध सामाजिक विभाजनों को कम करने हेतु विशेष प्रयास किये। इस प्रकार, भक्ति आंदोलन ने सामाजिक और धार्मिक स्थितियों में सुधार लाने का मार्ग प्रशस्त किया और समाज में एकता और सामर्थ्य को प्रोत्साहित किया।

9. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे-

- वह कौन सी परिस्थितियां थी जिसने भक्ति आंदोलन के उदय का मार्ग प्रशस्त किया।
- भक्ति आंदोलन के दौरान देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक उपलब्धियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के विभिन्न कारणों से तादात्म्य स्थापित कर सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन की सीमाओं का अवलोकन कर सकेंगे।

9.3 भक्ति का अर्थ, स्वरुप, साधन और विभिन्न रूप

भक्ति का मूल अंकुरण हमें वैदिककालीन समाज से से ही दिखाई देना शुरू हो जाता है हालाँकि वेदों में भक्ति का वर्णन नहीं किया गया है परन्तु हम भक्ति की कई विशेषताएँ वेदों में भी खोज सकते हैं। भक्ति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'भज' धातु से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ 'सेवा करने' से सम्बंधित है, हालाँकि यह सिर्फ सेवा करने तक न सीमित होकर ईश्वर की आराधना, उसके प्रति लगन और अगाध प्रेम के माध्यम से उसे प्राप्त करने का एक सरल मार्ग है। भक्ति की इन्हीं विशेषताओं का भाव हम ऋग्वेद के निम्नलिखित श्लोक में भी पाते हैं-

मित्रस्याह चक्षुषा रार्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।।

अर्थात् 'मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं और सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखने वाले हों।'

हमारे प्रसिद्ध महाकाव्यों रामायण और महाभारत (भगवद्गीता) में भक्ति को ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग के साथ ही मोक्ष का एक साधन बताया गया है। नारद द्वारा रचित 'भक्ति सूत्र' में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ईश्वर के प्रति भक्त का नि:स्वार्थ प्रेम ही भक्ति है। वहीं शांडिल्य अपने भक्ति सूत्र में लिखते हैं 'सा पुनरक्तिरीश्वरे' अर्थात ईश्वर के प्रति परम अनुरक्ति ही भक्ति है। हिन्दी के प्रकांड विद्वान श्री आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लौकिक जीवन में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "प्रेम और श्रद्धा का योग ही भक्ति है' अर्थात "जब पूजा भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आंनद का अनुभव होने लगे, जब उससे संबंध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति-रस का संचार समझना चाहिए।" (चिंतामणि, भाग 1, पृष्ठ-26)

भक्ति जिसे ईश्वर की आराधना का सबसे सरलतम रूप भी माना जाता है; को कलियुग में ईश्वर प्राप्ति का सबसे आसान साधन माना गया है। भक्ति सूत्र में भक्ति के लिए कहा गया है कि यह कामनारहित होनी चाहिए अर्थात भक्ति निरोध स्वरूपाकार होती है। निरोध स्वरूपाकार से आशय है कि भक्ति में भक्त द्वारा जो भी कर्म किये जाते हैं वे सभी कर्म पूर्णतः ईश्वर को समर्पित होने चाहिए अर्थात भक्त के द्वारा किये गए शास्त्रीय विधान और लौकिक कर्मों का कोई महत्त्व नहीं है। इसीलिए भक्ति सूत्र में कहा गया है कि 'वह प्रेमरूपा भक्ति; कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठतर है क्योंकि वह फलरूपा है दूसरे शब्दों में कहा जाए तो उसका कोई फल नहीं है बल्कि वह स्वयं ही फल है। भक्ति (प्रेम) का स्वरूप अकथ्य है अर्थात वह गूंगे के स्वाद की तरह है, जिसका वह अनुभव तो कर सकता है पर वर्णन नहीं। अर्थात भक्ति में प्रेम गुणरहित, कामना रहित, विच्छेद रहित है और वह दिन-प्रतिदिन, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है। भक्ति के स्वरुप पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल इसकी व्याख्या लौकिक जगत के सन्दर्भ में करते हुए बताते हैं कि भक्ति की भावना किसी सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी जाग्रत हो सकती है बशर्ते भक्त के हृदय में उस व्यक्ति के प्रति पूज्य और प्रेम दोनों भाव अनिवार्यतः होने चाहिए। आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति का केंद्रबिंदु मानव का हृदय है, जहाँ श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसकी उत्पत्ति है। भक्ति के स्वरुप की चर्चा हमें पुराणों से भी प्राप्त होती है इन पुराणों के प्रमुख देवता विष्णु हैं

तथा इनमें अवतारवाद तथा उनकी लीलाओं का वर्णन मिलता है और आगे चलकर यही अवतारवाद और लीलागान भक्ति साहित्य का एक अभिन्न अंग बन जाता है।

भगवत पुराण के माध्यम से हमें भक्ति के नौ साधनों का ज्ञान प्राप्त होता है जिनके माध्यम से भक्त अपनी भक्ति द्वारा ईश्वर से एकाकार कर सकता है। यह साधन निम्नवत हैं- (1) श्रवण (2) कीर्तन (3) स्मरण (4) पादसेवन (ईश्वर की चरण वंदना) (5) अर्चना (6) वंदना (7) दास्य (स्वयं को ईश्वर का सेवक समझना जैसे तुलसीदास) (8) सख्य (स्वयं को ईश्वर का मित्र समझना जैसे सूरदास का काव्य) तथा (9) आत्मनिवेदन या शरणागति।

ईश्वर की आरधना के विभिन्न तरीके सदियों से चले आ रहे हैं और भक्तिकाल में विशेषकर अनन्य भक्तों तथा कवियों ने ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए, अपने आप को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया। मुख्यतः ये सम्बन्ध निम्न पांच रूपों/भावों में अभिव्यक्त हुए हैं- (1) सख्य भाव (2) दास्य भाव (3) वात्सल्य भाव (4) माधुर्य भाव (निर्गुण भक्ति शाखा में यह भाव 'दाम्पत्य भाव' के रूप में दृष्टिगत होता है। उदाहरण के लिए मीरा कृष्ण को 'पति' तथा कबीर दास राम को 'बहुरिया' संबोधित करते हैं।) एवं (5) शांत भाव।

9.4 भक्ति आंदोलन का प्रारंभिक उदय

अतीत में ६ठवीं शताब्दी ई. पू. में सामाजिक दुरव्यवस्थाओं के ताने-बाने के विरोध में बौद्ध और जैन धर्म जैसे धर्मों का उदय हुआ था जिन्होंने सामान्य जनमानस की भाषा में अपने उपदेशों को देने के साथ ही जाति की दीवारों पर कटु प्रहार किया था। इसके बाद से भारतीय इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना भक्ति आंदोलन का सूत्रपात होना ही रही है। भक्तिकाव्य के प्रधान अध्येता डॉ. लक्ष्मीनारायण वर्मा के अनुसार 'इसका महत्व इसलिए ही नहीं है कि यह बहुआयामी, बहुस्तरीय, देशव्यापी तथा बहुप्रभावी आंदोलन था, वरन् इसलिए भी कि इसका काव्य संस्कृति व साहित्य के पराबलंबन के साथ-साथ समाज के भौतिक विकास और साहित्य के परावलंबन का भी साक्ष्य प्रस्तुत करता है।' (भक्ति काव्य के सामाजिक आयाम, पृ० 22)

दार्शनिक मत	प्रणेता
अद्वैतवाद	शंकराचार्य
विशिष्टाद्वैतवाद	रामानुज
द्वैताद्वैतवाद	निम्बार्क
द्वैतवाद	माध्वाचार्य
शुद्धाद्वैतवाद	वल्लभाचार्य

भक्ति आंदोलन के शुरुआती उदय ने मध्यकालीन भारत के धार्मिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया। 7वीं से 8वीं शताब्दी ईस्वी के आसपास उभरा भक्ति आंदोलन एक सामाजिक-धार्मिक घटना थी जिसने रूढ़िवादी हिंदू धर्म के जटिल अनुष्ठानों और पदानुक्रमित संरचनाओं को दरकिनार करते हुए आध्यात्मिक प्राप्ति के मार्ग के रूप में एक चुने हुए देवता के प्रति व्यक्तिगत भक्ति पर जोर दिया। मध्ययुगीन भारत में महत्वपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधि के दौरान भक्ति आंदोलन ने गति पकड़ी।

9.4.1 दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि

दक्षिण भारत के शैव (नयनार, कुल संख्या 63) संतों और वैष्णव (अलवार, कुल संख्या 12) संतों ने 7वीं और 10वीं शताब्दी के बीच की अवधि में जाति और लिंग के भेद के बिना समाज के विभिन्न वर्गों में भक्ति की अवधारणा का प्रसार किया। इनमें से कुछ संत निचली जातियों से थे और कुछ महिला संत भी शामिल थी। संत कवियों ने गहन भावनात्मक तरीके से भक्ति का प्रचार किया और धार्मिक समतावाद को बढ़ावा देने की कोशिश की। उन्होंने कर्मकांडों को नज़रअंदाज़ किया और नाचते-गाते हुए भक्ति का प्रचार प्रसार करते हुए कई बार इस क्षेत्र का भ्रमण किया। अलवार और नयनार संतों ने भक्ति गीतों का प्रचार करने और उनकी रचना करने के लिए संस्कृत के बजाय तमिल भाषा का उपयोग किया है। इस प्रकार दक्षिण भारत में आंदोलन को एक लोकप्रिय आधार मिल सका। दक्षिण भारतीय भक्ति संत जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के प्रखर आलोचक थे, जिन्हें उस अवधि के दौरान दक्षिण भारतीय राजाओं के दरबार में विशेषाधिकार प्राप्त था। समय के साथ साथ जैन और बौद्ध धर्म के भीतर भी रुढिवादी तत्त्व प्रबल हो चुके थे जिस कारण इन धर्मों के भी अनुयायियों ने भक्ति मार्ग का अनुसरण किया। इन संत कवियों ने बिना किसी जाति और लिंग के भेदभाव के बिना भक्ति को सभी के लिए सुलभ बनाकर रूढ़िवादी ब्राह्मणों के वर्चस्व का विरोध किया।

लेकिन दक्षिण भारतीय भक्ति आंदोलन में कुछ कमियाँ भी थी। इसने कभी भी जानबूझकर सामाजिक स्तर पर ब्राह्मणवाद या वर्ण और जाति व्यवस्था का विरोध प्रकट नहीं किया। यह परंपरा जाति व्यवस्था के साथ एकीकृत थी और निचली जातियाँ असंख्य सामाजिक अक्षमताओं से पीड़ित रहीं। भक्ति को पूजा की श्रेष्ठ पद्धति के रूप में अत्यधिक महत्व दिए जाने के बावजूद मूर्ति पूजा, वैदिक मंत्रों का पाठ और पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा जैसे ब्राह्मणवादी अनुष्ठानों का उन्मूलन नहीं किया गया। जैन और बौद्ध इसके मुख्य लक्ष्य थे, ब्राह्मण नहीं। शायद यही कारण था कि ब्राह्मण वर्चस्व वाले मंदिरों ने दक्षिण भारतीय भक्ति आंदोलन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जाति व्यवस्था की वैचारिक और सामाजिक नींव को दक्षिण भारतीय संत कवियों ने चुनौती नहीं दी। नतीजतन, दक्षिण के भक्ति आंदोलन ने लंबे समय में उस पदानुक्रमिक व्यवस्था को कमजोर करने के बजाय मजबूत किया। अंततः 10वीं शताब्दी में जब यह आंदोलन अपने चरम पर पहुंच गया, तो इसे धीरे-धीरे पारंपरिक ब्राह्मणवादी धर्म में शामिल कर लिया गया। इन बाधाओं के बावजूद, दक्षिण भारतीय भक्ति आंदोलन अपने उत्कर्ष काल में धार्मिक समानता के मुद्दे को आगे बढ़ाने में सफल रहा और इसके परिणामस्वरूप, ब्राह्मणों को निम्न जाति के लोगों को उपदेश देने, पूजा पद्धति के रूप में भक्ति तक पहुंच और यहां तक कि वेदों तक पहुंच का अधिकार स्वीकार करना पड़ा।

9.4.2 उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन 7वीं शताब्दी ई. के आसपास उभरा और मध्यकाल के दौरान अपने चरम पर पहुंच गया। दक्षिण भारत से भक्ति परम्परा को उत्तर भारत में लाने का श्रेय रामानंद को दिया जाता है। यहाँ भक्ति की विशेषता एक व्यक्तिगत देवता के प्रति गहन भक्ति (भक्ति) के विचार में निहित थी, और इस आंदोलन के दौरान भक्ति

संतों ने जाति, पंथ और लिंग की बाधाओं को पार कर ईश्वर के साथ सीधे संबंध निर्मित करने पर जोर दिया। रामानन्द, कबीर, गुरु नानक, मीराबाई और सूरदास जैसी प्रमुख हस्तियों ने अपनी कविता और शिक्षाओं के माध्यम से प्रेम, विनम्रता और समानता का संदेश दिया। उन्होंने समाज की कठोर पदानुक्रमिक संरचना को चुनौती दी और आध्यात्मिकता के लिए अधिक समतावादी दृष्टिकोण को अपनाने का मार्ग दिखलाया। सामंती व्यवस्था के पतन, सूफीवाद के प्रभाव और रूढ़िवादी ब्राह्मणवाद को चुनौती जैसे सामाजिक-राजनीतिक कारकों के कारण भी इस आंदोलन को गति मिली। इसने समाज के उत्पीड़ित और हाशिए पर खड़े वर्गों को सांत्वना प्रदान की, उन्हें अपनेपन और आध्यात्मिक मुक्ति की भावना प्रदान की। भक्ति आंदोलन ने न केवल हिंदू धर्म को पुनर्जीवित किया, बल्कि मध्यकालीन भारत में सिख धर्म और भक्ति-सूफी संश्लेषण जैसे अन्य धर्मों को भी प्रभावित किया। इसकी स्थायी विरासत धार्मिक अनुभव के प्रति अधिक समावेशी और व्यक्तिगत दृष्टिकोण को बढ़ावा देने तथा विविधता के बीच एकता को बढ़ावा देने में निहित है। भक्ति आंदोलन के शुरुआती उदय ने भारतीय धार्मिक विचार और व्यवहार में बाद के विकास की नींव रखी। इसने मौजूदा मानदंडों को चुनौती दी, सामाजिक समावेशिता को बढ़ावा दिया और भक्ति साहित्य और सांस्कृतिक संश्लेषण की एक जीवंत परंपरा को बढ़ावा दिया जो आज भी भारतीय समाज को प्रभावित कर रहा है।

9.5 भक्ति आंदोलन के समय तत्कालीन परिस्थितियां

यहाँ हम उन सभी परिस्थितियों का अवलोकन करेंगे जिसने इस अभूतपूर्व सांस्कृतिक आंदोलन को जन्म दिया। हम यहाँ पूरे भक्ति आंदोलन काल के दौरान घटी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे।

आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारत की उत्तरी सीमा पर अरबों का आक्रमण हुआ और सिंध प्रांत पर उनका आधिपत्य हो चुका था इसी के साथ भारतीय भूमि पर एक नये धर्म को मानने वाले लोगों (मुसलमानों) का आगमन हुआ। इसके पश्चात से ही तुर्क मूल के मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा भारतीय भूमि पर बारम्बार आक्रमण किये गए जिसमें महमूद गजनवी का नाम उल्लेखनीय है। महमूद गजनवी के पश्चात मुहम्मद गोरी ने पहले पंजाब पर और फिर उसके बाद दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान से द्वन्द किया। उसकी मृत्यु के बाद उसके गुलाम कुतुबुदीन ऐबक ने दिल्ली पर अपनी राजसत्ता कायम कर गुलाम वंश (1206-1290) की स्थापना करी। गुलाम वंश के पश्चात दिल्ली के सिंहासन पर खिलजियों (1290-1320) की सत्ता कायम हुई, जिसमें अलाउदीन खिलजी नामक शासक विलक्षण प्रतिभा का धनी था। उसने अपना शासन भारत के दक्षिणे हिस्से तक विस्तारित किया और यह घोषित किया कि – राज व्यवस्था का प्रबंध और उसका उत्तरदायित्व राजा पर है न कि उलेमाओं (मुल्लाओं) पर। इस प्रकार भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य की प्रवृत्ति दिखाने वाला वह पहला मुस्लिम शासक बना। इसके साथ ही उसने सैन्य व्यवस्था और आर्थिक सुधारों पर भी विशेष ध्यान दिया। (जिसका विस्तृत अध्ययन आप आगे की कक्षाओं में कर सकेंगे)। खिलजियों के बाद तुगलक वंश अस्तित्व में आया और इस वंश का महानतम शासक था मुहम्मद बिन तुगलक जो कि फारसी भाषा के जानकार होने

के साथ साथ दर्शन, साहित्य और औषधि शास्त्र में भी गहन रूचि रखता था। इसके बाद लोदी वंश अस्तित्व में आया और तब तक अस्तित्व में रहा जब तक कि १५२६ में पानीपत के युद्ध में बाबर ने दिल्ली को जीत नहीं लिया।

तुर्क इस्लामिक सत्ता की स्थापना के कारण हिंदू समुदाय राजसत्ता से विलग हो गया और अलगाव का अनुभव करने लगा था और इस दौरान उत्तर भारत में हिंदू धर्म को अधिक राजकीय संरक्षण उपलब्ध नहीं हो पाया, जिस कारण हिंदू धर्म के अनुयायी भक्ति धारा की ओर उन्मुख हुए। इसी के परिणाम स्वरुप हम यह भी देखते हैं कि मुगलों के आगमन से पूर्व ही क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ, जहाँ क्षेत्रीय भक्ति संप्रदायों ओर मतों को संरक्षण प्राप्त हुआ साथ ही उन्होंने इस संरक्षण के साथ एक प्रभावशाली स्वरुप ग्रहण किया जिसने तत्कालीन समाज को भक्ति की ओर आकर्षित किया।

प्रारंभ में जब मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया तो उनकी छवि एक विदेशी आक्रांता की ही थी क्योंकि उनमें से अधिकाँश शासकों ने हिंदू मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया, उन पर अपने कहर का जुल्म ढाया। लेकिन आगे चलकर जब उन्होंने भारत में अपने शासन को स्थापित कर लिया तो शनैः शनैः उनके शासन में भी भारतीय तत्व शामिल होने लगे। सल्तनत काल के आरम्भ में ही कई हिंदुओं ने मुसलमान धर्म को अपना लिया था और धीरे-धीरे यह नया मुस्लिम वर्ग तथा बाद में अधिकाँश हिंदू वर्ग के लोग भी मुस्लिम शासन की महत्वपूर्ण धुरी बनने लगे। इस कारण हम देखते हैं कि शासकों की इन नीतियों के चलते हिंदू और मुसलमान थोड़ा पास-पास आ गये। दूसरी तरफ हम देखें तो भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही रहस्यवादी सूफी संतों का आगमन भी हो चुका था इन्होंन गरीब हिंदू और मुस्लिम जनता के बीच-सामंजस्य स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

समय के साथ साथ हिंदू और मुस्लिमों के एक साथ रहने की वजह से इन दोनों समुदायों के मध्य एकता के कई सूत्र भी विकसित हुए और दोनों धर्मों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। उदाहरण के तौर पर भारतीय मुसलमानों ने जाति प्रथा को अपना लिया था, उन्होंने व्यवहार में अपने धार्मिक विश्वासों में भी ज्यादा बदलाव नहीं किया, वे उसी प्रकार देवताओं की पूजा करते रहे जैसे पहले किया करते थे, हालाँकि वह बात अलग है कि इस्लाम में मूर्ती पूजा के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। नव-धर्मांतरित भारतीय मुसलमानों ने योग के भी कुछ पक्षों को आत्मसात कर लिया था और वे पूर्व की ही भाति हिंदू उत्सवों में भाग लेते रहे। हिंदुओं को मुस्लिम भ्रातृत्व की भावना और सूफी संतों की जीवनप्रणाली तथा उनका ईश्वर के प्रति अनुराग ने भी अत्यधिक प्रभावित किया। हिंदू और मुस्लिम धार्मिक विचारों में सौहार्द स्थापना की इस प्रक्रिया का प्रभाव भक्ति आंदोलन पर भी पड़ा। सामंती समाज के उत्पीड़ित वर्गों विशेषकर नगर में छोटे व्यापारियों, दस्तकारों आदि के इस आंदोलन ने सामंती शासन के प्रति असंतोष और विरोध को एक धार्मिक तथा रहस्यात्मक मार्ग प्रदान करने का कार्य किया। रूढ़िवादी हिंदुओं (जो स्वयं को धर्म का संरक्षक मानते थे) और कट्टर इस्लाम के अनुयायियों के विपरीत धार्मिक असहिष्णुता और वितंडावाद के स्थान पर भक्ति मार्ग के प्रतिपादकों ने केवल एक ईश्वर के विचार का प्रचार किया, जिसकी भक्ति किसी भी धार्मिक सिद्धांत से अधिक महत्वपूर्ण थी और जो किसी भी धर्म अथवा जाति के हर आदमी की पहुंच के भीतर था। भक्ति आंदोलन ने अपने आरंभिक दौर में हिंदू-मुस्लिम सौहार्द पर बल दिया और वर्ण व्यवस्था तथा जाति प्रथा पर प्रहार किया। यद्यपि स्वयं

जनता के स्तर पर हिंदुओं और मुसलमानों में भाईचारा मौजूद था परंतु मुस्लिम शासकों ने हिंदुओं कीं आरंभ में उपेक्षा की। उन्हें जजिया कर देने के लिए विवश किया गया। शेरशाह सूरी और अकबर के दौर में ही हिंदुओं के प्रति समानता का व्यवहार हर सतह पर व्यक्त हुआ।

भक्ति आंदोलन के इस युग में साहित्य और कला का भी अद्भुत विकास देखने को मिलता है। साहित्य के विकास में राजकीय संरक्षण और सामान्य जनमानस दोनों की सहभागिता देखने को मिलती। मुस्लिम शासकों ने भी साहित्य के विकास में गहरी रुचि दिखाई। आरंभिक मुस्लिम शासकों में से एक मुहम्मद गोरी के दरबार में केशव राय नामक हिंदी कवि था। उससे पहले भी मुहम्मद गजनवी के दरबार में बहुत से भारतीय कवि थे। आगे चलकर खिलजी और तुगलक काल में हमें अमीर खुसरो जैसे बहुमुखी प्रतिभा वाले लेखक देखने को मिलते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक स्वयं दर्शन और विज्ञान संबंधी वाद-विवाद में रूचि रखता साथ ही इन्हें प्रोत्साहित किया करता था। उसके उत्तराधिकारी फीरोज शाह तुगलक के समय में भारतीय दर्शन, ज्योतिष विद्या तथा अन्य विषयों से संबंधित ग्रंथों का फारसी में अनुवाद करवाया गया। सिकंदर लोदी के समय में आयुर्वेदिक ग्रंथों का फारसी में अनुवाद हुआ। अमीर खुसरो जो कि फारसी के महान विद्वान और संगीतज्ञ थे, ने खड़ी बोली और ब्रजभाषा में भी पहेलियों और मुकरियों की रचना की। इसके अलावा अन्य क्षेत्रीय शासकों ने भी अपने अपने क्षेत्रों में साहित्यकारों को पराश्रय दिया उदाहरण के तौर पर बंगाल के मुस्लिम शासकों ने बंगला भाषा के साहित्य के प्रोत्साहन में गहरी रुचि दिखाई। बंगाल के प्रसिद्ध कवि कृत्तिवास को बंगाल के सुलतानों का आश्रय प्राप्त था। हिंदू राजाओं ने भी कई महत्वपूर्ण कवियों को अपने दरबार में संरक्षण प्रदान किया। 'पृथ्वीराज रासो' के रचनाकार चंदबरदाई, पृथ्वीराज चौहान के राजदरबार की शोभा थे। हम्मीर रासो और बीसलदेव रासो जैसे अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना भी इसी समय हुई थी। दक्षिण भारत में विजय नगर के राजा कृष्ण देवराय के काल को तेलुगु साहित्य के स्वर्ण युग की संज्ञा प्रदान की जाती है। इसी समय में एक नयी भाषा, उर्दू भी फली-फूली जो आगे चलकर एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक भाषा बनकर उभरी।

9.6 भक्ति आंदोलन के उदय के प्रमुख कारण

यद्यपि मोक्ष प्राप्ति के एक मार्ग के रूप में भक्ति का उल्लेख प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रन्थों में विद्यमान था, परन्तु भक्ति पर सर्वाधिक बल मध्ययुग में ही क्यों दिया गया ? ईश्वर प्राप्ति के इस मार्ग का प्रचार-प्रसार मध्ययुग में ही क्यों हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर तक पहुँचने के लिए मध्ययुग में भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति अथवा उदय एवं प्रचार के लिए विद्वानों ने निम्नलिखित कारण उत्तरदायी बताये हैं:-

- **हिन्दू धर्म का अत्यधिक जटिल हो जाना तथा कर्मकाण्डों की अधिकता:-** जैसा की पूर्व में भी बताया जा चुका है भगवतगीता के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के साधनों में ज्ञान, कर्म तथा भक्ति मार्ग तीन प्रमुख साधन हैं, लेकिन मोक्ष प्राप्ति के अन्य दो मार्गों अर्थात कर्म मार्ग एवं ज्ञानमार्ग की जटिलता के कारण भक्ति मार्ग अधिक लोकप्रिय हुआ। मोक्ष प्राप्ति का कर्म मार्ग अपने अत्यधिक कर्मकांडों के कारण और भी जटिल हो गया था साथ ही उसमें अनेक आडम्बर प्रवेश कर चुके थे। विशाल यज्ञों का आयोजन और लम्बे अनुष्ठानों को

सम्पन्न करना, असंख्य देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की विविध औपचरिकताओं का निर्वाह प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था जिस कारण अब यह मार्ग सामान्य जनमानस के लिए अत्यधिक दुरूह बन पड़ा था। इसी प्रकार ज्ञानमार्ग की दार्शिनिकता और बौद्धिकता भी जनसाधारण की समझ से काफी दूर थी। द्वैतवाद और अद्वैतवाद की सूक्ष्मता और जटिलता, दीर्घकालिक चिन्तन, समाधि और तप इत्यादि साधारण और गृहस्थ व्यक्ति के लिए असंभव हो चुके थे। अतः मोक्ष प्राप्ति के उक्त दोनों मार्गों के विकल्प के रूप में जनसाधारण को भक्ति-मार्ग अधिक सीधा, सरल, सहज एवं सम्भव प्रतीत हुआ। इस मार्ग के अनुसरण के लिए न तो किसी विशाल यज्ञ की आवश्यकता थी और न ही ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी मध्यस्थ अथवा पुरोहित की। इस मार्ग के अनुसरण के लिए साधक को अपने मन के मैल के अतिरिक्त किसी भी वस्तु के दान करने की आवश्यकता नहीं थी। इस मार्ग के भीतर कोई भी व्यक्ति केवल सच्चे मन से ईश्वर का मनन कर उसे प्राप्त कर सकता था। इस मार्ग पर चलकर ईश्वर प्राप्त करने के लिए न किसी मन्दिर की आवश्यकता थी और न ही उच्च वर्ण में जन्म लेना आवश्यक था। निराकार ब्रहम्म के उपासकों ने तो मंदिरों और मूर्तियों को भी व्यर्थ बताया और परमात्मा को अपने हृदय के भीतर खोजने पर अधिक बल दिया।

मध्ययुग तक आते-आते पौराणिक हिन्दू धर्म का स्वरुप अत्यधिक विकृत हो गया था। ब्रहम्मणवाद, बहुदेवतावाद, वर्णव्यवस्था, जाति प्रथा की कठोरता आदि के बन्धनों ने समाज के एक बड़े भाग को न केवल ईश्वर से दूर कर दिया था, बल्कि उसे दलित भी बना दिया था। अतः वह मोक्ष प्राप्ति के कर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग से उब चुका था, हताश और निराश हो चुका था। अतः जब उसके सम्मुख ईश्वर प्राप्ति का सीधा और सरल मार्ग भक्तिमार्ग रखा गया, तो उसने न केवल ईश्वर प्राप्ति के उस सहज मार्ग को अपनाया, बल्कि उसका प्रचार भी किया।

❖ **इस्लाम धर्म का प्रभाव:-** भक्ति आन्दोलन को इस्लाम के कतिपय सिद्धान्तों से अत्यधिक बल और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इस्लाम के एवेश्वश्वाद, जातिविहीन समाजिक संगठन भाई-बन्धुत्व की भावना, मानव की समानता, आडम्बरहीन उपासना आदि ने हिन्दू धर्म सुधारकों को प्रोत्साहित किया। अतः उन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित उन बुराइयों को दूर करने के लिए प्रयास किया, जो हिन्दू धर्म को दुर्बल बना रही थीं और जिनके कारण अनेक दलित हिन्दू इस्लाम को गले लगा रहे थे। इन धर्म सुधारकों ने इस्लाम के एकेश्वरवाद से प्रेरणा लेकर केवल एक ही ईश्वर की उपासना पर बल दिया और बहुदेवतावाद का विरोध किया उन्होंने ईश्वर प्राप्ति के लिए सीधे और सरल मार्ग का प्रचार किया तथा इस्लामी रहस्यवादियों की भाति ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी भी मध्यस्थ की आवश्यकता को भी नकार दिया। उन्होंने यह प्रचार किया कि कोई भी व्यक्ति केवल सच्चे मन एवं पवित्र कर्म करके ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

मध्ययुगीन कतिपय शासकों ने उन मंदिरों को लूटा, जो शताब्दियों से धन एकत्र कर रहे थे। उन मंदिरों की लूट एवं मूर्तियों के नष्ट हो जाने पर अनेक हिन्दुओं के मन में यह आशंका उत्पन्न हो गई कि क्या वास्तव में यह मंदिर ईश्वर का घर हैं, यदि यह मंदिर वास्तव में ईश्वर का घर थे, तो ईश्वर ने उन लोगों को दंडित

क्यों नहीं किया, जिन्होंने उसके घर को लूटा और नष्ट कर दिया? इसी प्रकार उन मूर्तियों के प्रति भी उनके मन में संदेह उत्पन्न हो गया, जिन्हें उन आक्रमणकारियों ने तोड़ दिया था । उनका प्रश्न था कि यदि यह मूर्तियाँ ईश्वर का रूप थी, तो ईश्वर ने उन लोगों को दंडित क्यों नहीं किया, जिन्होंने उन मूर्तियों को तोड़ा उनमें से अधिकांश को यह विश्वास हो गया कि वह मूर्तियाँ ईश्वर का रूप नहीं है, क्योंकि ईश्वर को न तोड़ा जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता था। हिन्दू समाज के एक बहुत बड़े भाग ने उन मंदिरों एवं मूर्तियों को व्यर्थ घोषित कर दिया, जिनके नाम पर शताब्दियों से पुरोहित वर्ग उन लोगों का शोषण करता आ रहा था। फलस्वरूप उन्होंने साकार ईश्वर के स्थान पर निराकार ईश्वर की उपासना का प्रचार-प्रसार किया और मंदिरों तथा पुरोहितों की उपस्थिती को ईश्वर प्राप्ति के लिए अस्वीकृत कर दिया।

- **भावनात्मक एकता की आवश्यकता:-** तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में जब भक्ति आन्दोलन आरम्भ हुआ, तब तक भारत में हिन्दू-मुसलमानों को साथ-साथ रहते हुए लगभग 200 वर्ष बीतचुके थे। दोनों ही सम्प्रदायों में कुछ ऐसे उदारवादी एवं बुद्धिजीवी थे, जिन्होंने धार्मिक संकीर्णता का विरोध कर एक ही ईश्वर की भक्ति पर बल दिया तथा ईश्वर प्राप्ति के लिए जन्म, वर्ण, जाति, कर्मकाण्ड आदि के भेद को अनावश्यक बताया । उन संतों ने मानव मात्र की समानता पर बल दिया तथा ईश्वर के नाम पर किये जाने वाले लड़ाई-झगड़ों को व्यर्थ बताते हुए आध्यात्मिक एकता पर बल दिया । उन्होंने मोक्ष प्राप्ति केलिए केवल सच्चे मन से, प्रेम भावना से ईश्वर के स्मरण को आवश्यक बताया। उन्होंने ईश्वर के नाम पर द्वेष, घृणा और संकीर्ण विचारों की मुखर आलोचना की और इस बात का प्रचार किया कि अन्ततः सभी धर्मों का मार्ग एक ही ईश्वर की ओर जाता है।

9.7 भक्ति आंदोलन का प्रसार और कुछ प्रमुख संतों का परिचय

अब तक भक्ति आंदोलन से आप भाली-भाति परिचित हो चुके हैं और यह भी समझ चुके होंगे की भक्ति आंदोलन का प्रसार राष्ट्रव्यापी था। भक्ति आंदोलन आंतरिक रूप से वैविध्यपूर्ण था और यही कारण है कि हमें इस दौरान ईश्वर उपासना की दो प्रमुख धारणाएं देखने को मिलती हैं जो कि वर्तमान समय में भी विद्यमान हैं। इन धारणाओं में पहली धारणा सगुण भक्ति (भगवान शिव, विष्णु तथा उनके अवतारों के साथ साथ देवियों की आराधना मूर्त और साकार रूप में) की है तो वहीं दूसरी धारणा निर्गुण भक्ति (अमूर्त, निराकार ईश्वर की उपासना से सम्बंधित) की है। भक्ति आंदोलन के इन संतों में कुछ संत सगुण भक्ति के पोषक थे और कुछ कबीर जैसे संत निर्गुण भक्ति के प्रतिनिधित्वक थे। उत्तर भारत में यदि कबीर, रैदास, जायसी जैसे संत थे तो वहीं महाराष्ट्र में नामदेव, तुकाराम, ज्ञानेश्वर जैसे संत, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु तो गुजरात में नरसी मेहता और राजस्थान में मीरा बाई और दादू दयाल जैसे संतों ने भक्ति आंदोलन को आगे बढ़ाया था। आगे आप कुछ प्रमुख भक्ति संतों का परिचय प्राप्त करेंगे।

- **कबीर दास:** कबीर के जन्म को लेकर कुछ भी कह पाना अनिश्चित है और ऐसा इसलिए है क्योंकि इतिहासकारों द्वारा उनके जीवन का अध्ययन उनके लिखे काव्यों के बाद किया गया है। अनुमानित तौर पर कबीर का जन्म पन्द्रहवी शताब्दी में बताया जाता है और यह रामानंद के शिष्य थे। कबीर शब्द अरबी भाषा

का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'महान' होता है। कहा जाता है कि इनका जन्म एक विधवा ब्रह्माणी के गर्भ से हुआ था जो इन्हें वाराणासी के लहरतारा नामक ताल के किनारे परित्यक्त कर गई थी। वहाँ से नीरू और नीमा नामक जुलाहे दम्पति ने इन्हें गोद लिया और इनका लालन-पालन किया।

कबीर दास यूँ तो अनपढ़ थे परन्तु वाराणसी में उन्हें कई प्रमुख संतों का सानिध्य प्राप्त हुआ यहाँ उनका परिचय हिंदू संतों तथा सूफियों दोनों से हुआ साथ ही वे नाथपंथियों से भी काफी प्रभावित हुए। यही कारण था की कबीर ने अपने संदेशों को मौखिक रूप से दिया जिन्हें बाद में उनके अनुयायियों ने लिपिबद्ध किया। कबीर के मुताबिक़ ईश्वर निर्गुण और निराकार है और वह ईश्वर को राम कहकर संबोधित करते हैं। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि यह राम तुलसी के राम से भिन्न है। वह स्पष्ट करते हुए इस बात को कहते भी हैं कि- "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मर्म है आना।" अर्थात जो भी व्यक्ति राम का अर्थ दशरथ के पुत्र के रूप में लेता है वह राम नाम के वास्तविक अर्थ को जानता ही नहीं है। देखा जाए तो कबीर एक प्रमुख भक्ति संत होने के साथ साथ एक महान समाज - सुधारक भी थे। उन्होंने न केवल हिंदुओं में प्रचलित कर्मकांडों का विरोध किया बल्कि उन्होंने मुस्लिम समाज के आडम्बरों पर भी अपनी उलटभासी भाषा में तीखे व्यंग किये। देखा जाए तो उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के मध्य एकता स्थापित करने का भरसक प्रयास किया था हालाँकि यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने इस समन्वय के लिए कभी भी इन दोनों संप्रदायों की कमजोरियों को छिपाने का प्रयास नहीं किया।

कबीर दास की कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं:- बीजक, शबद, साखी, रमैनी, मंगल, बसंतहोली, रेखाताल इत्यादि।

- **गुरु नानक देव (1469-1539):** पंजाब क्षेत्र में भक्ति आंदोलन के अग्रदूत रहे गुरु नानक देव भी निर्गुण भक्ति परम्परा के प्रमुख वाहक रहे हैं तथा इन्हें एक नए धर्म 'सिक्ख धर्म' की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। इनका जन्म वर्ष 1469 में वर्तमान पाकिस्तान के शेखपुरा जिले में रावी नदी के किनारे स्थित तलवंडी (ननकाना साहिब) नामक स्थान पर एक हिंदू व्यापारी परिवार (खत्री) में हुआ था। इनके पिता का नाम कालूचंद और माता का नाम तृप्ति था। यह बाबर और सिकंदर लोदी के समकालीन थे। गुरु नानक ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा गोपालदास से अर्जित की जिन्होंने इन्हें भाषा ज्ञान और गणित विषय की शिक्षा दी इसके बाद इन्होंने फारसी भाषा का भी अध्ययन किया। १४ वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह 'सुलखणी' नामक कन्या से हो गया जिससे इन्हें 'श्रीचंद' और 'लक्ष्मीदास' नामक दो पुत्रों की प्राप्ति हुई। युवा होने पर इन्होंने कुछ समय तक दौलत खां लोदी के अधीन राजकीय अन्न भण्डार में राजस्व क्लर्क के रूप में अपनी सेवाएँ दी।

27 वर्ष की अवस्था में जब इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई तो इन्होंने संन्यास धारण कर 'सतनाम' के प्रचार हेतु चरों दिशाओं में लंबी लंबी यात्राएं कि जिन्हें सामन्यतः 'उदासियाँ' के नाम से भी जाना जाता है। अपनी इस यात्रा के दौरान इन्होंने पंजाबी भाषा में कई भजनों की रचना करी जिन्हें 'शबद' कहा जाता है साथ ही इन्होंने भक्ति आंदोलन के अन्य संतों की तरह ही जनता से आह्ववान किया कि वे जाति पाती के भेद को त्याग दें और ईश्वर की भक्ति कर अपने जीवन को सफल बनायें। वे एकेश्वरवाद के समर्थक तथा मूर्तिपूजा जैसे आडम्बरों के धुर विरोधी थे। वे हिंदू मुस्लिम एकता में समन्वय स्थापित कर चरित्र एवं आचरण की शुद्धता पर बल देते थे। उन्होंने आजीवन इस बात का प्रचार किया की

ईश्वर के समक्ष सभी मनुष्य बराबर हैं। उनके अनुसार अच्छे सामाजिक कार्य करना ही ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा है साथ ही उनका कहना था कि सामाजिक रूप से पिछड़े और नीच कहे जाने वाले मनुष्य से प्रेम किये बिना ईश्वर से प्रेम नहीं हो सकता। उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से उपनिषदों के शुद्ध एकेश्वरवादी सिद्धांतों को पुनर्जीवित करने का कार्य किया। उन्होंने निराकार ब्रह्म, को 'अकाल पुरुष' (जिसका कोई स्वरुप या आकार नहीं है) का नाम दिया साथ ही उसकी उपासना के लिए एक सरल तरीका बताते हुए अपने अनुयायियों को 'नाम जप' तथा निरंतर ईश्वर का स्मरण करने का मार्ग सुझाया। ईश्वर की इसी भक्ति पद्धति को वे 'सुमिरन' कहते हैं। नानक ने अपने जीवन का अंतिम समय रावी नदी के किनारे करतारपुर में व्यतीत किया उन्होंने इसी स्थल पर अपना 'डेहरा' (मठ) स्थापित किया और अपने अनुयायियों के मेल मिलाप के लिए लंगर (मुफ्त सामुदायिक रसोई) की शुरुआत की थी। नानक के बाद सिक्ख धर्म में नौ और गुरु हुए जिनमें सबसे अंतिम तथा दसवें गुरु 'गुरु गोविन्द सिंह' जी थे जिन्होंने आदिग्रंथ का पुनः संसोधन और संपादन किया था।

- ❖ **रैदास/रविदास:** यह भी कबीर के समकालीन एक प्रमुख निर्गुण संत थे। स्वयं कबीर दास ने इन्हें 'संतों का संत' कहा है साथ ही मीरा बाई और धन्ना जाट भी इनका बहुत आदर करते थे। इनका जन्म चमार जाति में हुआ और इनका परिवार (इनकी माता का नाम राधू और पिता का नाम धुरबिनियां था।) बनारस में ढोर ढोने का कार्य किया करता था। कबीर दास की ही भाति ये भी रामानंद के शिष्य थे और अपने पुश्तैनी कार्य में संलग्न रहते हुए ईश्वर की उपासना और भक्ति में लीन रहते थे। इनके १०० से अधिक पद सिक्खों के प्रमुख ग्रन्थ आदि गुरुग्रंथ साहब में संकलित हैं। इन्होंने रैदासी सम्प्रदाय की स्थापना की थी।
- ❖ **दादू दयाल (1544-1603):** कबीर दास के सर्वश्रेष्ठ अनुयायियों में दादू दयाल का नाम उल्लेखनीय है, ऊपर लिखित सभी संतों की भाति ही निर्गुण भक्ति परंपरा में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म अहमदाबाद में एक मुस्लिम परिवार की धुनिया जाति में हुआ था हालाँकि इसको लेकर विद्वानों के मध्य मतभेद है कुछ विद्वान इनका जन्म लोदीराम के ब्राह्मण परिवार से भी बतलाते हैं। दादू दयाल का राजस्थान के क्षेत्र में भक्ति की भावधारा को प्रचारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने सर्वप्रथम अपना गुरु ब्रह्मानंद को बनाया और आगे चलकर 'ब्रह्म सम्प्रदाय' की नींव रखी जिसे 'पर ब्रह्म सम्प्रदाय' व 'निपख सम्प्रदाय' भी संबोधित किया जाता है। इन्होंने राजस्थान के आमेर शहर से अपने उपदेशों का प्रचार-प्रसार किया वर्ष 1585 में मुग़ल सम्राट अकबर ने फतेहपुर सीकरी में इनका स्वागत किया तथा अगले ४० दिनों तक इनसे धार्मिक चर्चा की। इनके उपदेश 'दादू वाणी' में संकलित हैं जिसमें लगभग 5000 छंद हैं।

दादू दयाल ने अपने उपदेशों में धार्मिक ग्रंथों को अधिक महत्ता देने के बजाये आत्मचिंतन पर अधिक जोर दिया है। कबीर दास की ही भाति वे गुरु की महत्ता पर बल देते हैं और अन्य प्रमुख संतों से साम्यता रखते हुए मूर्ती पूजा, जाति प्रथा, कर्मकांड तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों की भर्त्सना करते हैं। उनकी भाषा में कबीर जैसा कटुत्व और तीव्रता तो नहीं है बल्कि कबीर के विपरीत उनका स्वभाव विनम्र, मिश्रित तथा माधुर्यपूर्ण है। उनका मानना है कि भक्त को शीलवान, विनम्र, आंकाक्षाहीन और वीर होना चाहिए, कायरता को वे साधना के मार्ग में बाधक मानते हैं।

उन्होंने सरल और सहज भाषा में निराकार ईश्वर के प्रति भक्ति भाव की वकालत की है। उनकी रचनाओं में भी प्रभु के सहज चिंतन और मनुष्य की व्यवहारिक तथा नैतिक शुद्धता का उल्लेख मिलता है। वे समाजसेवा और मानव सेवा को ईश्वरीय भक्ति के समकक्ष रखते हैं। उनका मानना था कि ईश्वर की प्राप्ति केवल भक्ति से ही नहीं वरन मानव प्रेम और समाज सेवा से भी संभव है।

दादू के प्रमुख शिष्यों का उल्लेख हमें राघवदास की रचना 'भक्तमाल' और लालदास की रचना 'नाममाल' से प्राप्त होता है। उनकी शिष्य परम्परा में 152 प्रधान शिष्यों का उल्लेख मिलता है जिनमें से उनके 100 शिष्य एकांतवासी थे तथा शेष 52 शिष्यों ने गुरु शिष्य परम्परा को आगे भी कायम रखा। इन 52 शिष्यों को 52 स्तंभ कहा जाता है जिन्होंने 52 स्थानों पर दादू-द्वारे स्थापित किए। इनके प्रमुख शिष्यों में सुन्दरदास, गरीबदास, बख्नाजी और रज्जब प्रमुख थे। दादू की मृत्यु के पश्चात गरीबदास ही इनके उत्तराधिकारी हुए थे। रज्जब के बारे में एक विशेष तथ्य यह है कि वे हमेशा दूल्हे के वेश में ही रहते थे उनका कहना था – **"यह संसार वेद है यह सृष्टी कुरान है।"** राजस्थान के नरायणा (नरैना) में दादू पंथ की मुख्य पीठ है और इस पंथ के अधिकाँश अनुयायी राजस्थान प्रदेश से ही हैं।

- **सन्त ज्ञानेश्वर:** संत ज्ञानेश्वर का जन्म 1275 ई. (12वीं-13वीं शताब्दी माना जाता है।) में महाराष्ट्र के आलिन्दी में हुआ। इनका नाम महाराष्ट्र प्रदेश के धार्मिक पुनर्जागरण के प्रणेता के रूप में अग्रणी है और ये महाराष्ट्र के प्रारम्भिक भक्ति सन्त थे। इनकी प्रमुख रचनाओं में शामिल हैं- 'ज्ञानेश्वरी' या 'भावार्थ दीपिका' नामक टीका जो कि मराठी भाषा में भगवद्गीता पर एक टीका है और इसमें इन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों माध्यमों पर एक समान रूप से बल दिया है। अन्य रचना- अमृतानुभव और चंगदेव प्रशस्ति है। एक किंगवदन्ति के अनुसार संत ज्ञानेश्वर ने एक भैंसे के मुख से वेदमंत्रोच्चार करवा लिया था।
- **नामदेव (1270-1350 ई.):** ये भक्ति की परम्परा में ज्ञानेश्वर के उत्तराधिकारी थे। इनका जन्म सत्तारा के नरसीबमनी गाँव में एक दर्जी के परिवार में हुआ था। इनके बारे में कहा जाता है कि इन्होंने अपनी युवा अवस्था एक डाकू के रूप में व्यतीत की तथा एक बार इन्होंने 84 सैनिकों की निर्मम हत्या कर दी थी। आगे चलकर इनके जीवन में परिवर्तन एक विशेष घटना के घटित होने के पश्चात हुआ जिसमें उन्होंने खुद के द्वारा पीड़ित एक व्यक्ति की असहाय पत्नी को चीखते – चिल्लाते हुए देखा। इस घटना ने इनका हृदय परिवर्तन कर दिया और उन्होंने अपने जीवन को पूर्णतः अध्यात्म में झोंक दिया। इसके बाद इन्होंने अपने जीवन का अधिकाँश हिस्सा पंढरपुर में व्यतीत किया और यहीं उन्हें उनके प्रारंभिक गुरु 'विसोबा खेचड़' ने उन्हें रहस्यवाद में शिक्षित किया और ईश्वर के सर्वव्यापी स्वरूप से परिचित करवाया। इन्हें वारकरी सम्प्रदाय के प्रमुख संस्थापक के रूप में भी माना जाता है।

ये भगवान विठोबा के परम भक्त थे तथा इन्होंने वारकरी सम्प्रदाय की विचारधारा का प्रचार प्रसार कर उसे अत्यधिक लोकप्रिय बनाया। अपनी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान इन्होंने प्रारम्भ में ब्रजभाषा में साहित्य की रचना करी और सगुण भक्तिधारा का प्रचार प्रसार किया हालाँकि बाद में इनका झुकाव निर्गुण धारा की तरफ हो गया और इन्होंने खड़ी बोली भाषा में अपने उपदेश देने प्रारंभ किये। उन्होंने मराठी तथा हिन्दी दोनों भाषाओँ में रचनाएँ करी और

उनकी कृतियों में निर्गुणवादिता के लक्षण स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। बाद में इन्होंने पंजाब के गुरुदासपुर के धोमन गांव को अपना केन्द्र बनाया और यहाँ रहकर पंजाब प्रांत में अपने मत का प्रचार प्रसार किया। इनकी कुछ रचनाएँ सिक्खों के प्रमुख ग्रन्थ 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में भी संकलित हैं। इन्होंने दिल्ली में सूफी सन्तों के साथ भी वाद-विवाद किया था। इन्होंने अपने उपदेशों के दौरान पूरे मराठवाड़ा क्षेत्र में जाति व्यवस्था, मूर्ति पूजा और अन्य बाह्यडम्बरों का मुखर विरोध किया साथ ही लोगों को हरिनाम से ईश्वर की उपासना का उपेदश दिया। उन्होंने अपनी शिक्षाओं में एकेश्वरवाद, मानवमात्र में समानता, आचरण की शुद्धता, भक्ति की पवित्रता व सरसता व चरित्र की निर्मलता पर बल दिया। उनका प्रसिद्ध सन्देश है-

"एक पत्थर की पूजा होती है और दूसरे को पैरों तले रौंदा जाता है। यदि एक में भगवान है तो दूसरे में भी भगवान है।"

महाराष्ट्र में भक्ति धर्म का उपदेश देने वाले नामदेव का विश्वास था कि मोक्ष केवल ईश्वर के प्रति प्रेम से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनके प्रमुख शिष्य - गोरा (कुम्हार) साम्वत (माली), चोखा (अछूत) थे। उनके अनुगामियों में हिन्दू धर्म में दीक्षित मुसलमान भी थे। नरहरि सुनार जाति के थे।

- **एकनाथ (1533-1599 ई.):** इन्हें 'महाराष्ट्र के तुलसीदास' के रूप में भी जाना जाता है। इनका जन्म पैठण (औरंगाबाद) के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। । उन्होंने जातियों के विभेद को अस्वीकार कर दिया था। और महाराष्ट्र में भजन गायन परम्परा (कीर्तन) को लोकप्रिय बनाया था। एकनाथ के विशिष्ट कार्यों में वेदान्त दर्शन व उनसे पहले के सन्तों की रहस्यवादी शिक्षाओं को जन सामान्य की भाषा में प्रस्तुत किया जाना उल्लेखनीय था उनका कहना था-

"यदि संस्कृत की रचना ईश्वर ने की है तो क्या प्राकृत को चोरों और बदमाशों ने जन्म दिया। ईश्वर किसी भाषा के साथ पक्षपात नहीं करता। उसके लिए तो प्राकृत और संस्कृत एक समान हैं। मेरी भाषा मराठी में उदात्तम भावनाओं को अभिव्यक्त करने - की क्षमता है और वह समृद्ध एवं दिव्य ज्ञान के फलों से लदी हुई है।"

उन्होंने पहली बार 'ज्ञानेश्वरी' का एक विश्वसनीय संस्करण प्रकाशित किया था। इसके अलावा उनकी प्रमुख रचनाओं में चतुःश्लोकी भागवत् (भगवद्गीता के चार श्लोकों पर टीका), भावार्थ रामायण, रूक्मणी स्वयंवर और हरिपाठ आदि शामिल हैं।

- **तुकाराम (158-1650):** इन्हें महाराष्ट्र के कबीर के रूप में भी जाना जाता है। इनका जन्म पूना के निकट इन्द्रायणी नदी के तट पर स्थित देहू नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति से शूद्र थे और इसी कारण इन्होंने स्वयं के बारे में कहा है कि- "शूद्र परिवार में जन्म लेने के कारण मैं सहज ही अहंकार से मुक्त हूँ।" इन्होंने जसच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए भण्डारा की पहाड़ियों में तपस्या की थी। वस्तुतः देखा जाए तो तुकाराम ही महाराष्ट्र में भक्ति मार्ग के सबसे प्रभावशाली व सर्वोच्च प्रतिपादक थे। जिनकी शिक्षाएं 'अभंगों' (मराठी भक्तिगीत) के रूप में संकलित की गई हैं। इन अभंगों में जहाँ एक ओर ईश्वर से अनुराग और उसके प्रति समर्पण का भाव व्यक्त है तो वहीं दूसरी ओर उस समय के सामाजिक ताने बाने पर कुठाराघात ओर जाति विषमता की निंदा

भी की गई है। संत तुकाराम जातिवाद ओर बाह्य आडम्बर जैसे कर्मकांड इत्यादि के शख्त विरोधी थे ओर इसकी अपेक्षा वे हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्के हिमायती थे। उनका कहना था कि- 'अल्लाह एक है, नबी (पैगम्बर) एक है और अलौकिक जगत में न कोई 'मैं' है और न कोई 'तू' है।' इनके अभंगों का प्रथम मुद्रित संकलन सन् 1867 ई. में 'अभंग गाथा' के नाम कि से प्रकाशित हुआ था।

- **रामानुजाचार्य(१०१७- ११३७):** रामानुजाचार्य को रामानुज के नाम से भी जाना जाता है यह एक प्रमुख हिंदू दार्शनिक और धर्मशास्त्री थे जिनका जन्म 11वीं और 12वीं शताब्दी के मध्य दक्षिण भारत के तमिलनाडु प्रांत के श्रीपेरंबदूर नामक स्थान पर हुआ था। इनके जन्म के समय इनका नाम लक्ष्मण रखा गया था और इन्हें 'इलाया पेरुमल' के नाम से भी जाना जाता था, जिसका शाब्दिक अर्थ दीप्तिमान होता है। उन्हें विशिष्टाद्वैत वेदांत पर उनकी प्रभावशाली शिक्षाओं के लिए जाना जाता है, जो हिंदू धर्म की दार्शनिक व्याख्या है और अद्वैतवाद की अवधारणा पर जोर देता है। यह परंपरा सर्वगुण-संपन्न परमसत्ता का अद्वैतवाद है, जिसमें मात्र ब्रह्म का अस्तित्त्व माना जाता है, लेकिन इसकी अभिव्यक्ति विविध रूपों में होती है। रामानुज ने आध्यात्मिक मुक्ति के केंद्रीय मार्ग के रूप में 'भक्ति' या ईश्वर के प्रति समर्पण के विचार पर जोर दिया। उनका मानना था कि प्रेमपूर्ण भक्ति और ईश्वर के प्रति समर्पण के माध्यम से, कोई व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है। उनकी शिक्षाओं ने आध्यात्मिक अभ्यास के विभिन्न पहलुओं के रूप में सेवा, करुणा और नैतिक जीवन के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने अपने उपदेशों के दौरान मंदिरों में, सामाजिक समानता और सार्वभौमिक भाईचारे का उपदेश दिया और इसी उद्देश्य के साथ उन्होंने कई दशकों तक पूरे भारत की यात्रा की।

वेदांत सूत्र (श्री भाष्य) और भगवद गीता (गीताभाष्य) पर रामानुज की टिप्पणियों को हिंदू दर्शन में मौलिक कार्यों में से एक माना जाता है। इसके अलावा उन्होंने नवरत्नों के नाम से प्रसिद्ध नौ शास्त्रों की रचना की है और वैदिक शास्त्रों पर कई भाष्यों की रचना की है। 'वेदान्त संग्रह' 'वेदान्तसार' और 'वेदान्तदीप' उनके कुछ प्रमुख लेखन कार्य में शामिल है। उन्होंने श्री वैष्णववाद परंपरा के अनुष्ठानों और प्रथाओं को व्यवस्थित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका प्रभाव धर्मशास्त्रीय हलकों से आगे तक फैला, जिसने दक्षिण भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को आकार दिया। आज, रामानुज को हिंदू धर्म में सबसे महत्वपूर्ण संतों और दार्शनिकों में से एक माना जाता है, और उनकी शिक्षाएं दुनिया भर में लाखों अनुयायियों को प्रेरित करती हैं। हाल ही में कुछ पूर्व वर्ष ही 'वसुधैव कुटम्बकम' के उनके विचार की प्रशंशा करते हुए भारत सरकार ने उनकी १०००वीं जयन्ती को 'समानता' के त्योहार' के रूप में चिन्हित किया है और हैदराबाद में रामानुजाचार्य की एक विशाल प्रतिमा 'स्टेच्यू ऑफ इक्वलिटी' की स्थापना की है।

- **चैतन्य महाप्रभु:** चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् 1486 ई. में पश्चिम बंगाल के नवद्वीप नामक गांव में हुआ था। वे एक प्रतिष्ठित भारतीय संत, दार्शनिक और गौड़ीय वैष्णववाद के संस्थापक थे। उनके अनुयायी उन्हें अक्सर भगवान कृष्ण का ही अवतार मानते हैं। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान और ईश्वर के साथ एकाकार प्राप्त करने के साधन के रूप में हरे कृष्ण मंत्र के सामूहिक जप (संकीर्तन) की प्रथा को पूरे भारत में लोकप्रिय बनाने

का कार्य किया। चैतन्य की शिक्षाओं ने ईश्वर प्राप्ति के सबसे प्रभावी मार्ग के रूप में भक्ति (भक्ति) की अवधारणा पर जोर दिया उन्होंने प्रेम और भक्ति को आध्यात्मिकता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के रूप में महत्व दिया। साथ ही उन्होंने प्रेम, विनम्रता और भक्ति के अपने संदेश का प्रसार करते हुए पूरे भारत में व्यापक रूप से यात्रा की। चैतन्य के शिष्यों, विशेष रूप से रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी ने अपने लेखन के माध्यम से उनकी शिक्षाओं को व्यवस्थित और प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका प्रभाव भारत से परे भी फैला, जिसने वैश्विक स्तर पर आध्यात्मिक परंपराओं को प्रभावित किया। चैतन्य महाप्रभु का जीवन और शिक्षाएं दुनिया भर में लाखों भक्तों को प्रेरित करती रहती हैं, और उनकी विरासत भारतीय आध्यात्मिक विरासत की समृद्ध परंपरा का अभिन्न अंग बनी हुई है।

- **रामानंद:** रामानंद एक प्रमुख भक्तिकालीन संत, कवि और दार्शनिक रहे हैं जिनका भारतीय आध्यात्मिकता और साहित्य के इतिहास में एक विशेष और अतुल्य स्थान है। रामानंद को भक्ति आंदोलन में उनके विशेष योगदान के लिए जाना जाता है, उन्होंने ईश्वर की व्यक्तिगत पूजा पर जोर दिया साथ ही संस्कृत भाषा के बजाये स्थानीय भाषाओं में अपने गीतों और कविताओं की रचना करी। उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान भगवान विष्णु के अवतार राम की भक्ति को लोगों के बीच लोकप्रिय बनाना था। उन्होंने भगवान राम को समर्पित कई भक्ति गीत और कविताएँ लिखी जो सभी क्षेत्रों के लोगों के लिए सर्व-सुलभ थी। रामानंद की शिक्षाओं ने व्यक्ति की आध्यात्मिक यात्रा में प्रेम, करुणा और भक्ति के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने समानता का उपदेश दिया और जाति व्यवस्था को एक सिरे से नकार दिया, उन्होंने सभी सामाजिक पृष्ठभूमि के लोगों का अपने शिष्य के रूप में स्वीकार किया। आध्यात्मिकता के प्रति उनके समावेशी दृष्टिकोण ने उन्हें पूरे भारत में व्यापक रूप से पूजनीय बना दिया। रामानंद के शिष्यों, जिनमें प्रसिद्ध संत कबीर भी शामिल हैं, ने उनकी शिक्षाओं को और भी आगे फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज भी रामानंद की विरासत लाखों भक्तों को प्रेरित करती है और उनका प्रभाव भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता और साहित्य के विभिन्न पहलुओं में महसूस किया जा सकता है।
- **नरसी मेहता:** यह गुजरात के प्रमुख भक्ति संत रहे हैं जिन्होंने गुजरात में भक्ति भावना का प्रसार किया। इनका जन्म सौराष्ट्र के जूनागढ़ में सन् 1413 में हुआ था। नरसी मेहता द्वारा अपनी रचनाओं में राधा – कृष्ण के प्रेम का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। यह प्रेम भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे और इनकी रचनाओं में आत्मज्ञान और वेदान्त के रहस्यों का प्रस्फुटन है। इन्होंने गुजराती भाषा में लगभग १ लाख दोहों की रचना करी है इनकी प्रमुख पुस्तक 'सूरतसंग्राम' है। आगे चलकर गांधी जी भी इनके विचारों से प्रभावित हुए। गांधी जी के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' के रचनाकार यही थे।

9.8 भक्ति आंदोलन का महत्त्व

भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज और संस्कृति में गहरा प्रभाव डाला है। यह आंदोलन मध्यकालीन भारत में हिंदू धर्म के एक महत्वपूर्ण आधारिक परिवर्तन का प्रतीक था। इसके महत्व को हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

- **धार्मिक सुधार:** भक्ति आंदोलन पारंपरिक हिंदू धर्म की कठोरता और जटिलताओं के जवाब के रूप में उभरा, जिसने जाति व्यवस्था, कर्मकांड प्रथाओं और धार्मिक मामलों पर पुरोहित वर्ग के एकाधिकार को चुनौती दी। इसने अनुष्ठानों और सामाजिक पदानुक्रमों की जटिलताओं से अलग होकर एक व्यक्तिगत देवता के प्रति प्रत्यक्ष भक्ति (भक्ति) पर जोर दिया। यह आंदोलन न केवल धार्मिक रीति-रिवाजों को सरल और सुलभ बनाने की दिशा में था, बल्कि इसने सामाजिक और धार्मिक असमानता के खिलाफ भी आवाज उठाई।
- **सामाजिक समानता और समावेशिता:** भक्ति आंदोलन के सबसे उल्लेखनीय पहलुओं में से एक सामाजिक समानता और समावेशिता पर इसका जोर था। भक्ति संतों ने उपदेश दिया कि भगवान की भक्ति सभी के लिए सुलभ है, चाहे उनकी जाति, लिंग या सामाजिक स्थिति कुछ भी हो। इस समतावादी संदेश ने प्रचलित सामाजिक पदानुक्रमों को चुनौती दी और सामाजिक सामंजस्य में योगदान दिया।
- **भाषाई एकता:** भक्ति आंदोलन के दौरान शास्त्रीय संस्कृत के बजाय तमिल, तेलुगु, कन्नड़, हिंदी और बंगाली जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में भक्ति गीतों और कविताओं की रचना करी गई। इसने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और संवर्धन को प्रोत्साहित किया और जनता के बीच भक्ति आदर्शों के प्रसार को सुगम बनाया।
- **सांस्कृतिक समन्वय और एकीकरण:** भक्ति संतों द्वारा विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं से प्रेरणा ली गई। उन्होंने बौद्ध धर्म, जैन धर्म, इस्लाम और स्वदेशी मान्यताओं के तत्वों को अपनी शिक्षाओं में एकीकृत किया। इस सांस्कृतिक समन्वय ने विभिन्न समुदायों के बीच धार्मिक सहिष्णुता और आपसी समझ को बढ़ावा दिया। भक्ति संतों ने स्थानीय भाषाओं में भक्ति कविता और गीतों की रचना की, जिससे आध्यात्मिक शिक्षाएँ आम लोगों तक पहुँची। इसने क्षेत्रीय भाषाओं के संवर्धन और विकास में योगदान दिया और विविधता के बीच सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा दिया।
- **साहित्यिक और कलात्मक विरासत:** भक्ति आंदोलन ने भक्ति कविता, गीत, नृत्य रूप और स्थापत्य कला के एक समृद्ध साहित्यिक और कलात्मक विरासत का निर्माण किया। कबीर, मीराबाई, तुलसीदास और अन्य भक्ति कवियों की रचनाएँ आज भी लाखों लोगों को प्रेरित करती हैं और भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने का अभिन्न अंग हैं। भक्ति कवियों और संतों की रचनाएँ पीढ़ियों से लोगों के साथ गूंजती रहती हैं, जो गहन आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि और सार्वभौमिक मानवीय अनुभवों को दर्शाती हैं।
- **सहिष्णुता और सद्भाव:** भक्ति संतों ने अक्सर विविधता को अपनाया और विभिन्न धार्मिक परंपराओं के तत्वों को अपनी शिक्षाओं में शामिल करके धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया। इस विश्वव्यापी दृष्टिकोण ने

विभिन्न समुदायों के बीच आपसी सम्मान और समझ को बढ़ावा दिया, जिसने भारत की सांस्कृतिक ताने-बाने में योगदान दिया।

- **ऐतिहासिक प्रभाव:** भक्ति आंदोलन ने मध्यकालीन भारत और उसके बाद के सामाजिक-धार्मिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रेम, करुणा और सेवा के इसके आदर्श समकालीन चुनौतियों का समाधान करने और मानव कल्याण को बढ़ावा देने के लिए व्यक्तियों और सामाजिक आंदोलनों को प्रेरित करना जारी रखते हैं।
- **आध्यात्मिक पुनरुत्थान:** भक्ति आंदोलन के दौरान संतों ने मनुष्य को व्यक्तिगत भक्ति और आंतरिक आध्यात्मिकता की ओर मार्गदर्शित किया साथ ही उन्होंने आध्यात्मिकता के महत्व पर जोर देकर व्यक्तियों के आध्यात्मिक जीवन को फिर से जीवंत बनाने का कार्य किया।

संक्षेप में, भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास में एक परिवर्तनकारी चरण का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी विशेषता आध्यात्मिक नवीनीकरण, सामाजिक सुधार और सांस्कृतिक समृद्धि है। इसकी स्थायी विरासत लोगों के दिलों और दिमागों में गूंजती रहती है, तथा भक्ति, करुणा और सार्वभौमिक प्रेम के शाश्वत सिद्धांतों को मूर्त रूप देती है। भक्ति आंदोलन ने भारत के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनकारी भूमिका निभाई, जिसने प्रेम, समावेशिता और आध्यात्मिक नवीनीकरण की एक स्थायी विरासत छोड़ी। इन सभी कारणों से, भक्ति आंदोलन का महत्त्व भारतीय समाज में गहरा है और इसका प्रभाव उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक, और धार्मिक धारा में अब भी महसूस किया जा सकता है।

9.9 भक्ति आंदोलन की सीमाएं

भक्ति आंदोलन ने मध्यकालीन भारत में महत्वपूर्ण सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक सुधार किए, लेकिन इसकी अपनी सीमाएँ भी थी इन सीमाओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं:

- **सीमित पहुँच:** भक्ति आन्दोलन ने समावेशिता और सुलभता पर ज़ोर देने के बावजूद भी मुख्य रूप से केवल कुछ क्षेत्रों और समुदायों में ही आम जनता को आकर्षित किया। इसका प्रभाव भारत के कुछ क्षेत्रों में ज़्यादा था, और यह अक्सर हाशिए पर पड़े समूहों या उन क्षेत्रों तक पहुँचने में विफल रहा जहाँ सामाजिक संरचनाएँ इसके प्रसार में बाधा बन रही थी।
- **रूढ़िवादी तत्व:** जहाँ कुछ भक्ति संतों ने रूढ़िवादी मान्यताओं और प्रथाओं को चुनौती दी, वहीं अन्य ने जाति और लिंग जैसे मुद्दों के प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण बनाए रखा। कुछ भक्ति कवियों ने पारंपरिक सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखा और समाज के भीतर भेदभावपूर्ण प्रथाओं को सक्रिय रूप से चुनौती नहीं दी।
- **संरचनात्मक परिवर्तन का अभाव:** यह सत्य है कि भक्ति आंदोलन ने आध्यात्मिक समानता की वकालत की और व्यक्तिगत भक्ति के महत्व पर ज़ोर दिया, लेकिन इसने हमेशा उन अंतर्निहित संरचनात्मक मुद्दों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की जो सामाजिक असमानताओं को बनाए रखते थे। हालाँकि इसने व्यक्तियों को

आध्यात्मिक सांत्वना प्रदान की, लेकिन इसने सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में प्रणालीगत परिवर्तन नहीं किए।

- **अभिजात वर्ग का प्रभाव:** समय के साथ साथ भक्ति आंदोलन पर भी सत्ताधारी अभिजात वर्ग का अधिकार हो चला और मुख्यधारा के हिंदू धर्म में ही इसे शामिल कर लिया गया। सामाजिक समानता और समावेशिता के कट्टरपंथी संदेशों को अक्सर सत्ता में बैठे लोगों के हितों की सेवा के लिए कमजोर या विकृत किया गया, जिससे आंदोलन के मूल लक्ष्यों को हाशिए पर धकेल दिया गया।
- **महिलाओं पर सीमित प्रभाव:** मीराबाई और अंडाल जैसे कुछ भक्ति संतों ने लैंगिक मानदंडों को चुनौती अवश्य ही दी साथ ही उन्होंने महिलाओं की आध्यात्मिक स्वायत्तता की वकालत की लेकिन फिर भी लैंगिक समानता पर भक्ति आंदोलन का समग्र प्रभाव सीमित था। समाज में अब भी महिलाओं को सामाजिक और धार्मिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था और भक्ति प्रथाओं में उनकी भागीदारी अक्सर घरेलू क्षेत्रों तक ही सीमित रही।
- **क्षेत्रीय और भाषाई विभाजन:** भक्ति आंदोलन की एक और विशेषता क्षेत्रीय और भाषाई विविधता थी, जिसमें विभिन्न संत और कवियों ने अलग-अलग धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को अपनाया था। हालाँकि जहाँ इस विविधता ने इस आंदोलन को समृद्ध किया वहीं इसने भारतीय समाज के भीतर क्षेत्रीयता और भाषाई विभाजन में भी योगदान दिया।
- **धार्मिक समन्वयवाद:** भक्ति आंदोलन ने धार्मिक सहिष्णुता और समन्वयवाद को बढ़ावा दिया, लेकिन इसे रूढ़िवादी धर्म कके ठेकेदारों से प्रतिरोध का भी सामना करना पड़ा, जिन्होंने इसकी समावेशिता को अपने अधिकार के लिए खतरा माना। इससे भक्ति अनुयायियों और पारंपरिक धार्मिक संस्थाओं के बीच कभी-कभी संघर्ष और तनाव पैदा हो गया।

इन सीमाओं के बावजूद भी भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय बना हुआ है, जो सामाजिक अन्याय को चुनौती देने और सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देने में भक्ति और आध्यात्मिक नवीनीकरण की शक्ति के महत्त्व को दर्शाता है। इसकी विरासत समकालीन भारत में सामाजिक सुधार और धार्मिक बहुलवाद के आंदोलनों को प्रेरित करती रहती है।

9.10 सारांश

भक्ति आंदोलन जिसके बारे में आपने इस अध्याय में विस्तार-पूर्वक अध्ययन किया 7वीं से 8वीं शताब्दी के दौरान मध्यकालीन भारत में उपजा, इस आंदोलन ने भारतीय समाज के साथ-साथ ही भारतीय संस्कृति और धर्म तथा भारतीय आध्यात्मिकता पर भी गहरा प्रभाव डाला। इस अध्याय के वाचन के बाद आप कुछ प्रमुख बिंदुओं को अच्छे से समझ सके होंगे।

- **मुक्ति के मार्ग के रूप में भक्ति:** भक्ति आंदोलन के अंतर्गत महान संतों तथा धर्मज्ञों ने अनुष्ठानों या जाति-आधारित कर्तव्यों के सख्त पालन के विपरीत आध्यात्मिक मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के साधन के रूप में भक्ति (भक्ति) के मार्ग को सर्वोतकृष्ट बतलाया। मध्यकालीन ताने बाने में आध्यात्मिकता के इस लोकतंत्रीकरण ने जीवन के सभी क्षेत्रों में लोगों को उनकी सामाजिक स्थिति की परवाह किए बिना सीधे ईश्वर से जुड़ने की अनुमति प्रदान करी।
- **जाति पदानुक्रम की अस्वीकृति**: सम्पूर्ण भक्ति आंदोलन के दौरान इस आंदोलन का सबसे क्रांतिकारी कदम जाति व्यवस्था की अस्वीकृति थी। भक्ति-कालीन संतों द्वारा तत्कालीन सामाजिक परिवेश के अंतर्गत उपस्थित सामाजिक पदानुक्रम को चुनौती देते हुए यह स्थापित करने का प्रयास किया गया कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य सामान हैं और उन्होंने अपने उपदेशों में इसी विषय को प्रधानता से जनसामान्य के सम्मुख रखा। उन्होंने समाज में एकता और समावेशिता की भावना का विस्तार करते हुए सभी जातियों और सभी वर्गों के लोगों को अपना अनुयायी बनाया और सभी का मुक्त ह्रदय से स्वागत किया।
- **साहित्यिक विरासत:** भक्ति आंदोलन ने भारतीयों के लिए एक समृद्ध साहित्यिक विरासत का निर्माण किया, जिनके कई छंद आज भी लोग भक्ति-भावना के साथ प्रेमपूर्वक उच्चारित करते हैं।

9.11 तकनीकी शब्दावली

- भक्ति सूत्र: यह महर्षि नारद द्वारा रचित एक ग्रन्थ है जिसमे कुल 84 सूत्रों के माध्यम से भक्ति की व्याख्या की गई है।
- मोक्ष: माया रूपी इस संसार से किसी मानव के सभी बंधनों से मुक्त हो जाने वाली स्थिती।
- अद्वैतवाद: शंकराचार्य का मत जिसमें वह यह बतलाते हैं कि आत्मा और परमात्मा एक ही हैं।
- शैव: भगवान शिव को पूज्य मानने वाले; शिव संबंधी सम्प्रदाय
- वैष्णव: भगवान विष्णु को अपना आराध्य मानने वाले; विष्णु संबंधी सम्प्रदाय
- वर्णव्यवस्था: यह व्यवस्था भारतीय समाज का एक प्राचीन प्रतिमान है जिसमें कर्म/व्यवसाय के आधार पर जातियों का वर्गीकरण था। इस व्यवस्था में चार वर्णों का प्रावधान था- ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र और यह व्यवस्था सभी वर्णों के लोगों को उन्हें सौंपे गए निर्दिष्ट कार्यों के साथ उत्तमता के साथ जीवनयापन के लिए प्रेरित करती थी। हालांकि समय के साथ इस व्यवस्था में बदलाव हुए और यह व्यवस्था कर्म आधारित न होकर जाति आधारित समझी जाने लगी जिस कारण समाज में आज तक इसके दुष्प्रभावों को देखा जा सकता है।

9.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: अद्वैतवाद के प्रणेता हैं?

1. शंकराचार्य 2. रामानुज 3. निम्बार्क 4. नारद

प्रश्न: भक्तिसूत्र के लेखक हैं?

1. मनु 2. बृहस्पति 3. नारद 4. रामचन्द्र शुक्ल

प्रश्न: शुद्धाद्वैत किसका दार्शनिक मत है?

1. वल्लभाचार्य 2. रामानुज 3. मध्वाचार्य 4. निम्बार्क

प्रश्न: पृथ्वीराज रासो का लेखक कौन है?

1. हम्मीरदेव 2. चंदरबरदाई 3. विमल सूरी 4. जागनिक

प्रश्न: भावार्थ दीपिका किसकी रचना है?

1. दादू दयाल 2. एकनाथ 3. ज्ञानेश्वर 4. तुकाराम

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ❖ मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मानविकि विद्यापीठ
- ❖ तराइन से पानीपत, पप्पूसिंह प्रजापत, संस्करण- सितम्बर 2020
- ❖ प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, उपिंदर सिंह, संस्करण-2017
- ❖ मध्यकालीन भारत, नीरज श्रीवास्तव, संस्करण-2010
- ❖ भक्ति काव्य के सामजिक आयाम, डॉ० सतीश चन्द्र, संस्करण-2016
- ❖ सामाजिक धार्मिक आंदोलन: भक्ति आंदोलन, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
- ❖ मध्यकालीन भारत, हरीश चन्द्र वर्मा, संस्करण 1995

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न: भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों पर प्रकाश डालते हुए महाराष्ट्र के कुछ प्रमुख संतों के बारे में विस्तार से बताइए?

प्रश्न: भक्ति आंदोलन के उदय की परिस्थितियों को बतलाते हुए इसके महत्त्व को उजागर करें?

इकाई दस - सल्तनत कालीन सूफी सिलसिले एवं समाज में उनका प्रभाव

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3सूफी कौन थे
10.4सूफी मत की विशेषताएं
10.5इस्लाम जगत में सूफी आन्दोलन का विकास
10.6भारत में सूफी मत का विकास
10.7भारत में सूफी सिलसिले
10.7.1 चिश्ती सिलसिला
10.7.2सुहरावर्दी सिलसिला
10.7.3कादिरिया सिलसिला
10.7.4नक्शबंदिया सिलसिला
10.8 सूफियों की सामाजिक भूमिका
10.9 सूफी और भक्ति आन्दोलन से निर्मित सांस्कृतिक समन्वय
10.10सारांश
10.11 तकनीकीशब्दावली
10.12स्वमूल्यांकित प्रश्न
10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.14 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस्लाम के रहस्यवादी आयाम सूफीवाद ने अपने विभिन्न संप्रदायों के माध्यम से समाज को गहराई से प्रभावित किया है, जिनमें से प्रत्येक ने आध्यात्मिक और सामाजिक गतिशीलता में अद्वितीय योगदान दिया है। सूफी संप्रदायों और उनके सामाजिक प्रभाव की प्रस्तावना आध्यात्मिक प्रथाओं, दार्शनिक दृष्टिकोणों और सांस्कृतिक प्रभावों के एक समृद्ध ताने-बाने को उजागर करती है। अपने मूल में, सूफीवाद ईश्वर की ओर आंतरिक यात्रा पर जोर देते

हुए, ध्यान, जप और नृत्य जैसी प्रथाओं के माध्यम से ईश्वर के प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव की तलाश कर परमानंद को प्राप्त करने की कोशिश करता है। इस्लाम के प्रति यह रहस्यवादी दृष्टिकोण बाहरी अनुष्ठानों की बजाय प्रेम, भक्ति और

आध्यात्मिक ज्ञान पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है। सूफी संप्रदाय अपने विश्वासों और प्रथाओं में व्यापक रूप से भिन्न हैं, जो अक्सर क्षेत्रीय संस्कृतियों और ऐतिहासिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए, अब्दुल-कादिर गिलानी द्वारा स्थापित कादिरिया सिलसिला, व्यक्तिगत धर्मनिष्ठता और दूसरों की सेवा के महत्व पर जोर देता हैऔर आध्यात्मिक अनुशासन और विनम्रता के मार्ग को बढ़ावा देता है। वहीं दूसरी ओर, नक्शबंदी सिलसिला आध्यात्मिक गुरु के मार्गदर्शन में मौन ध्यान और आत्मनिरीक्षण पर जोर देता है, जिसका उद्देश्य हृदय को शुद्ध करना और ईश्वर के साथ आध्यात्मिक मिलन प्राप्त करना है।

सूफी संप्रदायों ने ऐतिहासिक रूप से इस्लामी समाजों को आकार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंनेन केवल शिक्षा के केंद्र के रूप में काम किया हैबल्कि धार्मिक ग्रंथों, दर्शन, विज्ञान और साहित्य का भी ज्ञान फैलाया है। सहिष्णुता, करुणा और समावेशिता पर ध्यान केंद्रित करइनसूफी मतों ने सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा दिया और विभिन्न समुदायों के भीतर विभाजन की खाई को पाटा है।इसके अलावासूफी रहस्यवादियों ने सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों पर जोर, दमनकारी राजनीतिक शासन को चुनौती देने और हाशिए पर पड़े लोगों के हित में भी अपनी आवाज बुलंद की थी। प्रेम और एकता पर उनकी शिक्षाओं ने संघर्ष के समय शांति और सुलह के लिए आंदोलनों को प्रेरित किया है। वस्तुतः देखा जाए तो सूफी सिलसिले समाज में एक गहन आध्यात्मिक विरासत को रेखांकित करते हैं जो कि वैश्विक स्तर पर गूंजती रही है। उनकी शिक्षाओं और प्रथाओं की गहरी समझ विकसित कर, हम संस्कृतियों में सांप्रदायिक कल्याण की सार्वभौमिक खोज की अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

10.2 उद्देश्य

इस अध्याय में मध्यकालीन भारत में उपजे सूफी आन्दोलन पर विचार विमर्श किया जाएगा। इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे की:-

- सूफी कौन थे?
- सूफी मत की विशेषताएं क्या थी?
- इस्लामी जगत में सूफी मत के उदय की विकास यात्रा को समझ सकेंगे।
- दिल्ली सल्तनत के दौरान भारत में सूफियों के विकास को रेखांकित कर सकेंगे।
- इस काल में उभरे विभिन्न सूफी सिलसिलों का वर्णन कर सकेंगे।
- तत्कालीन भारतीय समाज पर सूफी मत के प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे।

10.3सूफी कौन थे?

सूफी शब्द की उत्पत्ति को लेकर इतिहासकारों के मध्य विभेद है और इस शब्द की व्याख्या अलग अलग सन्दर्भों में विद्वानों द्वारा की गई है। कुछ विद्वान् सूफी शब्द का अर्थ सफा (पवित्रता) से बतलाते हैं, अर्थात इस मत के अनुसार सूफी उन्हें कहा जाना चाहिए जो मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र व्यक्ति हों। एक दूसरे मत के अनुसार 'सफा' शब्द निष्कपट भाव को बतलाता है अर्थात सूफी उन व्यक्तियों के लिए व्यवहृत किया गया है जो परमात्मा के प्रति अगाध निश्चल भाव रखते हुए प्राणिमात्र के लिए भी अपने आचरण को शुद्ध रखते हों। इसी प्रकार एक अन्य मत के अनुसार सूफी शब्द को 'सोफिया' शब्द से निष्पन्न बतलाया गया है जिसका अर्थ ज्ञान होता है, इस आधार पर देखा जाए तो सूफी शब्द का प्रयोग ज्ञानी या परमज्ञानी व्यक्तियों के लिए किया गया है। परन्तु इन तीनों मतों को प्रतिपादित करते समय यह नहीं बतलाया गया है कि आखिर इन पवित्र, निश्चल और परमज्ञानी शब्दों का प्रयोग केवल एक वर्ग-विशेष के लोगों के लिए ही क्यों किया गया है जबकि यह सभी विशेषताएं या इन सभी गुणों का समावेश किसी अन्य व्यक्ति में भी होना संभव है।

इतिहासकारों द्वारा इस शब्द के कुछ अन्य अर्थ भी बतलाये गए हैं, जैसे की कुछ विद्वानों के अनुसार यह शब्द 'सफ' शब्द से निकला है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'आगे की पंक्ति' या 'प्रथम श्रेणी'।इस अवधारणा के अनुसार सूफी केवल उन्हीं व्यक्तियों को कहा जाता है जो ईश्वर के सर्वाधिक प्रिय होने के कारण क़यामत के दिन सबसे आगे खड़े किये जायेंगे। एक दूसरे मत के अनुसार कुछ विद्वान् इसे 'सुफा' शब्द से बना हुआ मानते हैं, सुफा शब्द का अर्थ चबूतरे से है जो कि अरब देश की की किसी मस्जिद के आहाते में स्थित किसी ऊँचे स्थल को इंगित करता है, जहाँ पैगम्बर मुहम्मद के कुछ प्रिय शिष्य प्राय: बैठा करते थे और उनका अधिकाँश समय आत्मसंताप, आत्म-चिंतन और परमात्मा के ध्यान में ही व्यवतीत होता था। संभवतः उनके इसी स्वभाव के कारण इन्हें सूफी नाम मिल गया हो। एक तीसरे मत के अनुसार सूफी शब्द का निर्माण 'सूफ' शब्द से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ 'ऊन' से अभिप्रेत किया जाता है। अर्थात सूफी शब्द का प्रयोग पहले पहल उन व्यक्तियों के लिए किया गया जो मोटे ऊनी वस्त्र पहनते और भोग विलास और ऐश्वर्यमय जीवन को छोड़ आध्यात्मिक साधनाओं को करते हुए सादा जीवन व्यवतीत करते थे।

10.4सूफी मत की विशेषताएं

सूफीवाद, जिसे अरबी में तसव्वुफ़ के नाम से भी जाना जाता है, इस्लाम के भीतर कई तरह की रहस्यमय मान्यताओं और प्रथाओं को अपने भीतर समाहित करता है। यूँ तो भारत और विश्व में कई सूफी सिलसिलों का विकास हुआ और इनमें से प्रत्येक मत की अपनी कुछ ख़ास विशेषताएं भी रही लेकिन फिर भी इन सब में कुछ समान विशेषताएं भी जरुर थी। हम यहाँ पर सूफीवाद की कुछ इसी प्रकार की विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं:

- सूफी संत ईश्वर की आंतरिक खोज, ध्यान, चिंतन और आत्म-अनुशासन जैसी प्रथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक विकास पर जोर देते थे। इसका लक्ष्य ईश्वर के साथ व्यक्तिगत औरअंतरंग संबंध का अनुभव करना होता था।

- प्रेम (इश्क) और भक्ति (इबादत) सूफी अभ्यास के केंद्र में हैं। सूफी अक्सर कविता, संगीत और नृत्य के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करते थे। वे इसके लिए समा (संगीत आयोजन) का सहारा लेते और इसका उपयोग परमानन्द की अनुभूति के लिए करते। हालाँकि कुछ सूफी सिलसिले ऐसे भी थे जो संगीत को निषिद्ध बताते हैं साथ ही तत्कालीन उलेमा वर्ग भी समा की इस प्रथा का घोर विरोधी था।
- सूफी मत विभिन्न सिलसिलों (तरीका) में विभाजित था, जिनमें से अधिकाँश सिलसिले उनके संस्थापकों के नाम पर ही जाने जाते हैं, उदाहरणतः चिश्ती, कादरी, सुहारवर्दी इत्यादि।प्रत्येक सिलसिले के उत्तराधिकार की अपनी एक आध्यात्मिक श्रृंखला होती थी जो अक्सर प्रसिद्ध सूफी संतों और उनके शिष्यों (मुरीद) के माध्यम से आगे बढ़ती है। ये मत/संप्रदाय अपने अनुयायियों को उनकी आध्यात्मिक यात्रा में मार्गदर्शन और सहायता प्रदान करते थे।
- शेख या पीर सूफी परंपरा के भीतर आध्यात्मिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। इसमें पीर और शिष्य (मुरीद)के बीच का संबंध महत्वपूर्ण है, जिसमें पीरअपने शिष्यों को मार्गदर्शन, आध्यात्मिक निर्देश और परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है।
- सूफीवाद मेंशिष्य को धिक्र/जिक्र (ईश्वर के नाम का जप या पाठ करना), ध्यान (मुराकबाह) और तपस्या (जुहद) जैसे अभ्यास करने होते हैं, ताकि आत्मा को शुद्ध किया जा सके और ईश्वर के करीब पहुँचा जा सके।
- सूफीवाद अक्सर आध्यात्मिक सत्य की सार्वभौमिकता और अन्य धार्मिक परंपराओं की सहिष्णुता पर जोर देता है। यह बाहरी मतभेदों की अपेक्षा धार्मिक शिक्षाओं के आंतरिक सार को अधिक महत्व देता है।
- सूफी साहित्य और कविता अक्सर आध्यात्मिक सत्य और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए प्रतीकवाद और रूपक का उपयोग करते हैं जिन्हें शाब्दिक शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल होता है।
- कुछ सूफी मत‘वहदत अल-वुजूद’ की (अस्तित्व की एकता) की अवधारणा पर विश्वास करते हैं। यह सिद्धांत सृष्टि/प्रकृति और ईश्वर की अंतर्निहित एकता पर जोर देता है।
- सूफीवाद ईश्वर के अनुभवात्मक ज्ञान (मारिफत) पर जोर देता है जो कि बौद्धिक समझ से परे है। यह ज्ञान व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभवों और प्रत्यक्ष धारणा के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।
- सूफीवाद आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में नैतिक व्यवहार, करुणा और मानवता की सेवा के महत्व पर जोर देता है। इस पहलू को अक्सर 'नैतिक चरित्र को परिपूर्ण करना' (तज़कियाह अल-नफ़्स) कहा जाता है।
- सूफी गतिविधियों के केंद्र को आश्रम (खानकाह) कहा जाता था। जहाँ पीर अपने शिष्यों को शिक्षा और अन्य मार्गदर्शन प्रदान करते थे। पीर की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा भी इसी खानकाह से जुड़ी होती थी, जो पीर जितना प्रसिद्द होता था उसके शिष्यों की संख्या भी उसी अनुपात में बढ़ती जाती थी। इन खानकाहों को

सुल्तानों और सामाजिक पदानुक्रम में उच्च स्तर पर बैठे व्यक्तियों द्वारा दान और वृत्ति भी प्राप्त हुआ करती थी।

कुल मिलाकर, सूफ़ीवाद इस्लाम के भीतर एक समृद्ध और विविध परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जो आस्था के आंतरिक, रहस्यमय आयामों पर ध्यान केंद्रित करता है और ईश्वर के साथ एक गहरा, व्यक्तिगत संबंध बनाने का प्रयास करता है।

10.5 इस्लाम जगत में सूफी आन्दोलन का विकास

इस्लामी रहस्यवाद कई चरणों में विकसित हुआ था, जिनमें प्रारंभिक रूप से सादगी भरे त्यागपूर्ण जीवन के प्रति लगाव, दूसरे दौर में दिव्य प्रेम के शास्त्रीय रहस्यवाद का विकास हुआ और तीसरे चरण में रहस्यवादियों के सुसंगठित तरीक़ों या सिलसिलों का उदय और प्रसार शामिल है। यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि इस्लामी रहस्यवाद का प्रारम्भिक इतिहास काफी हद तक व्यक्तिगत रहस्यवादी अनुभव का इतिहास है।

सूफ़ीवाद का पहला चरण प्रारंभिक उमय्या काल (661-749) दुनियावी आकर्षण के पकड़ते ज़ोर के खिलाफ प्रतिक्रिया के रूप में पवित्र समूहों के बीच प्रकट हुआ। कयामत के दिन के बारे में क़ुरान के शब्दों पर निरंतर ध्यान लगाने ने इन तपस्वियों की 'सदा रुदन की अवस्था में रहने वाले' और इस दुनिया को 'दुखों की बस्ती' मानने वाले लोगों के रूप में छवि गढ़ी। वे धर्मपरायणता कामों और विशेष रूप से रात की प्रार्थनाओं के प्रति झुकाव रखते थे।प्रारंभ में सूफ़ी लोग (आठवीं और नवीं शताब्दी में) अरब में दिखलाई पड़े और काफी समय तक उनकी पहचान उनके ऊनी लिबासों से की जाती रही। 'साधक' के लिए सूफ़ी शब्द का प्रयोग ईसा की नवीं शताब्दी से प्रचलित होने का प्रमाण मिलता है। ये सूफ़ी सूफ़ीमनिश होते थे अर्थात किसी भी धर्म या व्यक्ति से बैर न रखने वाले होते थे।

मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद राजनीतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक परिस्थितियों ने तत्कालीन वातावरण पर ऐसा प्रभाव डाला कि मानव रहस्य-तत्व के चिंतन की ओर उन्मुख हो गया। विधि-विधानों एवं बाह्य आडंबरों के विरुद्ध एक प्रचंड आवाज सामने आ रही थी। इन परिस्थितियों के मूल कारण उम्मया शासक वर्ग के बीच गृह-युद्ध, निरंकुशता एवं उलेमा वर्ग की कठोर जातीयता के आदर्शों में ख़ोजे जा सकते हैं। आपसी झगड़े, वैमनस्य तथा शासक वर्ग की विलासिता ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि मानव को विवश होकर ईश्वर के प्रत्यक्ष प्रेम की ओर खींच लिया था। आरबेरी ने लिखा है कि सूफ़ीवाद का उद्भव इस्लाम को प्राप्त होने वाली राजनीतिक सफलता का प्रत्यक्ष परिणाम था। ऐतिहासिक अनुसंधानों से यह भी पता चलता है कि सूफ़ीमत के विकास में ईरान का बड़ा हाथ था। इस्लाम ने ईरान में प्रवेश तो किया किंतु ईरान ने अरब की संस्कृति वास्तविक पर विजय पायी थी। कुछ समय बाद इस्लाम में दो शाखाएँ स्पष्टतः पृथक दिखाई देने लगीं, एक अरब में जन्मी इस्लामी शरीअत की और दूसरी ईरान में पनप रहे सूफ़ीमत के तरीक़त की।

प्रेम के तत्व की शुरुआत, जिसने 'सादगी भरे त्यागपूर्ण जीवन' को रहस्यवाद में बदल दिया, का श्रेय बसरा की एक महिला राबिया-अल-अदावियाह (मृत्यु 801) को दिया जाता है, जिन्होंने सबसे पहले अल्लाह (ईश्वर) के प्रति

प्रेम का सूफ़ी आदर्श तैयार किया था, जो निःस्वार्थ भाव से भरा था, स्वर्ग और नर्क के डर के बिना। राबिया के बाद के दशकों में, इस्लामी दुनिया में हर जगह रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ीं, इसके पीछे कुछ-बहुत कारण ईसाई साधुओं के साथ होने वाला विचारों का आदान-प्रदान भी था। प्रारंभिक पीढ़ियों के कई रहस्यवादियों ने अपने प्रयासों को तवक़्क़ुल यानी ईश्वर में पूर्ण विश्वास पर केंद्रित किया था, जो सूफ़ीवाद की एक केंद्रीय अवधारणा बन गई।रहस्यवाद का एक इराकी सम्प्रदाय अपने सख्त आत्म-नियंत्रण और मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि के लिए प्रसिद्ध हो गया. इस इराकी मत की शुरुआत अल-मुसासिबी (मृत्यु 857) द्वारा की गई थी - जिसका मानना था कि भगवान के साथ संगति की तैयारी में आत्मा को शुद्ध करना ही तपस्या का एकमात्र ध्येय है। संयम और ज्ञान की इन शिक्षाओं को बगदाद के जुनैद (910 में मृत्यु) द्वारा परिपूर्ण रूप प्रदान किया गया। सूफ़ीवाद के मिस्र के एक मत में, न्युबियन दू अल-नून (मृत्यु 859) ने मा'रिफ़ा ("अंतर्ज्ञान") को बौद्धिक ज्ञान के विपरीत प्रस्तुत किया; अपनी गीतात्मक प्रार्थनाओं में उन्होंने सारी प्रकृति को ईश्वर की स्तुति में शामिल कर लिया - यह विचार क़ुरान पर आधारित था और बाद में इसने फ़ारसी और तुर्की कविता में विस्तार ग्रहण किया। ईरानी अबू यज़ीद अल-बिसामी (मृत्यु 874) को आमतौर पर स्वयं को विनष्ट कर देने के महत्वपूर्ण सिद्धांत अर्थात् फ़ना का प्रणेता माना जाता है; उनका यह विचित्र प्रतीकवाद बाद के रहस्यमय कवियों की शब्दावली का हिस्सा बन गया। इसी समय ईश्वरीय प्रेम की अवधारणा ने अधिक केंद्रीय स्थान ले लिया, विशेषकर इराकी सूफ़ियों के बीच।

मानव स्वभाव और पैगंबर मुहम्मद के अस्तित्व के बारे में रहस्यमय अंतर्दृष्टि पर आधारित शुरुआती धर्मशास्त्रीय संकल्पनाओं में से एल सहल अल-तुस्तरी (मृत्यु लगभग 896) जैसे सूफ़ियों द्वारा तैयार की गई थी। बाद में कुछ यूनानी दार्शनिक विचारों को अल-साकीम अल-तिर्मिदी (मृत्यु 898) द्वारा अपनाया गया। सहल, अल-हुसैन इब्न मंसूर हल्लाज के गुरु थे जो अपने प्रसिद्ध कथन अनलहक, "मैं ही परमसत्य हूँ" के लिए जाने जाते हैं, जिसकी बाद में एक सर्वेश्वरवादी व्याख्या की गई। लेकिन, वास्तव में यह केवल उनके हुवा हुवा ("वह वह") के सिद्धांत का संक्षेपण है: ईश्वर स्वयं को अपनी सृष्टि के रूप में प्रेम करता है, और आदम को उसने अपनी ही छवि में रचा है। हल्लाज को उनकी शिक्षाओं के परिणामस्वरूप 922 ई. में बगदाद में फाँसी दे दी गई; वे बाद के रहस्यवादियों और कवियों के लिए 'प्रेम के शहीद'के रूप में सर्वोत्कृष्ट स्थान रखते हैं।

इन आरंभिक शताब्दियों में सूफ़ी विचार छोटे-छोटे समूहों में प्रसारित होते रहे थे। 10वीं शताब्दी में रूढ़िवादियों के बढ़ते संदेह को शांत करने के लिए सूफ़ीवाद के सिद्धांतों के बारे में प्रबंध-ग्रंथ लिखना आवश्यक समझा गया; 10वीं सदी के अंत में अबू शालिब मक्की, सरराज और कालाबादी द्वारा अरबी में रचित सार-संग्रह, और 11वीं सदी में क़ुशायरी और फ़ारसी में हुजविरी द्वारा रचित सार-संग्रह से पता चलता है कि इन लेखकों ने सूफ़ीवाद का बचाव करने के भरपूर प्रयत्न किए।

शास्त्रीय सूफ़ीवाद की पंक्ति में अंतिम महान शख़्स अबू हामिद अल-ग़ज़ाली (मृत्यु 1111 ई.) हैं, जिन्होंने कई अन्य कृतियों के अलावा, इय्याह उलुम अल-दीन ("धार्मिक विज्ञान का पुनरुद्धार") लिखा जिसके माध्यम से उन्होंने

बढ़ते धर्मशास्त्रीय रुझानों के खिलाफ उदारवादी रहस्यवाद की स्थापना की जो ईश्वर और दुनिया को समान मानता था और इस तरह उन्होंने लाखों मुसलमानों के विचार को आकार दिया।

इसके बाद सूफ़ी परम्परा का तीसरा चरण आकार लेता है, रहस्यवादी तरीक़े या सिलसिले (एक पीर-संस्थापक की शिक्षाओं पर केंद्रित सूफ़ी बंधुत्व के समूह) आकार लेने लगे। 13वीं शताब्दी इस्लाम की राजनीतिक व्यवस्था मंगोलों के आक्रमण और अब्बासी ख़िलाफ़त के अंत के कारण राजनीतिक रूप से प्रभावित थी, वहीं यह सूफीवाद का स्वर्ण युग भी था। स्पेन में जन्मे इब्न अल अरबी ने एक व्यापक धर्मशास्त्रीय व्यवस्था बनाई (ईश्वर और संसार के बीच रिश्ते के सम्बंध में) जिसने 'अस्तित्व की एकता' या वहादत-उल वुजूद के सिद्धांत के लिए आधारशिला बनायी।उनके मिस्र के समकालीन इब्न अल-फ़रीद ने अरबी में बेहतरीन रहस्यवादी कविताएँ लिखीं। दो अन्य महत्वपूर्ण रहस्यवादी, फ़ारसी कवि फ़रीद अल-दीन 'अत्तार' और मध्य एशियाई पीर नजमुद्दीन कुबरा थे, जिन्होंने उन मनोवैज्ञानिक अनुभवों की विस्तृत चर्चा की, जिनके माध्यम से किसी रहस्यवादी को गुजरना पड़ता है।

फ़ारसी भाषा के सबसे महान रहस्यमय कवि जलाल अल-दीन अल-रूमी (1207-73), रहस्यमय प्रेम से प्रेरित होकर अपनी गीतात्मक कविताओं की रचना की जिसका उन्होंने अपने रहस्यमय प्रिय तबरेज़ के शम्स अल-दीन को प्रतीकात्मक रूप से श्रेय दिया। लगभग 26,000 दोहों में रूमी की ये उपदेशात्मक कविताएँ- मसनावी-यी मनावी - एक ऐसी रचना जो फ़ारसी पढ़ने वाले रहस्यवादियों के लिए कुरान के बाद दूसरे स्थान पर है - यह रहस्यवादी विचारों का एक विश्वकोष है जिसमें हर कोई अपने धार्मिक विचारों का अनुभव पा सकता है। रूमी ने घूमने वाले दरवेशों के सिलसिले को प्रेरित किया - जो शानदार संगीत के साथ एक विस्तृत नृत्य अनुष्ठान के माध्यम से परमानंद की तलाश करते थे।इसके साथ ही मध्य एशिया, मिस्र और यूरोप के साथ-साथ हिंदुस्तान में सूफ़ीवाद के प्रसार ने ख़ानकाहों और पीरों को केंद्र में रखते हुए आकार लेने वाले कई सिलसिलों को जन्म दिया, जो मूलतः अपने संस्थापक सूफ़ी पीर की शिक्षाओं में आस्था रखते थे और उनका प्रसार करते थे। भारत में उभरने वाले ऐसे सिलसिलों का अगले खंड में अध्ययन किया गया है।

10.6 भारत में सूफी मत का विकास

भारत में सूफीवाद का आरम्भ अरब व्यापारियों के भारत आने के साथ ही हो गया था। व्यापारियों के साथ ही अरब और उसके आस पास के देशों के धर्मोपदेशक भारत आने लगे और पहलेपहल ये लोग मालाबार के समुद्र तट के समीप और पेशावर में बसे। भारत में बसने वाले पहले प्रसिद्द सूफी संतोंमें अल-हुजुविरी (1088 ई.) सर्प्रमुख व्यक्ति थे जिन्हें लोकप्रिय रूप से 'हजरत दातागंज' के नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त थी। मूलतः ये अफगानिस्तान के गजनी शहर के निवासी थे और इस्लाम के प्रकांड विद्वान् और धर्मोपदेशक के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त थी। इन्होंने फारसी भाषा में 'कश्फ़-उल महजूब' नामक ग्रन्थ की रचना की थी जिसे आज भी सूफी मत पर लिखे एक मानक दस्तावेज के रूप में स्वीकार किया जाता है।इस ग्रन्थ में इन्होंने सूफी मत के बारे में स्पष्टीकरण तो दिया ही है साथ में तत्कालीन समय में प्रचलित विविध सूफी सम्प्रदायों का भी उल्लेख किया है।हालाँकि इस ग्रन्थ में उन चार प्रमुख सिलसिलों का उल्लेख

नहीं किया गया है जो भारत में प्रसिद्द हुए।इनकी दरगाह वर्तमान पाकिस्तान के लाहौर में अवस्थित है (मृत्यु 1128 ई.)। वस्तुतः देखा जाए तो भारत में सूफी सिलसिलों की स्थापना 13वीं शताब्दी में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद ही हुई। 13वीं शताब्दी के दौरान जब इस्लामी दुनिया में मंगोलों का आक्रमण हुआ तो सूफियों ने उस स्थान से पलायन कर लिया और भारत सूफियों की शरणास्थली के रूप में अनुकूल सिद्ध हुआ। इस दौरान भारत के विभिन्न भागों में खानकाहों की स्थापना की गई, और 14वीं शताब्दी के मध्य तक मुल्तान से बंगाल और पंजाब से लेकर देवगिरी तक पूरे भारत राष्ट्र में वे सक्रिय हो चुके थे। सूफीवाद मूलतः ईरान और मध्यएशिया से उभरा था इस कारण प्रारंभिक सूफियों में इस्लामी दुनिया से सम्बंधित सिद्धांत और मान्यताएं प्रचलित थी। परन्तु बहुत जल्द ही भारत में सूफीवाद का विकास होने के कारण इसमें भारतीय तत्वों का समामिलन भी हो गया।भारत में सूफीवाद के विकास में योगदान देने वाले प्रमुख कारकों में से एक स्थानीय सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं के साथ अनुकूलन और संश्लेषण करने की इसकी क्षमता थी। भारत में सूफी संतों ने अक्सर अपनी शिक्षाओं को व्यक्त करने के लिए स्थानीय भाषाओं, रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को अपनाया, जिससे वे मुस्लिम समुदाय से परे व्यापक जनाधार तक पहुँच सके। इस समन्वयात्मक दृष्टिकोण ने सूफीवाद को हिंदुओं, सिखों और अन्य देशी समुदायों के आध्यात्मिक झुकाव के साथ प्रतिध्वनित होने की अनुमति दीजिससे रहस्यमय प्रथाओं और विश्वासों का एक अनूठा मिश्रण विकसित हुआ। हालाँकि इन सबके बावजूद भी भारतीय सूफीवाद पर बाहरी प्रभाव को नाकारा नहीं जा सकता, परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह भारतीय परिवेश में ही बढ़ा और पुष्पित पल्लवित हुआ।

10.7 भारत में सूफी सिलसिले

सल्तनत काल के दौरान में भारत में कई सूफी सिलसिलों ने लोकप्रियता हासिल करी। आगे हम उन्हीं में से कुछ प्रमुख सूफी सिलसिलों की चर्चा करेंगे।

10.7.1 चिश्ती सिलसिला

भारत में प्रचार करने वाले सूफ़ी संप्रदायों में सर्वप्रसिद्ध सिलसिलाचिश्ती सिलसिला ही है। इस सिलसिले का सबसे पहला प्रचारक या संस्थापक 'ख्वाजा अबू इसहाक़ शामी चिश्ती' को माना जाता है जो कि हजरत अली की नवीं पीढ़ी से सम्बंधित माने जाते हैं। चूंकि वे खुरासान के चिश्त नगर में निवास करते थे इस कारण उन्हें चिश्ती कहा जाने लगा था। भारत में इस सिलसिले का संथापक 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती'(1141-1236 ई.) को माना जाता है जिनका जन्म सीस्तान के संजर नामक नगर में हुआ था और इनका भारत आगमन गोरी के आक्रमण के समय हुआ। इन्होंने कई प्रसिद्ध सूफ़ी पीरों से अपना संसर्ग बढाकर उनसे आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति की। ये भारत आकर सर्वप्रथम लाहौर में हजरत दातागंज की समाधि के समीप रुके और बाद में अंततः इन्होंने सन 1206 ई. में अजमेर को अपना स्थायी ठिकाना बना लिया।भारत में इनके क्रियाकलापों का कोई प्रमाणिक लेखा जोखा तो प्राप्त नहीं है परन्तु इतना तय है कि उन्हें मुसलमानों और गैर मुसलमानों दोनों का आदर प्राप्त था।

इनके प्रमुख शिष्यों में ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार'काकी' (मृत्यु 1235) और शेख हमीदुद्दीन नागौरी (मृत्यु 1274) हुए।कुतुबुद्दीन बख्तियार काकीका जन्म फरगाना में हुआ और इनका केंद्र दिल्ली था, वहीं नागौरीने अपनी गतिविधियों का केंद्र राजस्थान के नागौर को बनाया था। नागौरी ने किसानों की भाति एक सादा जीवन अपनाया और इन्होंने स्वयं तथा इनके उत्तराधिकारियों ने फारसी भाषा में लिखे पदों का हिन्दवी में अनुवाद किया था। संभवतः इस प्रकार का यह भारत में पहला अनुवाद रहा होगा।'काकी' ने अपने संप्रदाय के उत्सवों में 'समा' को बहुत महत्त्व दिया था। इनके प्रमुख शिष्य ख्वाजा फ़रीदुद्दीन मसूद (1175-1265) थे जिन्हें बाबा फरीद या गंज शंकर के नाम से भी प्रसिद्धि प्राप्त है। इन्होंने पंजाब प्रांत के पाकपत्तन नामक स्थान पर तपस्या की थीजहाँ आज भी प्रतिवर्ष उर्स मनाया जाता है। इन्होंने दिल्ली से पलायन कर पंजाब के अजोधन को अपना केंद्र बना लिया था और अपना जीवन इन्होने यहीं के खानकाह में बीताया। इनके खानकाह में अक्सर नाथपंथी योगी आकर इनसे रहस्यवाद के स्वरुप पर विचार विमर्श किया करते थे।पंजाब में इनकी प्रसिद्धि का अंदाजा इस बात से भी लगया जा सकता है कि इनकी मृत्यु के लगभग 300 वर्ष पश्चात संकलित सिक्खों के प्रमुख आदि ग्रन्थ में भी इनके पदों को स्थान दिया गया है।आगे चलकर इनके नाम पर चिश्तिया लोगों का एक उप-संप्रदाय 'फ़रीदिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बाबा फरीद के प्रमुख शिष्यों में निजामुद्दीन औलिया (1236-1325)का नाम तो जगजाहिर ही है।इनका जन्म बदायूं में हुआ था। इन्होंने दिल्ली के सात सुल्तानों का शासन देखा, तत्कालीन प्रमुख इतिहासकार बरनी और इनके प्रिय शिष्य अमीर खुसरो अपनी लेखनी में इनके सामाजिक और धार्मिक जीवन के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। इनके उत्तराधिकारियों ने पूरे भारत में इनके मत का प्रचार प्रसार किया। 'फ़वायद उल फवाद' नामक ग्रन्थ में जिसके लेखक हसन सिज्जी हैं ने उनकी शिक्षा और वार्तालाप (मलफूजात) को संकलित किया है। इन्हीं के नाम पर आगे चलकर 'निजामिया' सम्प्रदाय विकसित हुआ इसमें पुनः आगे चलकर 'हिसामिया' एवं 'हमजशाही' नाम की दो शाखाएँ प्रचलित हुई। इनमें से हमजशाही शाखा के एक प्रसिद्द प्रचारक सैयद गेसूदराज हुए जिनकी समाधि दक्षिण भारत में गुलबर्गा नामक स्थान में अवस्थित है।

निजामुद्दीन औलिया के कई प्रसिद्द उत्तराधिकारी हुए जिनमें से एक प्रमुख शिष्य शेख बुरहानुद्दीन गरीब (मृत्यु 1340) हुए। मोहम्मद बिन तुगलक ने इन्हें अपने शासनकाल में दक्खन जाने क लिए मजबूर कर दिया था जिसके पश्चात इन्होंने दौलताबाद को अपना केंद्र बनाया और यहीं रह कर चिश्ती मत का प्रचार प्रसार किया। इनके दूसरे प्रमुख शिष्य नसीरूद्दीन महमूद (मृत्यु 135६) हुए, जिन्हें चिराग ए दिल्ली के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। इन्होंने चिश्ती सम्प्रदाय की उन प्रथाओं का परित्याग कर दिया था जो इस्लाम की कट्टरता से टकराती थी और इस प्रकार इन्होंने एक प्रकार से तत्कालीन उलेमा वर्ग से समझौता कर लिया और उनसे अनुरोध किया की वे चिश्ती सम्प्रदाय के प्रमुख प्रथा समा के प्रति अपने रवैये को नरम रखें।

10.7.2 सुहरावर्दी सिलसिला

यह सल्तनतकाल के सबसे प्रभावशाली और प्रधान सिलसिलों में शामिल था।भारत में इस सिलसिले का संस्थापक बहाउद्दीन 'जकारिया' (1182-1262) को माना जाता है, जिनका जन्म मुल्तान में हुआ था। जब ये मक्का की यात्रा कर लौट रहे थे तभी ये शेख शिहाबुद्दीनसुहरावर्दी के संपर्क में आए और उनके मुरीद बन गये थे। इन्होने अपनी गतिविधियों का केंद्र मुल्तान और सिंध को बनाया था। चिश्ती संतों के विपरीत इन्होंने राज्य का संरक्षण प्राप्त कर शासकों से अपने संबंध बनाये और काफी मात्र में धनार्जन भी किया। इन्होने दिल्ली की गददी की लड़ाई में खुलकर इल्तुतमिश का साथ दिया जिसका पारितोषिक इन्हें 'शेख उल इस्लाम' के खिताब तथा अनुदानों के रूप में प्राप्त हुआ।आगे चलकर यह संप्रदाय भी कई उप-संप्रदायों में विभाजित हुआ, इनमें से कुछ 'बाशरा' (वैध) एवं कुछ को'बेशरा' (अवैध जो शरियत की अवहेलना करते हों) करार दिया गया।

शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने अपने सिलसिले के प्रचार के लिए अपने कुछ अन्य मुरीदों को भी भारत भेजा था। सल्तनत काल में इनके तीन मुख्य केंद्र पंजाब, सिंध और बंगाल थे। इनके शिष्य शेख जलालुद्दीन तबरीजी ने बंगाल में अपनी खानकाह स्थापित कर अपने मत का प्रचार किया। कहा जाता है कि बंगाल के इसलामीकरण इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।इतिहास के विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि इस सिलसिले के सूफियों ने चिश्तियों के उलट हिन्दुओं को इस्लाम अपनाने के लिए प्रेरित किया जिसमें इस कार्य हेतु इन्हें शासक वर्ग का भी सहयोग प्राप्त था।

10.7.3 कादिरिया सिसिला

इस सिलसिले के प्रवर्त्तक अब्दुल कादिर जिलानी (मृत्यु 1166) थे जिन्होंने इसकी स्थापना बग़दाद में की थी। वस्तुतः देखा जाए तो यह मध्यवर्ती इस्लामिक देशों का प्रमुख सम्प्रदाय था। भारत में इसका प्रवेश 14वीं शताब्दी के दौरान हुआ और इसकी गतिविधियों का केंद्र पंजाब, सिंध तथा दक्खन था।इसके सर्व-प्रथम प्रचारक सैयद मुहम्मद गौस थे, जिनका जन्म एलिप्पो में हुआ और ये भ्रमण करते हुए भारत की ओर आये थे। इनकी ख्याति इतनी बढ़ गयी कि दिल्ली का तत्कालीन सुल्तान सिकंदर लोदी इनका मुरीद बन गया था और उसने अपनी कन्या का विवाह भी इनसे कर दिया था। इस सम्प्रदाय के सूफियों का दृष्टिकोण कट्टरपंथी था और उलेमा वर्ग के नजदीक था। यह एक शहर केन्द्रित सम्प्रदाय था जो शासक वर्ग से संबंध बनाये रखने का हिमायती था तथा इसका उद्देश्य मुसलामानों की धार्मिक जिन्दगी में सुधार लाना था। कादिरिया के अंतर्गत भी आगे चलकरकई शाखाएँ विभाजित हुई इनमें सबसे प्रसिद्ध शाखा 'मियाँ खेल' थी जिसे 'मियाँ मीर'(1607- 1692) ने प्रचारित किया था। ये अकबर के शासनकाल में अध्ययन के उद्देश्य से लाहौर आये थे, शहजादा दाराशिकोह की इनमें बड़ी श्रद्धा थी और वह इनके शिष्य मुल्लाशाह का मुरीद बन गया था। उसने मियाँ मीर की जीवनी 'सक़ीनतुल औलिया' नाम से लिखी हैजिसमें उसने इन्हें एक महान् त्यागी और तपस्वी के रूप में प्रदर्शित किया है।

10.7.4 नक्शबंदिया सिलसिला

इस संप्रदाय के प्रणेता ख्वाजा बहाउद्दीन 'नक्शबंद' (मृत्यु 1446) थे जिन्होंने इसकी शुरुआत ईरान से की थी। इस सिलसिले को भारत में प्रचलित करने का श्रेय ख्वाजा बाकी बिल्ला 'बेरंग' (मृत्यु 1660) को जाता है। इस पंथ के नामकरण के बारे में यह बतलाया जाता है कि वह उन्हें कपड़े पर चित्रों के छापने की जीविका के कारण मिली थी, हालाँकि एक अन्य मुस्लिम लेखक यह उल्लेख करता है कि इस पदवी का कारण बहाउद्दीन का अध्यात्मविद्या-संबंधी गूढ़-से-गूढ़ बातों का स्पष्ट मानसिक चित्रण करना था। भारत में इस संप्रदाय का सर्वाधिक प्रचार अहमद फारूखी दिया जाता है, जो सरहिंद के निवासी थे। ये एक प्रतिभाशाली संत थे जिनका सभी संप्रदायों पर अधिकार माना जाता था। इन्होंने मूल इस्लाम धर्म की सुन्नी-शाखा के महत्त्व को बढ़ाने का भरसक प्रयास किया और शिया मत कीमान्यताओं का खंडन किया। इनके पत्रों का संकलन 'मक्तुवाद ए रब्बानी' के नाम से प्रसिद्द है। मुग़ल बादशाह औरंगजेब इनके पुत्र 'मासूम' का मुरीद था।

10.8 सूफियों की सामाजिक भूमिका

इस्लाम के भीतर रहस्यवादी सूफियों की सामाजिक भूमिका बहुआयामी रही है। अपनी आध्यात्मिक खोजों से परे, सूफियों ने समाजों को आकार देने और विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चुनौतियों का समाधान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वस्तुतः देखा जाए तो सूफियों ने ऐतिहासिक रूप से सामाजिक सामंजस्य और सद्भाव के एक दूत के रूप में कार्य किया है। उन्होंने प्रेम, करुणा और समावेशिता जैसी भावनाओं के माध्यम से विभिन्न समुदायों के बीच एकता की भावना को बढ़ावा दिया। वे अक्सर जातीय, सांप्रदायिक और सामाजिक विभाजन से ऊपर उठकर विभिन्न पृष्ठभूमि के लोगों के बीच सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा देते थे। यह समावेशिता प्रत्येक मनुष्य में दिव्य उपस्थिति को देखने के सूफी सिद्धांत में निहित है, जिससे सामाजिक अंतःक्रियाओं में सम्मान और सहानुभूति को बढ़ावा मिलता है।

इसके अलावासूफी संत सामाजिक सेवाओंके रूप में मानवीय सहायता प्रदान करने में सहायक रहे हैं। कई सूफी संप्रदायों ने धर्मार्थ नींव की स्थापना की, जिन्हें ज़ाविया या खानकाह के रूप में भी जाना जाता है, जो कि आध्यात्मिक अभ्यास और सामुदायिक कल्याण दोनों के लिए केंद्र के रूप में कार्य करते थे। इन संस्थाओं ने बेघरों को आश्रय, भूखों को भोजन और बीमारों को चिकित्सा सेवा प्रदान करते हुए सामाजिक पीड़ा को कम करने के लिए सूफीवाद की व्यावहारिक प्रतिबद्धता को भी दर्शाया है।साथ ही इन सूफियों के खानकाहों ने शहरीकरण की प्रक्रिया को भी बल पहुँचाया। सूफियों द्वारा अपने खानकाह के इर्द-गिर्द ही वार्षिक उर्स (आध्यात्मिक पीर के मृत्यु दिवस पर आयोजित होने वाला समारोह) का आयोजन किया जाता था जिसने निश्चित रूप से व्यापार, वाणिज्य और हस्तशिल्प के उत्पादन में उत्तरोतर वृद्धि को प्रोत्साहित किया।हम इससे पहले भी ऊपर इस बात की चर्चा कर चुके हैं कि इन खानकाहों को दान या वृत्ति के रूप में राजकीय सहयता उपलब्ध रहती थी और कालांतर में तो कई सूफी भूमिपती भी बन गए थे। आदर्श तौर यदि देखा जाए तो चिश्ती संत राजदरबार के ऐश्र्वर्यमय जीवन से दूर अपने खानकाह में ही सादा जीवन व्यवतीत करते थे।वस्तुतः समय के साथ ही चिश्तियों ने तत्कालीन सुस्थापित सामाजिक और राजनैतिक संरचना को कोई विकल्प उपलब्ध न होने के कारण स्वीकार कर लिया था।परन्तु इतना सब परिवर्तन होने के पश्चात भी

खानकाह के जीवन पद्धति और सामाजिक संरचना में कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं हुआ। दरअसल ऐसे खानकाह अपने खर्च हेतु राजकीय संरक्षण पर न होकर निःस्वार्थ दान (फुतूह) पर आश्रित थे।

अपनी इन धर्मार्थ गतिविधियों के अलावासूफियों ने राज्य में संघर्ष के समय मध्यस्थ और शांति निर्माता के रूप में भी कार्य किया है। हालाँकि यह बात भी सत्य है कि सूफियों ने सुल्तानों की नीतियों का विरोध भी किया है और इसका एक प्रमुख उदाहरण मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में घटित घटना है।वस्तुतः देखा जाए तो कभी भी किसी भी सूफी संत या चिश्ती पीरों द्वारा राज्य की सुस्थापित राजनैतिक संरचना को कटघरे में खड़ा नहीं किया गया अपितु उन्होंने तो राज्य के पदाधिकारियों से सिर्फ यह मांग करी की वे राजस्व की वसूली के समय सामान्य प्रजा से नरमी बरतें। दरअसल सूफियों के आध्यात्मिक व्यवहार, कुशाग्र विवेक और निष्पक्षता की प्रतिष्ठा ने उन्हें विवादों को सुलझाने और समाज के भीतर युद्धरत गुटों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम बनाया था। उन्होंने न्याय और सुलह के सिद्धांतों को अपनाकरअक्सर स्थिरता और शांति बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे समुदायों को सामाजिक और राजनीतिक स्थिरता में योगदान मिला है।

सूफी संत सांस्कृतिक समृद्धि और संरक्षण में भी प्रभावशाली रहे हैं। उन्होंने कविता, संगीत, नृत्य और अन्य अभिव्यंजक कलाओं के माध्यम से जहाँ उतकृष्ट आध्यात्मिक सत्य को व्यक्त किया है वहीं अपने अनुयायियों के बीच भक्ति भावना को भी प्रेरित करने का कार्य किया है। इन कलात्मक अभिव्यक्तियों ने न केवल व्यक्तियों के आध्यात्मिक अनुभवों को गहरा किया है बल्कि इस्लामी समाज की सांस्कृतिक विरासत को भी समृद्ध किया है। हालाँकि उत्तर मध्यकालीन लेखों में सूफियों को मिशनरी (एजेंट) के रूप में वर्णित किया गया है। शेख मुइनीदीन चिश्ती पर लिखी एक जीवनी से इस बात प्रकाश पड़ता है कि उन्होंने गैर मुस्लिम लोगों का धर्म परिवर्तन करवाने में सक्रिय हिस्सेदारी की थी।इसी प्रकार की बातें 13वीं – 14वीं शताब्दी के दौरान दक्षिण की तरफ जाने वाले सूफियों के बारे में भी लिखी गई हैं, उनके बारे में यहाँ तक उल्लेख किया गया है कि वे कट्टर इस्लाम प्रचारक थे और उन्होंने जेहाद छेड़ रखा था। मीर सैय्यद अली हमदानी जो कि 14वीं शताब्दी के दौरान धर्म प्रचार और धर्म परिवर्तन के उद्देश्य से कश्मीर गया था, अपने प्रयासों में असफल रहा। सुहरावर्दी सूफियों में से भी कई सूफी धर्मप्रचार के कार्य में रत थे। इस बात पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है की सभी सूफी इस कुचक्र का भाग नहीं थे, इन सूफी और इनके उत्तराधिकारियों ने गैर मुस्लिमों के प्रति सहिष्णुता का व्यावहार पेश किया था। शेख निजामुद्दीन औलिया एक अवसर पर यह बतलाते हैं कि कई हिन्दुओं द्वारा इस्लाम को सच्चा धर्म बतलाया गया है और वे इसे ग्रहण नहीं करना चाहते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक धर्म में अपने विश्वास और अपनी पूजा पद्धतियाँ होती हैं। आरंभिक सूफियों के बारे में तो इस बात के बहुत कम ही प्रमाण मिलते हैं कि उन्होंने दक्षिण में धर्म-युद्ध छेड़ रखा था। और हाँ कुछ गैर-मुस्लिम धर्म की जातियां जो सूफियों और उनकी दरगाहों की और आकृष्ट होकर उनके भक्त बन गए हों उन्होंने धीरे धीरे इस्लाम के प्रभाव में आकर इस्लाम धर्म अवश्य ग्रहण कर लिया होगा।

समाज के प्रति अपने महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद भीसूफियों को अपनी इस पूरी यात्रा में चुनौतियों और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। और यह चुनौती विशेष रूप से उन्हें रूढ़िवादी धार्मिक अधिकारियों (उलेमा) से प्राप्त

हुई, जो उनकी रहस्यमय छवि और जनता के बीच उनकी लोकप्रियता पर संदेह करते थे। हालाँकि अल गजाली ने सूफी और उलेमा के मध्य समन्वय करवाने की कोशिश अवश्य की थी पर वे इसमें नाकाम रहे। पूरे सल्तनत काल के दौरान दोनों के बीच अविश्वास का भाव बना रहा। उलेमा वर्ग को सर्वाधिक आपत्ति उनके समा प्रथा और धार्मिक मेल स्थापित करने से थी। आगे चलकर शेख नसीरुद्दीन (चिराग ए दिल्ली)और गेसुदराज जैसे प्रसिद्द सूफी संतों ने चिश्ती सम्प्रदाय में कुछ कट्टरपंथी इस्लामिक आयामों को जोड़ा ताकि उलेमा वर्ग का आक्रोश कुछ शांत हो सके अर्थात उन्होंने उलेमा वर्ग से मिलते जुलते सैद्धांतिक दृष्टिकोण को मान्यता प्रदान कर दी थी।इसके बावजूद, सूफीवाद एक जीवंत आध्यात्मिक परंपरा के रूप में कायम रहा है, जो ईश्वर से गहरा अर्थ और संबंध तलाशने वाले व्यक्तियों को प्रेरित और मार्गदर्शन करता रहा।

10.9 सूफी और भक्ति आन्दोलन से निर्मित सांस्कृतिक समन्वय

मध्यकालीन भारत में सूफी और भक्ति आंदोलन महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और धार्मिक घटनाएं थीं जिन्होंने पूरे सामाजिक ताने-बाने में अपेक्षित सकारात्मक बदलाव उत्पन्न किए। यह दोनों आन्दोलन भले ही अपनी उत्पत्ति और प्रथाओं में भिन्न थे परन्तु इसके बावजूद भीउन्होंने समाज में कई तरीकों से सांस्कृतिक समन्वय में अपना योगदान दिया साथ ही इन दोनों के मध्य कुछ ऐसी समानताएं हैं जो स्पष्ट रूप से यह इंगित करती हैं की निश्चित ही इन दोनों के मध्य विचारों का आदान प्रदान हुआ था। उदाहरणतः हम एकेश्वरवाद पर जोर, गुरु शिष्य परम्परा या आध्यात्मिक गुरु (पीर) की भूमिका, ईश्वरीय भक्ति और रहस्यवादी मिलन को रेखांकित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन दोनों मतों ने (भक्ति और सूफी) के संतों ने हिन्दू और इस्लाम धर्म के कट्टर रुढ़िवादी तत्त्वों पर तीखा प्रहार किया। भारत के कश्मीर में स्थापित सूफी मत के ऋषि सिलसिले पर हम भक्ति आन्दोलन के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। इस सिलसिले की स्थापना शेख नरुद्दीन वली ने की थी जिन पर 14वीं शताब्दी की महिला भक्त लाल डेड (लल्लेश्वरी) का गहरा प्रभाव था।

इन दोनों आंदोलनों ने जहाँ एक ओर व्यक्तिगत भक्ति और ईश्वर के साथ सीधे संबंध पर जोर दियावहीं तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक प्रथाओं के अनुष्ठानिक पहलुओं को प्रभावहीन करने में भी अपनी अद्वितीय भूमिका निभाई। इन दोनों मतों ने सैद्धांतिक मतभेदों के ऊपर आध्यात्मिक अनुभव पर जोर देकर सामाजिक समन्वय का माहौल बनाया, जहां विभिन्न परंपराओं के विचार और प्रथाएं सामंजस्यपूर्ण रूप से मिश्रित हो सकी। इसके अलावा सल्तनत काल के दौरान सूफियों का नाथपंथियों से भी साहचर्य बढ़ा, १३वीं – १४वीं शताब्दी के दौरान उत्तर भारतीय समाज के निचले तबके में नाथपंथियों का आंदोलन अत्यधिक लोकप्रिय हुआ था ओर ये नाथपंथी योगी अक्सर सूफी खानकाहों में पहुंचकर चिश्ती शेखों से रहस्यवाद पर विचार विमर्श करते थे।वैसे भी सूफियों के भारत में प्रवेश करने से बहुत पहले ही संस्कृत भाषा में लिखे एक योग ग्रंथ 'अमृतकुंड' का फारसी भाषा में अनुवाद किया जा चुका था, जिसका प्रभाव स्पष्ट रूप से सूफियों पर पड़ा था ओर उन्होंने कई प्रकार की योग पद्धतियों को अपने जीवन में अपना लिया था।आरंभिक चिश्तियों ने भी नाथपंथी योगियों के जीवन के प्रति नैतिक मूल्यों ओर उनकी सामूहिक जीवन पद्धति की सराहना की थी।इन लोकप्रिय आन्दोलनों ने जहाँ तत्कालीन समाज में बिना किसी भेद-भाव के

समाज के सभी वर्गों के लिए अपने दरवाजे खोल दिए थे वहीं इन्होंने मुसलमानों ओर गैरमुसलमानों के मध्य भी आपसी समझ ओर विश्वास को बढ़ाने का कार्य किया।

सूफी और भक्ति संतों ने स्थानीय भाषाओं में कविता और साहित्य की रचना की, जिससे इन संतों के गहन आध्यात्मिक विचार आम जनता तक पहुँचे। कई आरंभिक चिश्ती संत तो बोलचाल के लिए हिन्दवी का प्रयोग करते और इसी भाषा में अपने साहित्यिक पदों की रचना भी करते थे। उदाहरण के लिए १४वीं शताब्दी में हिन्दी में लिखित पुस्तक 'चंदायन' (लेखक - मुल्ला दाउद) सूफीवाद के साथ हिंदू मिथकों और दर्शन का मिश्रित रूप प्रदर्शित करती है।इस साहित्यिक परंपरा ने न केवल उनकी शिक्षाओं का प्रसार कियाबल्कि एक सांस्कृतिक पुल का भी निर्माण किया, जिससे वे जिस भी क्षेत्र में पहुँचे, वहाँ की भाषाएँ, संगीत और कलाएँ उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सकी।इस समतावादी रुख ने विविध समुदायों के बीच एकता और सांस्कृतिक समन्वय की भावना को बढ़ावा दिया।

सूफी और भक्ति परंपराओं ने क्षेत्रीय संगीत और नृत्य रूपों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। सूफी सिलसिलों द्वारा आयोजित किये जाने वाले समा की प्रथा ने एक समन्वयवादी संगीत परम्परा का आधार निर्मित किया।सूफी संगीत, कव्वाली, भक्ति के भजन और कीर्तन तथा अन्य रहस्यमय विषय शनैः शनैः सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का अभिन्न अंग बन गएजिसने पूरे भारत में शास्त्रीय और लोक परंपराओं को प्रभावित किया।विश्व में अमीर खुसरो को ही कव्वाली का प्रणेता माना जाता है। इन दोनों आंदोलनों ने धार्मिक सीमाओं को पार करते हुए आम लोगों के बीच लोकप्रियता हासिल की औरएक सर्वव्यापीसांस्कृतिकमाहौलकोबढ़ावादेनेमें मदद की, जहाँ विभिन्न पृष्ठभूमि के लोग आपस में बातचीत औरविश्वास साझा कर सांस्कृतिक सद्भाव और विविधता की समृद्ध विरासत को आगे बढ़ाते हैं।

10.10 सारांश

अब तक आप इस बात से भली भाति परिचित हो चुके होंगे कि सूफी संप्रदायएक प्रकार कारहस्यमयी इस्लामी आंदोलन हैं जो इस्लाम की शुरुआती शताब्दियों में ही उभर चुका था। सूफी के पथप्रदर्शक ध्यान, जप और नृत्य जैसी प्रथाओं के माध्यम से ईश्वर की आंतरिक खोज और आध्यात्मिक मिलन पर ज़ोर देते थे। सूफीवाद ने अपने उपदेशों में धार्मिक ग्रंथों की कानूनी व्याख्याओं के बजाय ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत अनुभव पर ज़ोर दिया है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के चलते सूफी मत पूरे मुस्लिम जगत के साथ साथ दुनिया के अधिकाँश हिस्सों में फैल गया। उन्होंने इस्लाम के विस्तार में भी महत्ती भूमिका निभाईऔर इस्लाम की शिक्षाओं को और अधिक सरलीकृत कर आम जनमानस तक पहुँचाया।समाज मेंभी एक शिक्षक और धर्मगुरु के रूप मेंसूफी संप्रदायों का महत्वपूर्ण प्रभाव था। उन्होंने आध्यात्मिक मार्गदर्शन, परामर्श और शिक्षा जैसी सामाजिक सेवाएँ प्रदान कीं और अक्सर विवादों में मध्यस्थ के रूप में कार्य किया। सूफी संतअपनी धर्मपरायणता और चमत्कारों के लिए पूजनीयबन चुके थे जिससे एकता और समन्वय की भावना को बढ़ावा मिला।

संक्षेप में, सूफी सिलसिले मुस्लिम दुनिया के आध्यात्मिक, सामाजिक और यहां तक कि राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने में प्रभावशाली रहे हैं। आध्यात्मिक अनुभव, समावेशिता और सामुदायिक सेवा पर उनके जोर ने एक स्थायी विरासत छोड़ी है जो आज भी विविध समाजों में गूंजती रहती है।

10.11तकनीकी शब्दावली

- ❖ इबादत: इस्लाम में भक्ति का तरीका
- ❖ समा: सूफी आवेग उत्पन्न करने वाले संगीत आयोजन
- ❖ वहदत अल-वुजूद:अस्तित्व की एकता की अवधारणा
- ❖ मारिफत या मार्फ़त: अनुभवात्मक ज्ञान
- ❖ खानकाह: सूफी संतों के रहने का स्थान
- ❖ मलफूजात: सूफी साहित्य
- ❖ जेहाद: गैर-मुस्लिम के विरुद्ध युद्ध

10.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: चंदायन के रचनाकार हैं?

1. अमीर खुसरो 2.बाबा फरीद 3.मुल्ला दाउद 4.बरनी

प्रश्न: ऋषि सम्प्रदाय कहाँ विकसित हुआ था?

1. बंगाल 2. कश्मीर 3. मालवा 4. कामरूप

प्रश्न: शेख नसीरुद्दीन का संबंध किस सिलसिले से था?

1. चिश्ती 2. कादरी 3.सुहरावर्दी 4. नक्शबंदी

प्रश्न: सूफी शब्द से आशय है:-

1. पवित्र 2. निश्चल 3. ज्ञानी 4. उपर्युक्त सभी

प्रश्न: राबिया-अल-अदावियाह कहाँ की रहने वाली थी?

1. मक्का2. मदीना 3. भारत 4. बसरा

10.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- धार्मिक विचारधाराएं एवं दृश्य संस्कृति, सूफी परंपरा,इग्नू,संस्करण-2021
- सूफी-काव्य संग्रह, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, संस्करण-1965
- निजामी, खालिक अहमद, (2002 (1961)) रिलिजन एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया डयूरिंग द थर्टीन्थ सेंचुरी (नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)
- रिजवी, अथर अब्बास, (1983) ए हिस्ट्री ऑफ़ सुफीस्म इन इंडिया, भाग- II (नई दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल)
- मध्यकालीन भारत: एक सर्वेक्षण, इमत्याज अहमद, संस्करण-2016
- मध्यकालीन भारत, सल्तनत से मुग़ल काल तक, डॉ० सतीश चन्द्र, संस्करण-2011
- मध्यकालीन भारत, हरीश चन्द्र वर्मा, संस्करण 1995
- मध्यकालीन भारत: प्रशासन समाज एवं संस्कृति, नीरज श्रीवास्तव,संस्करण-2010

10.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न: सूफी शब्द का शाब्दिक अर्थ बतलाते हुए सूफी मत की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

प्रश्न: सूफी मत और भक्ति आन्दोलन के मध्य हुए आदान-प्रदान पर प्रकाश डालिए।

इकाई ग्यारह - सल्तनत कालीन व्यापार, उद्योग, किसान, ग्रामीण जनता, व्यापारी, हस्तशिल्पी एवं दास

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 सल्तनत कालीन व्यापार एवं व्यापारी वर्ग
11.3.1. अंतर्देशीय-व्यापार
11.3.2. विदेशी व्यापार
11.3.3. व्यापारिक मार्ग
11.3.4. व्यापारी वर्ग
11.4 उद्योग
11.4.1 कपड़ा उत्पादन
11.4.2 धातुकर्म
11.4.3 भवन-निर्माण उद्योग
11.4.4 काग़ज़-निर्माण एवं अन्य शिल्प
11.4.5 दिल्ली सल्तनत कारखाना
11.5 किसान एवंग्रामीण जनता
11.6 हस्तशिल्पी एवं दास
11.7 सारांश
11.8 तकनीकी शब्दावली
11.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न
11.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
11.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.12 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारत में तुर्कों के आगमन ने भारतीय अर्थव्यवस्था, व्यापार एवं उद्योग पर किस तरह का प्रभाव उत्पन्न किया इस संबन्ध में प्रायः दो विरोधी विचार देखने को मिलते हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार तुर्कों के आगमन ने भारत में गरीबी एवं दरिद्रता को प्रोत्साहित किया। इस संदर्भ में यह भी माना जाता है कि तुर्कों के आगमन के पश्चात् भारत की लगभग एक तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गयी। दूसरी तरफ मुहम्मद हबीब के अनुसार तुर्कों के आगमन ने भारत में ग्रामीण एवं नगरीय क्रान्ति को जन्म दिया। ग्रामीण क्रांति से तात्पर्य है किसानों के बीच बिचौलियों की समाप्ति तथा नगरीय क्रांति का अर्थ है नगरों पर उच्च वर्णों का वर्चस्व समाप्त कर नगरों का दरवाजा निचली जाति के दस्तकारों एवं शिल्पकारों के लिये खोल दिया जाना।

सल्तनत काल के आर्थिक जीवन के अध्ययन के लिये हमारे पास आइने अकबरी जैसा कोई महत्वपूर्ण स्रोत उपलब्ध नहीं है। यही कारण है कि सल्तनत कालीन व्यापार, उद्योग एवं जनसामान्य के इतिहास की कुछ बातें अस्पष्ट रह जाती है। सल्तनत काल के फारसी इतिहासकारों ने राजनीतिक घटनाओं के विवरण में ही मुख्य दिलचस्पी दिखाई है। अतः सल्तनत काल के आर्थिक जीवन के अध्ययन के लिये कुछ संस्कृत ग्रन्थों, विदेशी यात्रियों के विवरण तथा फारसी इतिहासकारों के द्वारादिये गये सीमित विवरणों को ही आधार बनाया जाता है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत निम्न बिन्दुओं का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा-

- सल्तनत काल में व्यापार एवं व्यापारिक गतिविधियाँ किस प्रकार कार्यरत थी।
- सल्तनत काल में भारतीय उद्योग की अवस्था कैसी थी।
- सल्तनत काल में किसानों की स्थिति एवं ग्रामीण परिवेश कैसा था।
- शिल्प एवं दासों की स्थिति कैसी थी।

11.3सल्तनत कालीन व्यापार एवं व्यापारी वर्ग

सल्तनत काल में वाणिज्य-व्यापार को प्रेरित करने वाले अनेक कारक उत्तरदायी थे, जैसे -

1. उत्तरी भारत एक लंबे काल के पश्चात फिर एक बारपश्चिम एशिया एवं मध्य एशिया के क्षेत्र से घनिष्ठ रूप में संबद्ध हो गया।
2. सल्तनत के अंतर्गत कानून व्यवस्था की स्थिति सुदृढ़ हुई तथा राजनीतिक स्थायित्व कायम हुआ।
3. कुछ सुल्तानों के द्वारा मार्ग निर्माण को प्रोत्साहन दिया गया।
4. इस काल में एक लंबे काल के पश्चात मानक मुद्रा जैसे- टंका, जीतलका प्रचलन आरंभ हुआ।
5. इस काल में नवीन तकनीकी के आगमन के परिणामस्वरूप कुछ नवीन उत्पादन केन्द्रों का विकास हुआ।
6. इस काल में एक नए आभिजात्य वर्ग के आगमन ने विलासिता संबंधी वस्तुओं की मांग बढ़ा दी।
7. अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण व्यवस्था ने भी अनाजों की मंडी कायम की तथा प्रेरित व्यापार को प्रोत्साहन दिया।

11.3.1 अंतर्देशीय- व्यापार

सल्तनत काल के दौरान भारत का देशीय (आंतरिक) व्यापार गतिशील और सुस्थापित था। देशीय व्यापार को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:पहला- ग्रामीण एवं नगरीय व्यापार दूसरा नगर एवं नगर के बीच व्यापार |

इस काल में ग्रामीण तथा नगरीय व्यापार में मुख्य सामग्री अनाज तथा कच्चे माल थे। अलाउद्दीन खिलजी ने बाजार नियंत्रण व्यवस्था के तहत इस व्यापार को प्रोत्साहन दिया था। अब कारवाँ व्यापारियों के द्वारा बड़ी मात्रा में अनाज नगरीय केन्द्रों पर पहुँचाए जाते थे अर्थात् बड़ी मात्रा में ग्रामीण संसाधन नगरों और कस्बों में लाए गए किन्तु दूसरी तरफ नगरीय उत्पादन ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं पहुँचे। नगर एवं नगर के बीच भी आंतरिक व्यापार की एक संरचना कायम थी। उदाहरण के लिए, बंगाल से चीनी एवं सूती वस्त्र अन्य नगरीय केन्द्रों पर भेजे जाते एवंमेरठ एवं अलीगढ़ की शराब दिल्ली पहुँचती थी ।मंडियों के अलावा स्थानीय मेले भी लगते थे जहां पशु भी बेचे जाते थे जो खेती के कार्यों, स्थानीय परिवहन, दूध आदि के लिए आवश्यक होते थे। किन्तु स्थानीय व्यापार इतना अधिक धन उत्पन्न नहीं करता था कि इसमें संलग्न व्यापारी आराम और प्रचुरता का जीवन जीने के लायक धनी हो गए हों।

दूसरी ओर धनी व्यापारी एवं महाजन, साह, मोदी एवं सर्राफ थे। उनकी व्यापारिक गतिविधियां देश के भीतर भारी मात्रा में वस्तुओं के संचलन के साथ-साथ बड़े-बड़े नगरों में रहने वाले के प्रयोगों में आने वाले विलासितापूर्ण वस्तुओं की मांग पूरी करने के निमित्त थीं। उनके व्यापार की प्रमुख वस्तुओं में अनाज, तेल, घी, दाल आदि थे-कुछ क्षेत्रों में वे अधिक परिमाण में मिलती थीं और कुछ क्षेत्रों में उनका अभाव रहता था। इस प्रकार, बंगाल और बिहार में अधिक परिमाण में उपलब्ध चावल और चीनी को जहाजों में ढोकर मालाबार और गुजरात पहुंचाया जाता था। आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश (अवध, कड़ा/इलाहाबाद) में गेहूं अधिक परिमाण में होता था जिसे दिल्ली क्षेत्र में पहुंचाया जाता था। लंबी दूरी के व्यापार में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जानेवाले सामानों में भारी वस्तुओं के अतिरिक्त कपड़े मुख्य मद थे। विदेशी और देशी दोनों ही प्रकार के घोड़े आयात के महत्वपूर्ण मद थे। नील, मसाले, विलेप, दवाइयां, चमड़े के सामान अन्य महत्वपूर्ण मद थे। कश्मीर की शालों और कालीनों की दिल्ली में काफ़ी मांग थी। मेवों की भी यही स्थिति थी। शराब विदेशों से मंगाई जाती थी और गंगा के दोआब में अलीगढ़ और मेरठ में उत्पादित भी होती थी।

यद्यपि इस समय बैंकिग प्रणाली प्रचलित नहीं थी, किन्तु गांव के स्तर पर बनिये एवं राष्ट्रीय स्तर पर मोदी और सर्राफ कृषि कार्यों एवं व्यापार के लिए धन प्रदान करते थे। इतिहासकार के०एम० अशरफ़ के अनुसार, बड़े-बड़े ऋणों पर 10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज एवं छोटे-छोटे तथा मामूली ऋणों पर 20 प्रतिशत वार्षिक ब्याज लगाया जाता था।

11.3.2 विदेशी व्यापार

इस काल में विदेशी-व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला। पश्चिम में भारत का संबंध पश्चिम एशिया, मध्य एशिया तथा पूर्वी अफ्रीका के क्षेत्रों से था, वहीं पूरब में भारत का संबंध चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ था। गुजरात लालसागर के माध्यम से पश्चिम एशिया से जुड़ा हुआ था। उसी प्रकार गुजरात का जुड़ाव फारस की खाड़ी से भी था। खम्भात गुजरात का एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था। सिन्ध में देवल भी एक महत्वपूर्ण बंदरगाह के रूप में स्थापित था। जब अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात को जीता तो विदेशी व्यापार को और भी प्रोत्साहन मिला। बंगाल के बंदरगाहों

का भी अपना अलग महत्व था। बंगाल का व्यापारिकजुड़ाव चीन एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से था। इस काल में निर्यात की प्रमुख मदें दास, वस्त्र, मसाले, नील, अनाज आदि थे। मध्य एशिया को दास भेजे जाते थे जबकि पश्चिम एशिया में नील एवं अनाजों का निर्यात किया जाता था। पश्चिम एशिया के क्षेत्र अनाजों के लिए भारत पर ही निर्भर थे। उसी प्रकार आयात की प्रमुख मद घोड़े थे। इसके अतिरिक्त पश्चिम एशिया से बेसकीमती वस्त्र मंगवाए जाते थे, साथ ही चाँदी का भी आयात होता था। बार्थमा एवं टॉम पायर्स जैसे विदेशी यात्रियों ने भी विकसित वाणिज्य व्यापार की सूचना दी है।

पश्चिम एशिया के साथएवं इससे होते हुए भूमध्यसागरीय जगत के साथ-साथ मध्य एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया एवं चीन के साथ, समुद्र-मार्ग और थल-मार्ग दोनों ही के जरिए भारतीय व्यापार की पुरानी परंपरा रही थी। थल-मार्ग बोलन दर्रे से होते हुए हिरात, खैबर दर्रे से होकर बुखारा और समरकंदएवं कश्मीर की घाटियों से गुजरते हुए यारकंद और खोतन को जाता था और उन स्थानों से फिर चीन को जाता था। वे व्यापार कभी-कभी मध्य एशिया के यायावर झुंडों के उतरने के कारण अवरुद्ध हो जाते थे, जैसा कि 6वीं-7वीं सदियों में हूण उपद्रवों एवं 13वीं सदी में मंगोल प्रहारों के कारण हुआ। साम्राज्यों के उत्थान और पतन के बावजूद इन बाधाओं को पार करने में व्यापारी गण अत्यंत परिश्रमी और दक्ष साबित हुए। साथ ही, यायावरों ने व्यापारिक गतिविधियों को चलने देने एवं उस पर कर लगाकर लाभान्वित होने के महत्त्व को तुरंत ही समझ लिया। इस प्रकार मंगोलों ने न केवल व्यापार को चलने दिया, अपितु शांति के दिनों में स्वयं भी ऊंटों, घोड़ों, हथियारों, बाजों, लोमों एवं कस्तूरी का व्यापार किया। यद्यपि बलबन को मंगोलों के कारण मध्य एशिया से घोड़े प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु यह स्थिति बहुत कम समय तक ही रही होगी क्योंकि अलाउद्दीन खिलजी को ऐसी कोई कठिनाई नहीं हुई थी। मंगोल साम्राज्य की स्थापना एवं सड़कों की सुरक्षा कायम होने के बाद चीन और पश्चिम एशिया के साथ व्यापार पहले से आसान हो गया। अतः मंगोलों द्वारा समरकंद और बुखारा जैसे उन्नत नगरों के विनाश के प्रभाव को अतिरंजित नहीं किया जाना चाहिए। इस्लाम में मंगोलों के धीरे-धीरे आते जानेसे व्यापारिक प्रगति के लियेपरिस्थितियां 14वीं सदी में और अधिक बेहतर हो गईं। किन्तु थल-मार्ग से होनेवाला व्यापार मुख्यतः उन वस्तुओं में होता था जो हल्के वजन वाली किन्तु महंगी होती थी। क्योंकि परिवहन व्यय बहुत अधिक होता था। भारत में थल-मार्ग से आयात होनेवाली वस्तुओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घोड़े थे। भारत में सेना की आवश्यकताओं को देखते हुए अरबी, इराक़ी और मध्य एशियाई घोड़ों की मांग हमेशा बनी रहती थी, क्योंकि युद्ध में घुड़सवार सेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती थी। दिखावे और हैसियत के प्रयोजन से भी उन घोड़ों को काफी महत्त्व दिया जाता था। अतः घोड़ों के क्रय-विक्रय का सावधानीपूर्वक विनियमन राज्य हेतु एक प्राथमिकता था। भारत में आयात होनेवाली अन्य वस्तुओं में ऊंट, लोम, गोरे दास, मखमल, मेवे एवं शराब आदि सम्मिलित थे। चाय और रेशम का आयात चीन से होता था, यद्यपि रेशम फारस से भी आयात होता था, जहां मंगोलों ने 13वीं और 14वीं सदियों के दौरान शहतूत के पेड़ एवं रेशम के कीड़े लगाए थे। भारत से निर्यात होनेवाली वस्तुओं में सूती कपड़े, भोज्य पदार्थ जैसे चावल, चीनी और मसाले आदि थे। भारत से दासों का निरंतर निर्यात होता रहता था जिनकी इस्लामी जगत में बहुत अधिक मांग थी।

भारत से थलमार्गी व्यापार का प्रमुख केन्द्र मुल्तान था। सन् 1241 ई० में मंगोलोंने लाहौर को तबाह कर दिया था और वह मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल तक इस तबाही से उबर नहीं पाया। मुल्तान सभी विदेशियों के लिए प्रवेश-द्वार था; इन विदेशियों में व्यापारी भी शामिल थे। इन सब के लिए खुरासानी संज्ञा का प्रयोग होता था। उनकी संख्या का आकलन कर पाना कठिन है, किन्तु लगता है कि वे मुल्तानियों की अपेक्षा कम धनी थे। किन्तु विदेशी व्यापारी, विशेषकर अरब व्यापारी, समुद्री व्यापार में गुजरात और मलाबार में अधिक सक्रिय थे। इस व्यापार में भारतीय लोग अर्थात् हिन्दू (अग्रवाल और महेश्वरी) एवं जैन और बोहरा भी सक्रिय थे; पश्चिम और दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय व्यापारियों की बस्तियां स्थापित थीं। बंगाल भी चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ व्यापार करता था एवं कपड़ों का निर्यात तथा रेशम, मसाले आदि का आयात करता था।

11.3.3 व्यापारिक मार्ग

इस काल में व्यापारिक मार्ग के रूप में स्थलीय एवं जलमार्ग दोनों प्रयुक्त होते थे। स्थलीय मार्ग के रूप में हिमालय की तलहटी, खैबर यूँ तथा बोलन दरें के मार्ग प्रचलित थे। दूसरी तरफ जलमार्ग के रूप में हम लाल सागर तथा फारस की खाड़ी का विवरण पाते हैं। मध्य एशिया के व्यापार में खुरासानी व्यापारी सक्रिय थे तो पश्चिम एशिया के व्यापार में मुल्तानी व्यापारी। वहीं दक्षिण-पूर्व एशिया के व्यापारियों की विशेष भूमिका थी।

11.3.4 व्यापारी वर्ग

भारत में प्राचीन काल से ही व्यापारियों और महाजनों के विकासशील वर्ग एवं व्यापार की पुरानी परंपरा रही है। इस प्रकार, धर्मशास्त्रों में अनुबंध, ऋण, क्रय एवं विक्रय से संबंधित कानून दिए हुए हैं। एक पृथक व्यापारी समुदाय के रूप में वैश्यों का उदय तथा उन्हें द्विज (जिसका शाब्दिक अर्थ है दो बार जन्मा हुआ या विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग) श्रेणी में शामिल किया जाना देश के सामाजिक और आर्थिक जीवन में उनकी स्थिति का परिचायक है। किन्तु अग्रणी व्यापारियों अथवा नगर श्रेष्ठियों तथा साधारण दुकानदारों (वणिक) एवं मालवाहकों (बंजारों) के बीच अन्तर समझना आवश्यक है। 5वीं सदी की एक कृति 'पंचतंत्र' के अनुसार, नगर श्रेष्ठियों को सामाजिक दृष्टि से शासक का क़रीबी माना जाता था और वे राज-परिवारके सदस्यों के साथ स्वच्छंद रूप से सपंर्क रखते थे अग्रणी व्यापारी न केवल थोक व्यापार और लंबी दूरी का व्यापार करते थे, जिसमें विदेश व्यापार भी शामिल था बल्कि पूंजी प्रदान करने और मुद्रा-परिवर्तन से भी सम्बन्ध रखते थे। हुंडी प्रणाली के जरिए लंबी दूरी के व्यापार हेतु वित्त का प्रबंध किया जाता था, जोखिम के विरुद्ध बीमा किया जाता था एवं एक स्थान से दूसरे स्थान को धनराशि भेजी जाती थी।

उत्तर भारत में एक सशक्त केन्द्रीकृत साम्राज्य की स्थापना; मुख्यतः चांदी के टंके पर आधारित एक ठोस मुद्रा प्रणाली की स्थापना; सड़कों की बढ़ती हुई सुरक्षा; नगरों का विकास; एवं इस्लामी जगत के लिए भारत के व्यापार आदि का मार्ग खुलना आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण उपादान थे जिनके कारण पश्चिम और मध्य एशिया के साथ भारत के थलमार्गी व्यापार एवं मुख्यतः गुजरात से समुद्री व्यापार का विकास और विस्तार हुआ।बरनी ने व्यापारियों के एक

अन्य वर्ग का भी उल्लेख किया है जिन्हें दलाल कहा जाता था। ये दलाल कमीशन एजेंट होते थे जो खरीदनेवाले और बेचनेवाले को मिलाने के कार्य के लिए शुल्क लिया करते थे। उनका उदय दिल्ली में व्यापार की वृद्धि का सूचक है। बताया गया है कि अलाउद्दीन द्वारा बाज़ार के नियंत्रण के बाद विभिन्न 'वस्तुओं, विशेषकर कपड़ोंके ख़रीददार दिल्ली में भारी संख्या में आया करते थे। बरनी ने घोड़ों के विक्रय को नियंत्रित करने के अलाउद्दीन के प्रयासों के विशेष संदर्भ में दलालों का उल्लेख किया है। वे इन दलालों के सम्बन्ध में कड़े शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनमें से कई तो, विशेषकर घोड़े के व्यापारी, मुसलमान थे। उनका एक धनी औरशक्तिशाली समूह था जो कई बार तो सुल्तान के आदेशों की भी अवहेलना कर देता था।

दिल्ली के मुस्लिम व्यापारी प्रायः विदेशी थे-जैसे इराकी, ईरानी, खुरासानी आदि । इब्न बतूता के अनुसार, भारत में सभी विदेशी व्यापारियों को खुरासानी कहा जाता था। मुस्लिम व्यापारियों का एक अन्य समूह अफ़ग़ानों का था। वें कारवां व्यापार और घोड़े के व्यापार में माहिर थे।गुजरात में व्यापार की एक सुस्थापित परंपरा रही थी और वहां भारतीय तथा विदेशी दोनों मूल के व्यापारी समुदाय रहा करते थे।पारंपरिक विवरणों के अनुसार, जैन, मारवाड़ी, गुजराती, बनिये एवं बोहरा लोग भी काफ़ी सक्रिय थे। व्यापारियों की दशा: भारत में व्यापारी वर्ग को सम्मानीय दृष्टि से देखा जाता था।

भारत में व्यापारी वर्ग को सम्मानीय दृष्टि से देखा जाता था | भारतीय शासकों ने उन्हें सदैव उचित सम्मान प्रदान किया, क्योंकि व्यापारी वर्ग न केवल देश-विदेश की वस्तुएँ ही लाते थे अपितु वहाँ के समाचार भी लाते थे। इसके अतिरिक्त समय-समय पर व्यापारिक काफिलों व बंजारों से शासकों को अनेक मार्गों का भी ज्ञान हुआ है। वे अपने शत्रुओं का पीछा करते-करते जब मार्ग से भटक जाते थे तो उधर से गुजरने वाले व्यापारिक काफिले उनका मार्गदर्शन करते थे। बल्बन द्वारा तुगरिल का पीछा करते समय बंजारों ने ही उसका मार्गदर्शन किया था। भारत में व्यापारी वर्ग सब सुविधाओं से परिपूर्ण सुखी एवं संपन्न जीवन बिता रहा था। इसका आभास विदेशी व्यापारियों द्वारा समय-समय पर इस देश में बस जाने से मिलता है। उनके लिए इस देश के विभिन्न मार्गों में अलग से बस्तियाँ बनी थीं। अलाउद्दीन खलजी के राज्य-काल के अतिरिक्त समस्त सल्तनत काल में व्यापारी वर्ग समृद्धि की ओर अग्रसर होता रहा। समकालीन ग्रंथों में उनकी दानशीलता तथा उनके भवनों के निर्माण का भी उल्लेख है। इस काल में व्यापार से बढ़कर और कोई व्यवसाय नहीं था। व्यापारी वर्ग अपने व्यापारिक हितों एवं समय की गंभीरता का ध्यान रखते हुए समकालीन राजनीति से प्रायः दूर ही रहते थे।

11.4उद्योग

तुर्कों के साथ भारत में कुछ नवीन शिल्पों का आगमन हुआ। इन शिल्पों ने उत्पादन को प्रोत्साहन दिया।मुहम्मद गोरी के काल में ही भारत में **'धुनकी'**का प्रचलन आरम्भ हो गया। इसके माध्यम से रूई को साफ करना आसान हो गया। **'फुतुह-उल सलातीन'**नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि इस काल में **'चरखा'**का प्रचलन आरंभ हो गया था, चरखे के प्रचलन के साथ सूत की कताई में छः गुनी वृद्धि हो गयी। उसी प्रकार **'मिफ्ताह-उल-**

फुजाला'नामक ग्रंथ से करघे के उपयोग की सूचना मिलती है। इसके कारण वस्त्रों की बुनाई को प्रोत्साहन मिला। इस काल में कागज एवं जिल्दसाजी का प्रयोग भी आरंभ हुआ। कागज का प्रचलन सर्वप्रथम गुजरात में आरंभ हुआ था। तुर्की लोग अपने साथ निर्माण की एक नवीन तकनीकी लेकर आए थे। इस काल में विनिर्माण कार्य मेहराब तथा गुबंद की तकनीकी पर आधारित था। फिर इस काल में पत्थरों को जोड़ने के लिए गारे केरूप में चूने और जिप्सम का प्रयोग भी आरंभ हुआ। इसके कारण विनिर्माण कार्य को प्रोत्साहन मिला। बरनी यह सूचित करता है कि अलाउद्दीन खिलजी के अतंर्गत 70,000 कारीगर विनिर्माण कार्य से संबंद्ध थे। फिर सल्तनत काल में ही बंगाल में मलबरी रेशम का उत्पादन आरंभ हुआ।नवीन तकनीकी ने उत्पादन को प्रोत्साहन दिया। फिर नए उत्पादन केन्द्रों का विकास हुआ। बंगाल मलमल एवं रेशम उत्पादन का केन्द्र था। देवगिरी भी रेशम उत्पादन के लिए जाना जाता था। फिर बंगाल सूती वस्त्र उत्पादन का भी केन्द्र था। गुजरात के विभिन्न स्थलों पर भी सूती वस्त्र का उत्पादन होता था। मेरठ और अलीगढ़ अंगूरी शराब के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे। इस काल में पश्चिम एशिया के प्रभाव में कालीन निर्माण तकनीकी भी विकसित हुई।

11.4.1 कपड़ा उत्पादन

कपड़ा उत्पादन भारत का सबसे बड़ा उद्योग था जो कि प्राचीन समय से ही विकसित अवस्था में चला आ रहा था। इसमें सूती कपड़े, ऊनी कपड़े एवं रेशमी कपड़े का उत्पादन शामिल था। सूती कपड़े भी दो प्रकार से बनते थे- मोटा (कमीन) एवं पतला (महीन)। मोटा कपड़ा, जिसे **'पट'**भी कहा जाता था, गरीब एवं फ़क़ीर पहनते थे। थोडे बेहतर प्रकार का सूती कपड़ा **छींट (कपास)** कहलाता था और उसका व्यापक रूप से प्रयोग होता था। महीन कोटि के कपड़े में **मलमल** शामिल था जो बंगाल के सिलहट और ढाका नगरों में तथा दक्कन के देवगिरि नगर में उत्पादित होता था। वह इतना उत्तम और महंगा होता था कि केवल अमीर और बहुत धनी लोग ही उसका प्रयोग कर सकते थे। अमीर खुसरो के अनुसार देवगिरी का कपड़ा इतना महीन होता था कि उसका सौ गज का कपड़ा एक अंगूठी से निकाला जा सकता था। बढ़िया कपड़ों में थे काढ़े हुए (ज़रदोज़ी) या चित्रित, या सोने की तार से काढ़े हुए (ज़रबफ़त)। गुजरात में भी कई प्रकार के उत्तम सूती कपड़े का उत्पादन होता था। बारबोसा उल्लेख करता है कि कैम्बे (खम्बायत) मखमल, साटन, ताफ्ता अथवा मोटी दरी के कई सस्ते प्रकारों के अतिरिक्त सभी प्रकारों के महीन एवं मोटे सूती कपड़े के उत्पादन का केन्द्र था।

बंगाल से रेशम का आयात होता था जहां रेशम के कीड़े पाले जाते थे। परन्तु कच्चा रेशम समेत रेशमी धागों का कहीं अधिक परिमाण में ईरान और अफगानिस्तान से आयात होता था। दिल्ली और उसके आस-पास के इलाकों में रेशमी कपड़े और सूती-रेशमी वस्त्रों का काफी प्रयोग होता था। कैम्बे (खम्बायत) का रेशमी कपड़ाअलाउद्दीन खिलजी द्वारा नियंत्रित महंगे कपड़ों में से एक था। अनेक आकर्षक आकृतियों वाले गुजरात के पटोलों की काफी कीमत होती थी। अपनी सोने और चांदी की कशीदाकारी के लिए भी, जो सामान्यतः रेशमी कपड़े पर की जाती थी,

गुजरात प्रसिद्ध था।कपड़े के उत्पादन के अलावा अन्य विभिन्न वस्तुओं जैसे दरियों, नमाज़ की दरियों, बिस्तरों, चादरों, बिस्तर की रस्सियों आदि का भी गुजरात के अन्य भागों में उत्पादन होता था।

पहाड़ी इलाकों से ऊन प्राप्त किया जाता था यद्यपि मैदानी इलाकों में भी भेड़ पाले जाते थे। श्रेष्ठ कोटियों के ऊनी कपड़े और लोम मुख्यतः बाहर से आयात किए जाते थे तथा वे लगभग अनन्य रूप से अमीरों अथवा कुलीन लोगों द्वारा पहने जाते थे। फिर भी, कश्मीर का शाल उद्योग सुस्थापित हो चुका था। मुहम्मद बिन तुगलक ने चीनी सम्राट को उपहार के रूप में कश्मीरी शालें भेजी थीं। सुल्तानों के संरक्षण में कालीन निर्माण का उद्योग भी विकसित हुआ। उन कालीनों पर ईरानी एवं मध्य एशियाई आकृतियां बनाई जाती थीं।मुहम्मद बिन तुगलक के कारखानों में 4000 रेशमकर्मी थे जो भिन्न-भिन्न प्रकार की पोशाकों और वस्त्रों की बुनाई तथा कशीदाकारी करते थे। फ़िरोज़ तुगलक ने अपने कारखानों में एवं परगनों में काम करने के लिए भारी संख्या में दासों को भर्ती एवं प्रशिक्षित किया था।

11.4.2 धातुकर्म

भारत में धातुकर्म की बहुत पुरानी परंपरा रही थी, जिसकी पुष्टि मेहरौली (दिल्ली) के लौह-स्तंभ से होती है; इस स्तंभ ने सदियों से समय और मौसम के प्रहारों को झेलते हुए अपनी चमक और अस्तित्व को बरकरार रखा है। तांबा अथवा मिश्रधातुओं की बनी बहुत-सी मूर्तियां भी भारतीय धातुकर्मियों की दक्षता की साक्षी हैं। भारतीय कुफ्तगीरी तकनीक से अलंकृत तलवारें और कटारें भी विश्वविख्यात थीं। दक्कन में उत्पादित कांसे और तांबे के बर्तनों (पच्चीकारी समेत) की पश्चिम एशिया में स्थायी रूप से मांग रहती थी। उच्च कोटि के सल्तनतकालीन सिक्के भी भारतीयधातुकर्मियों की दक्षता के प्रमाण हैं। सोने-चांदी का काम करने वाले भारतीय सुनार भी अपने श्रेष्ठ आभूषणों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे जिनकी पुरुष और महिलाओं के बीच सदैव समान रूप से मांग बनी रहती थी। घोड़ों के लिये बड़ी मात्रा में लोहे की रकाब और उनके और सिपाहियों के लिये जार बख़्तर के उत्पादन ने धातुकर्म को बढ़ाया। एक और प्रयोग जो इस काल में बढ़ा वह था सस्ते ताँबे के बर्तनों में कलई करना जिसके कारण उनका उपयोग खाना पकाने में किया जा सकता था।

11.4.3 भवन-निर्माण उद्योग

भवन निर्माण उद्योग रोज़गार का एक प्रमुख साधन था। 10वीं सदी से उत्तर भारत में मंदिर निर्माण की गतिविधियों में अकस्मात काफी वृद्धि हो गई थी, जिसके साक्षी बुंदेलखंड में खजुराहो के मंदिर, राजस्थान में दिलवाड़ा के मंदिर एवं उड़ीसा और गुजरात में विभिन्न स्थानों के मंदिर हैं। तुर्क सुल्तान भी महान भवन-निर्माता थे। उन्होंने मेहराब, गुंबद एवं मेहराबदार छत की नई शैली एवं चिनाई हेतु एक नए प्रकार के गारे यानी खड़िया-मिट्टी और चूने के गारे का आरंभ किया। उन्होंने नगर, किले एवं महल बनवाए जिनमें से बहुत से स्मारकों के भग्नावशेष आज भी देखे जा सकते हैं। लगता है कि ईंट बनाने के कार्य में काफी तेजी आई और अधिकाधिक लोग ईंटों और पत्थरों से निर्मित घरों में रहने लगे, यद्यपि निर्धन लोगों ने फूस की छतों वाले मिट्टी के घरों में ही रहना जारी रखा। भारतीय संगतराशों के

शिल्प का विश्व में कोई सानी नहीं था। अमीर खुसरो ने लिखा है कि दिल्ली के राजमिस्त्री एवं संगतराश समूचे मुस्लिम जगत में अप्रतिम थे। जैसा कि सुविदित है तैमूर राजधानी समरकंद के निर्माण के लिए अपने साथ दिल्ली के राजमिस्त्रियों और संगतराशों को ले गया था। बरनी का कहना है कि अलाउद्दीन खिलजी ने अपने भवनों के निर्माण हेतु 70,000 शिल्पकारों को नियुक्त किया था। मुहम्मद बिन तुगलक एवं फ़िरोज़ शाह तुगलक दोनों ही महान भवन-निर्माता थे। फ़िरोज़शाह तुगलक ने न केवल अनेक नए शहर बसाए, अपितु मकबरों समेत बहुत से पुराने भवनों की मरम्मत भी कराई। इस काल के दौरान भारत में तामचीनी के खपड़ों (टाइलों) का प्रयोग आरंभ हुआ। हिन्दू राजाओं एवं सरदारों ने भी भवन-निर्माण से संबद्ध कारीगरों को संरक्षण दिया और राजस्थान के जोधपुर जैसे अनेक नए शहर बसाए। पूरे देश में उत्कृष्ट कोटि का काष्ठीय कार्य भी होता था और घरेलू प्रयोग के लिए दरवाजे, कुर्सियां एवं तख्त, पलंग आदि बनाए जाते थे।

11.4.4 काग़ज़-निर्माण एवं अन्य शिल्प

भारत में व्यापक स्तर पर प्रचलित एक अन्य शिल्प चर्मकर्म था जो देश के विशाल पशुधन पर आधारित था। यह शिल्प अधिकांशतः जातिगत आधार पर संगठित था। अस्तबलों में मौजूद अथवा अमीरों को उपहार में दिए घोड़ों की भारी संख्या हेतुश्रेष्ठ कोटि की काठियां (जीनें) तैयार होती थीं। गुजरात में लाल एवं नीले चमड़े की उत्कृष्ट चटाइयां बनती थीं जिन्हें पक्षियों और पशुओं की आकृतियों से अथवा पच्चीकारी से सजाया जाता था।

इस काल में शुरू होनेवाला एक नया उद्योग काग़जनिर्माण का था। यद्यपि चीन में 100 ई० से ही काग़ज़ निर्माण का ज्ञान था, किन्तु काग़ज़ प्रौद्योगिकी से संबंधित जानकारी 8वीं सदी में कहीं जाकर समरकंद और बगदाद पहुंची। अरबों ने एक नई प्रौद्योगिकी प्रारंभ की जिसमें वृक्षों के छिलकों और शहतूत के पेड़ों के बजाए चिथड़ों और रस्सियों का प्रयोग होता था। भारत में 13वीं सदी के पूर्व इसके प्रयोग का प्रमाण नहीं मिलता है और यहां काग़ज़ की प्राचीनतम उपलब्ध पांडुलिपि गुजरात से प्राप्त हुई है जो 1223-24 ई० में लिखी गई होगी। निश्चय ही काग़ज़ निर्माण के कारण पुस्तकों की उपलब्धता में भारी वृद्धि हुई होगी।

अन्य शिल्पों में शामिल थेः नमक-निर्माण, पत्थर और संगमरमर का उत्खनन एवं लौह और ताम्र अयस्कों का खनन और संसाधन। पन्ना में और दक्षिण भारत में हीरे का खनन भी होता था और गोते लगाकर समुद्र से मोती भी निकाले जाते थे। हाथीदांत से तरह-तरह की चीज़ों का निर्माण एक अन्य महत्वपूर्ण शिल्प था।

11.4.5 दिल्ली सल्तनत कारखाना

सल्तनत काल में कारखाना जनसामान्य के लिए उत्पादन नहीं करते थे बल्कि शाही आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन किया जाता था। सामान्य रूप में कारखानों के अन्तर्गत केवल उत्पादन केन्द्र को ही शामिल किया जाता है लेकिन सल्तनत काल में कारखाना के अन्तर्गत उत्पादन केन्द्र के अलावा शाही घुड़सवार, हाथीसार तथा शाही पड़ाव आदि सभी को शामिल किया जाता था। इस प्रकार सल्तनत काल में कारखाना की अवधारणा

ज्यादा व्यापक थी।सल्तनत काल में कारखाना का व्यापक विकास अलाउद्दीन खिलजी और फिरोजशाह तुगलक के अन्तर्गत देखा गया। अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा बाजार नियंत्रण की प्रणाली अपनायी गयी थी जिसके अन्तर्गत तीन प्रकार के बाजारों का प्रावधान था। प्रथम प्रकार के बाजार में अनाजों का व्यापार होता था जबकि दूसरे प्रकार केबाजार में कपड़ों और अन्य सामग्रियों का। कपड़ों के अन्तर्गत साधारण और बेशकीमती दोनो प्रकार के कपड़े शामिल थे। बाजार में बेशकीमती कपड़ों की आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए बाहर से कपड़ों का आयात तो किया जाता ही था साथ ही कारखानों के द्वारा भी इसमें अपना योगदान दिया गया। इस प्रकार सल्तनत काल में कारखाना व्यवस्था शाही घरानों एवं उनके अमीरों के लिए उन शाही एवं गुणवत्ता युक्त वस्तुओं की आपूर्ति का साधन था जो बाजार में सामान्य रूप में उपलब्ध नहीं होती थी। सल्तनत काल में कारखाना के विकास का सबसे बड़ा कारण था अत्यधिकमात्रा में दासों की उपलब्धता होना। इन दासों के द्वारा ही कारखानो में उत्पादन किया जाता था। दासों को गुणवत्ता युक्त वस्तुओं के उत्पादन में दक्ष बनाने के लिए प्रशिक्षण भी दिया जाता था। समकालीन स्रोतों से पता चलता है कि फिरोजशाह तुगलक के अन्तर्गत 36 कारखाने कार्यकत थे, जिनमें 12000 दासों को लगाया गया था। राजकीय कारखाना व्यवस्था से सल्तनत काल में उत्पादन का उच्च मानक विकसित हुआ। कारखाना व्यवस्था ने बाजार को प्रतिस्पर्दी बनाकर गुणवत्ता युक्त उत्पादन को प्रोत्साहन दिया।

11.5 किसान एवं ग्रामीण जनता

समकालीन स्रोत ग्रामीण समाज के विषय पर लगभग मौन हैं। कुछ संस्कृत, अपभ्रंश एवं कुछ दक्षिण भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ग्रंथों से ही इस सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि इन स्रोतों में ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में उपलब्ध जानकारी 9वीं सदियों से आगे के काल के बारे में है, किन्तु वे हमें एक पृष्ठभूमि प्रदानकरते हैं और दिल्ली सल्तनत के तहत ग्रामीण जीवन के परिवर्तनों और अविच्छिन्नता व निरंतरता की प्रवृत्ति को बेहतर ढंग से समझने में हमारी सहायता करते हैं।

12वीं सदी के जैन लेखक हेमचन्द्र सूरी के लेखनों के आधार पर हम गांव के लोगों को चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :

1. उपज की बटाई करने वाले किसान अथवा बटाई काश्तदार जिनके लिए **'कर्षक' (कृषक)** अथवा 'आर्धिक (आधा भाग पाने वाले) शब्द का प्रयोग होता है।

2. हल चलाने वाले अथवा खेतिहर मजदूर जिनके लिए **'हलवाहक'**, 'किसान' अथवा यहां तक कि 'कर्षक' जैसी विभिन्न संज्ञाओं का प्रयोग होता है; ये दोनों काश्तकारों के निम्नतम व सर्वाधिक आश्रित वर्ग थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 'कर्षक' शब्द (जिसका शाब्दिक अर्थ होता है खेत जोतने वाले) निम्न श्रेणी के किसानों के लिए आम तौर पर प्रयुक्त होता था जो गांवों में सबसे बड़े समूह थे।

3. उनके बाद वे लोग आते थे जिन्हें कुछ आधुनिकइतिहासकारों ने स्वतंत्र किसान कहा है, लेकिन जिनके लिए मालिक या स्वामी शब्द अधिक उपयुक्त हो सकता है, आगे चलकर उन्हें 'मालिक-ए-ज़मीन' (भूमि का स्वामी) अथवा

'खुद-काश्त' (भूमिधारी किसान) कहा जाने लगा। पारंपरिक अधिकार के नाते वह अपनी ज़मीन के मालिक होते थे। गाँव में उनकी अपनी झोपड़ी या घर होता था। गाँव की खुर्दा ज़मीन में वह मवेशी चरा सकते थे या झील में मछली पकड़ सकते थे। ऐसे किसान जात के आधार पर बँटे होते थे।

4. अंतिम श्रेणी में शिल्पकार, जैसे चर्मकार, रस्सी-निर्माता एवं पहरेदार (चौकीदार) आदि होते थे। कुछ ग्रामीण शिल्पकार (जैसे चर्मकार, खेतिहर मज़दूर आदि) स्वपच (अछूत) माने जाते थे। उनके लिए सामान्य तौर पर 'अधम' शब्द का प्रयोग होता है।

धर्मशास्त्रों के भाष्यकार एवं अन्य लेखक मेहनतकश किसानों की भीषण विपन्नता एवं तंग हाल जीवन की पुष्टि करने में एकमत हैं। पद्म पुराण कर्षकों के दयनीय जीवन का वर्णन करते हुए कहता है कि वे उस समय के शासक द्वारा इतना अधिक सताए जाते थे कि अपने परिवार का भरण-पोषण करने में भी असमर्थ रहते थे। एक ओर जहां किसानों और खेतिहर मज़दूरों के सामने भीषण विपन्नता मुंह बाए खड़ी थी, वहीं दूसरी ओर भूमि से जुड़े अभिजात लोग यानी सामंतगण विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

दिल्ली सल्तनत की कृषि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता किसानों द्वारा बड़ी संख्या में फसलें उगाना था। फसलों की विविधता के मामले में भारतीय किसान चीन के कृषकों से कहीं आगे थे। उत्तर भारत में वर्ष में दो फसलें उगाई जाती थी-खरीफ व रबी। राजस्थान में इन्हें सियालू (शरद) व उन्हालू (बसंत) कहा जाता था। दक्षिण भारत में विशिष्ट किस्म के धान की खेती के आधार पर फसलों को दो भागों में बांटा गया है-'कुड्डपाह-कर' और 'सम्ब-पेशनम्'। दुआर्ती बारबोसा (लगभग 1518 ई.) मालाबार पर टिप्पणी करते हुए वर्णन करता है कि-'यहां वर्ष के हर माह में हर चीज होती है।'इब्नबतूता, जिसने समूचे भारत का भ्रमण किया, देश में उपजाये जाने वाले अनाजों व अन्य विभिन्न फसलों, फलों व फूलों का विस्तृत विवरण दिया है| इब्नेबतूता लिखता है कि'मिट्टी इतनी उपजाऊ है कि भारतीय वर्ष में दो बार फसलें बोते हैं। जब गर्मियों में यहाँ बारिश होती है तो वे वर्षाकालीन फसलें (खरीफ) बोते हैं और साठ दिनों बाद इसे काट लेते हैं जब वे इस फसल की कटाई करते हैं तो वे शरदकालीन (रबी) की फसलें उगाते हैं। जहाँतक चावल (धान) का प्रश्न है वे इसे वर्ष में तीन बार बोते हैं तथा यह उनके देश के प्रमुख अनाजों में से है।'

चावल व गन्ना पूर्वी व दक्षिण भारत में उपजाये जाते थे जबकि गेहूँ, तिलहन आदि का उत्पादन उत्तरी भारत में होता था। कपास, जौ, राई एवं अन्य निम्न स्तर की फसलें व्यापक तौर पर लगाई जाती थी। कुछ फसलें तेल पिराई, गुड़ निर्माण, नील, कत्ताई, बुनाई आदि जैसे ग्रामीण उद्योगों का आधार थी। गंगा के मैदान में आमतौर पर गेहूं, जौ, चना, दालें, गन्ना, कपास, तिलहन (तिल, सरसों आदि) उगाए जाते थे। जौ राजस्थान में उगाई जाने वाली मुख्य फसल थी। भारत के दक्षिणी भाग में, नम भूमियों (नन्यई) पर उगाई जाने वाली प्रमुख फसल धान थी। चोलम, रागी, वरागु, तिल, अलसी, कपास आदि दक्षिण में उगाई जाने वाली अन्य फसलें थी। मध्यकालीन बिहार, उड़ीसा, कश्मीर व असम में भी धान ही मुख्य फसल थी। यद्यपि गेहूं, जौ, दालें, चना आदि भी इस क्षेत्र में उगाए जाते थे। कश्मीर में दो-तिहाई आबी (सिंचित) भूमि पर धान का उत्पादन किया जाता था। मध्यकाल में निम्न कोटि की फसलों के स्थान पर उच्च कोटि की फसलों की खेती को बढावा देने की प्रवृत्ति थी। मुहम्मद तुगलक ने किसानों को निर्देश दिया है कि 'वे

उच्च कोटि की फसलें उगाएं-जौ के स्थान पर गेहूं, गेहूं के स्थान पर गन्ना व गन्ने के स्थान पर खजूर व अंगूर की खेती करे'।

सर्वप्रथम फिरोज तुगलक ने 14वीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक व्यापक नहर व्यवस्था स्थापित की। उसने दो नहरें यमुना से व एक-एक नहर सतलज व घग्घर नदियों से निकलवाई। लेकिन इनके कारण मुख्यतः आधुनिक हरियाणा में हिसार के आसपास के क्षेत्र को ही लाभ हुआ। सिन्ध व पंजाब में बरनी अन्य छोटी-छोटी नहरों का भी उल्लेख करता है।

मुहम्मद तुगलक व फिरोज तुगलक के शासनकाल में 14वीं सदी के दौरान बगीचों (उद्यानों) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मुहम्मद तुगलक ने किसानों को प्रोत्साहित किया कि वे अंगूरों के उत्पादन की ओर ध्यान दें। फिरोज ने दिल्ली के निकट 1200 बगीचे, सलोरा बांध पर 80 बगीचे एवं चित्तौड़ में 44 बगीचे लगवाए। इन बगीचों के कारण फलों व विशेषतः अंगूरों के उत्पादन में काफी प्रगति हुई। इतिहासकार अफीफ, फिरोजशाह के शासनकाल में इसके दाम 7 जीतल प्रति सेर बताता है, जबकि गेहूं का मूल्य उस समय 8 जीतल मन (40 सेर) था।

कृषि आधारित उद्योगों के क्षेत्र में दो उल्लेखनीय विकास क्रम इस काल में हुए। पश्चिमी एशिया से अर्क निकालने का भभका (स्टिल) आया (जिसमें एक चम्मच के आकार का टोंटीदार बर्तन (रिटार्ट) होता था और भभके के सिरे पर एक 'मूर्स हेड' या एक पानी का बर्तन होता था) और यह आसवन के लिए उन तथाकथित गान्धार भभकों से बेहतर साधन था जो सिर्फ संग्राहक में ही वाष्प को ठण्डा करते थे। (मुख्यतः शक्कर के किण्वित गाढ़े शरबत से) व्यापक रूप से शराब की खिंचाई, जिसका बरनी, अलाउद्दीन खिलजी के काल में विस्तार से वर्णन करता है, सम्भवतः इस भभके के आगमन के बाद ही शुरू हुई।जिप्सम और चूने से बने वाटरप्रूफ सीमेंट के उपयोग से, इस काल में नील के कुण्ड बनाए जाने लगे, जिससे नील के उत्पादन में भारी सुधार हुआ, क्योंकि पहले पत्थर के बर्तनों का इस्तेमाल करके ही रंग तैयार किया जाता था, तथा उन बर्तनों का आकार भी बहुत छोटा होता था।

11.6हस्तशिल्पी एवं दास

तुर्कों के अधीन बड़ी संख्या में नवीन शिल्पों का आगमन हुआ था तथा इन शिल्पों को उत्पादन की प्रक्रिया में शामिल किया गया था। अब इन शिल्पों के संचालन के लिए श्रमिकों की आवश्यकता थी। आरंभ में भारतीय शिल्पियों ने इन शिल्पों को अपनाने में तत्परता नहीं दिखायी, अतः इन शिल्पों के संचालन के लिए बड़ी संख्या में दासों की जरूरत पड़ी। यह भी एक कारण है कि मुहम्मद गोरी से लेकर फिरोजशाह तुगलक तक लगभग सभी सुल्तानों ने दासों के संग्रह पर बल दिया। फिरोजशाह तुगलक के अधीन 1 लाख 80 हजार दास थे उनमें से कुछ को तो धार्मिक अध्ययनों हेतु प्रशिक्षित किया गया, जबकि12,000 को कारीगरों अथवा शिल्पकारों के रूप में प्रशिक्षित किया गया तथा विभिन्न परगनों में भेज दिया गया। तथा उसने दासों के निर्यात पर पाबंदी लगायी थी। बरनी भी दिल्ली में एक दास बाजार का जिक्र करता है। हालांकि इन दासों को सैनिक सेवा में भी लिया गया था किन्तु इनका एक भाग उत्पादन में भी लगाया गया था।

भारत में प्रचलित जाति व्यवस्था पर भी हम तकनीकी का प्रभाव महसूस कर सकते है |भारत में शिल्पियों की एक बड़ी संख्या निम्न जातियों से संबद्ध थी। भारत में शिल्प और तकनीकी जाति व्यवस्था से जुड़ी हुई थीतथा अपने पेशे को परिवर्त्तित करने पर कई प्रकार की रूकावटें थी। वस्तुतः तुर्की शासन की स्थापना ने ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर आधारित भारतीय कुलीन वर्ग को कमजोर कर दिया। दूसरी तरफ तुर्की शासन की स्थापना ने नगरों एवं कस्बों में नए आर्थिक अवसर प्रदान किए। शासक वर्ग की जरूरत को पूरा करने के लिए बड़ी मात्रा में उत्पादनों की जरूरत पड़ी तथा उत्पादन के संचालन के लिए शिल्पियों के एक वर्ग की। निम्न जाति से संबद्ध भारतीय शिल्पी नगरों एवं कस्बों में नवीन शिल्पों के प्रति दिलचस्पी दिखाने लगे किन्तु जैसा कि समकालीन स्त्रोतों से ज्ञात होता हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति और शिल्प के बीच गहरा संबंध था। अतः नए शिल्प को अपनाने के लिए जाति का बंधन तोड़ना आवश्यक था। इसलिए सल्तनत काल में नगरों एवं कस्बों में एकेश्वरवादी आंदोलन अथवा निर्गुण भक्ति के विकास को इस संदर्भ में भी देखा जा सकता है। निर्गुणभक्ति ने जाति बंधन को कमजोर कर नवीन शिल्पों को प्रोत्साहन दिया। कबीरदास और नानक इस एकेश्वरवादी आंदोलन के प्रवर्तक बने। कबीरदास और नानक दोनों ने जाति व्यवस्था को अस्वीकार किया। कबीरदास ने निम्न जाति के शिल्पियों को एक नया आश्वासन दिया। दूसरी तरफ गुरूनानक के विचारों केप्रभाव में पंजाब में खत्री जाति एवं जाट एक पृथक समुदाय के रूप में संगठित हो गए जिसे हम सिख के रूप में जानते हैं। इस प्रकार सल्तनत काल में नवीन शिल्पों के आगमन ने दास व्यवस्था और जाति व्यवस्था दोनों को प्रभावित किया।

11.7 सारांश

सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि तुर्की शासन की स्थापना ने निश्चिय ही आर्थिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाये तथा निश्चित रूप में दशतकारी, वाणिज्य-व्यापार एवं नगरीकरण को प्रोत्साहन दिया। दिल्ली सल्तनत में एक मजबूत केन्द्रीय सत्ता के होने से विदेशी व्यापार को बढावा मिला एवं नवीन व्यापारिक वर्गों व शहरों का विकास हुआ | इन व्यापारिक गतिविधियों को विकसित अवस्था तक ले जाने में शिल्पी एवं दासों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा |

11.8 तकनीकी शब्दावली

- **कर्षक :** उपज की बटाई करने वाले किसान अथवा बटाई काश्तदार |
- **हलवाहक**: हल चलाने वाले अथवा खेतिहर मजदूर |
- **खुद-काश्त :** स्वतंत्र किसान, जो भूमि के मालिक या स्वामी थे।
- **मेहराब शैली (True Arch)** : भवन निर्माण की इस्लामिक शैली, जिसमें वक्राकार ढांचे में इंटों को सटा कर गुम्बद या छत का भर दीवारों पर सामान रूप से वितरित कर दिया जाता था |

11.9 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. 'चरखा' के प्रचलन का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रन्थ में मिलता है –

(अ) आशिका (ब) तारीख-ए- फिरोजशाही

(स) फुतुह-उल सलातीन (द) बाबरनामा

2. काग़ज़ की प्राचीनतम उपलब्ध पांडुलिपि कहाँ से प्राप्त हुई है-

(अ) गुजरात (ब) बंगाल

(स) मालवा (द) खानदेश

11.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. स, 2. अ

11.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव.आशीर्वादीलाल, दिल्ली सल्तनत
2. ईश्वरी प्रसाद, भारत का इतिहास भाग-1
3.चन्द्र. सतीश., मध्य कालीन भारत- भाग 1
4. वर्मा.हरिश्चंद्र., मध्यकालीन भारत- भाग-1
5. हबीब और निजामी ., दिल्ली सल्तनत
6. महाजन. विद्याधर., मध्यकालीन भारत
7. शर्मा. एल.पी., मध्यकालीन भारत
8. हबीब. इरफ़ान., मध्यकालीन भारत भाग -1 से 5 तक

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सल्तनत कालीन आंतरिक एवं विदेशी व्यापार का विवरणात्मक उल्लेख कीजिए|

2. सल्तनत काल में किसानों की स्थिति एवं ग्रामीण परिवेश का मूल्यांकन कीजिए|

इकाई बारह- 1400 ईस्वी से 1526 ईस्वी के मध्य बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, मालवा, मेवाड़, और कश्मीर

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 बंगाल राज्य

- **12.3.1 गयासुद्दीन आजमशाह (1389-1409)**
- **12.3.2 शम्सुद्दीन अहमद शाह (1431-35)**
- **12.3.3 नासिरुद्दीन महमूदशाह (1442-58)**
- **12.3.4 रुकनुद्दीन बारबक शाह (1459-74)**
- **12.3.5 जलालुद्दीन फतेह शाह (1481-87)**
- **12.3.6 अलाउद्दीन हुसैन (1493-1519)**

12.4 उड़ीसा

- **12.4.1 पुरुषोत्तम (1467-1497 ई.)**
- **12.4.2 प्रताप रुद्र (1497 ई.)**

12.5 गुजरात

- **12.5.1 अहमदशाह**
- **12.5.2 सुल्तान महमूद बेगड़ा**

12.6 मालवा

- **12.6.1 खिलजी वंश**
- **12.6.2 सुल्तान नासिरुद्दीन**

12.7 मेवाड़

- **12.7.1 कुंभा (1433-68)**
- **12.7.2 ऊदा (1468-73)**
- **12.7.3 राणा सांगा (1509-28)**

12.8 काश्मीर

- **12.8.1 सुल्तान जैनुल आबिदीन**

12.9 सारांश

12.10 तकनीकी शब्दावली

12.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न

12.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

12.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

सन् 1340 से 1526 के बीच दिल्ली सल्तनत का राजनीतिक अंत हो जाने के बाद अनेक क्षेत्रीय राजवंशो का उदय हुआ ।दिल्ली सल्तनत के पतन के लिए अनेक कारण जिम्मेदार रहे जैसे- उत्तराधिकार की समस्या, इक्ता व्यवस्था, एक मजबूत नौकरशाही की व्यवस्था न होना, विदेशी शक्तियों जैसे मंगोल आक्रमण का नकारात्मक प्रभाव एवं दिल्ली सल्तनत के अयोग्य उत्तराधिकारियों का होना| इन मुख्य कारणों ने अन्य क्षेत्रो में उपस्थित योग्य एवं दूरदर्शी इक्तेदारों व सेनाधिकारियों को अपनी स्वतंत्र सत्ता को बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया जिसके फलस्वरूप बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, मेवाड़, मालवा एवं काश्मीर जैसे आर्थिक एवं सामरिक दृष्टि से मजबूत क्षेत्रों में स्वतंत्र शासन सत्ताओं का निर्माण हुआ|

12.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के माध्यम से आप जान पाएंगे कि किस प्रकार सल्तनत साम्राज्य के कमजोर होने का क्षेत्रीय शक्तियों ने फायदा उठाया तथा साथ ही इन क्षेत्रीय शक्तियों जैसे कि मालवा, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा, मेवाड़ एवं काश्मीर इत्यादि ने अपने- अपने क्षेत्रों में मजबूत साम्राज्यों का गठन कर लम्बे समयकाल तक इन रियासतों में शासन कर क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं संस्कृति को बढावा दिया|

12.3 बंगाल राज्य

दिल्ली सल्तनत के इतिहास में मुहम्मद गोरी के सेनानायक बख्तियार खिलजी द्वारा तुर्क साम्राज्य का पूर्वी भाग जीतने के साथ बंगाल के इतिहास का एक नवीन स्वरुप निर्मित होता है | 11 वीं सदी से 14 वीं सदी तक बंगाल एवं सल्तनत सुल्तानों की केन्द्रीय शक्ति के मध्य संघर्ष एवं मित्रता का सम्बन्ध चलता रहा | लेकिन बंगाल सन् 1576ईस्वी तक एक पृथक शासन राज्य के रूप में तब तक कायम रहा जब तक कि अकबर के सेनापतियों ने अंतिम अफ़गान सुल्तान दाऊदशाह को पराजित कर मौत के घाट नहीं उतार दिया। तैमूर के उत्तरी भारत पर आक्रमण के समय बंगाल में गयासुदीन आजमशाह शासन कर रहा था |

12.3.1 गयासुद्दीन आजमशाह (1389-1409)

बंगाल का सुल्तानगयासुद्दीन आजमशाह इलियास वंश का अत्यंत लोकप्रिय शासक था। इसके शासनकाल में अहोम राजा सुदांगफा और कमता के राजा के बीच युद्ध हुआ। उसने अपनी सत्ता का प्रसार करने के लिए इस अवसर का लाभ उठाकर कमता के राजा के प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। किंतु दोनों राजाओं में समझौता हो गया और वे अपनी संयुक्त सेनाओं सहित सुल्तान के सामने प्रकट हुए। गयासुद्दीन उनका सामना न कर सका और उसकी सेना पीछे की ओर कर्येया नदी तक ढकेल दी गई।सुल्तान गयासुद्दीन ने जौनपुर के शासक ख्वाजा जहां से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किए। इसके साथ ही 1406 में एक चीनी दूत उसके दरबार में आया। चीन के सम्राट ने उससे प्रार्थना की

कि वह कुछ बौद्ध भिक्षु चीन भेजे। सुल्तान ने 1409 में चीन के सम्राट के दरबार में अपना दूत उपहारों सहित भेजा।चीनी दुभाषिया माहुयान 1409 में बंगाल आया, जिसने समकालीनबंगाल का रोचक विवरण दिया है।

सन 1409 ईस्वी में राजा गणेश के हाथों सम्राट गयासुद्दीन की दुखद मृत्यु हुई।सुल्तान गयासुद्दीन आजमशाह के पश्चात अनेक अल्पायु तथा दुर्बल उत्तराधिकारी सिंहासन पर आए किंतु वे शक्तिशाली दरबारियों के हाथ की कठपुतली रहे। मुस्लिम इतिहासकारों ने कहा था कि ऐसा ही दरबारी दीनाजपुर का राजा गणेश था, जिसका उत्थान गयासुद्दीन के शासन के अंत समय में हुआ था। 1415 ई. में स्वयं राजा गणेश ने शाही सत्ता धारण की। इससे बंगाल में सनसनी फैल गई और शेख नूर कुत्बे आलम सहित अनेक 'उलमा' और मुसलमान संतोंने जौनपुर के सुल्तान इब्राहीम को लिखा और गणेश को सिंहासन से उतार फेंकने के लिए उससे सहायता मांगी। जौनपुर का शासक बंगाल आया। तब इस शर्त पर समझौता हो गया कि गणेश अपने पुत्र यदुसेन को मुसलमान बनाएगा और उसे बंगाल के सिंहासन पर बिठाएगा।

गणेश ने अपने बारह वर्षीय पुत्र को सिंहासन पर बिठाया और स्वयं 'दनुजमर्दन' का विरुद धारण कर सत्ता का उपयोग किया। फरिश्ता के अनुसार उसने प्रभावशाली शासन किया और मुसलमानों से उदारता का व्यवहार किया। कुछ इतिहासकारों का कहना हैं कि उसने अपने पुत्र को पुनः हिंदू धर्म में परिवर्तित कर लिया जिससे वह अलोकप्रिय बन गया। 1418 में गणेश की मृत्यु हो गई । उसकी मृत्यु के पश्चात हिंदू सरदारों ने उसके छोटे पुत्र महेंद्र देव को सिंहासन पर बिठाया किंतु उसे उसी वर्ष हटाकर गणेश के बड़े पुत्र यदुसेन को शासक बनाया गया | यदुसेन पुनः मुसलमान बनने के पश्चात् 1418 में सिंहासन पर बैठा। उसने दक्षिण बिहार में टिपरा तथा रोहतासगढ़ का कुछ भाग जीत कर अपनी राजधानी पानूद (पाण्डुआ) से गौड़ बदली । उसके संरक्षण में बृहस्पति मिश्र ने कालिदास के साहित्य 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' व ' मेघदूत' आदि पर टीकाएँ लिखी।

12.3.2 शम्सुद्दीन अहमद शाह (1431-35)

शम्सुद्दीन ने अपने पिता की उदार नीति का अनुसरण किया तथा चीन से मैत्रीपूर्ण संबंध कायम रखे। 1431-32ईस्वी में एक चीनी दूत उसके दरबार में आया। उसके शासनकाल में इब्राहीम शर्की ने बंगाल पर आक्रमण किया। शम्सुद्दीन ने हिरात के शाहरूख से सहायता की याचना की। शाहरुख ने जौनपुर के सुल्तान के पास एक संदेश भेजा कि वह उसके राज्य पर आक्रमण न करे। शादी खां तथा नसीर खां नामक दासों ने उसकी हत्या कर उसका अल्पकालीन शासन समाप्त किया। इसके बाद बंगाल में इलियासशाही वंश की पुनर्स्थापना हुई |

12.3.3 नासिरुद्दीन महमूदशाह (1442-58)

यह हाजी इलियास का पौत्र था। उसने नासिरुद्दीन अबुलमुजफ्फर महमूद का विरुद धारण किया। उसने जेसोर तथा खुलना जिलों को कुछ भाग तथा आधुनिक चौबीस परगना (सतगांव प्रांत में) का क्षेत्र जीत कर अपने विशाल और सुसंगठित राज्य में मिला लिया। उसने राजधानी नगर 'गौड़' को भवनों द्वारा अधिक सुंदर बनाया।

12.3.4 रुकनुद्दीन बारबक शाह (1459-74)

नासिरुद्दीन महमूद के कुशल प्रशासन तथा शांतिपूर्ण शासन ने उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी रुक्नुद्दीन बारबक को अपना साम्राज्य बढ़ाने में समर्थबनाया। फरिश्ता के अनुसार- 'वह हिन्दुस्तान का प्रथम शासक था जिसने बड़ी संख्या में अफ्रीकी (अबीसिनाई) दासों की एक सहायक सेना संगठित की और अरब सैनिक भी रखे। बारबक के शासनकाल में राज्य का विस्तार हुआ। गंगा के उत्तर में उसका साम्राज्य कम से कम बरूर तक विस्तृत था जबकि जेसोल-खुलना क्षेत्र में उसकी दक्षिणी सीमा बनी।बारबक बंगाली साहित्य का महान संरक्षक था। उसने 'श्रीकृष्ण विजय' के संकलनकर्ता प्रसिद्ध कवि मालाधर बसु को संरक्षण प्रदान किया और उसे गुनराज खां की उपाधि प्रदान की तथा उसके पुत्र को सत्यराज खां की उपाधि से सम्मानित किया गया।

12.3.5 जलालुद्दीन फतेह शाह (1481-87)

नासिरुद्दीन महमूद का पुत्र हुसैन, जलालुद्दीन फतेह का विरुद धारण कर शासक बना । उसने अफ्रीकी दासों की शक्ति पर प्रतिबंध लगाना चाहा किंतु प्रमुख किन्नर सुल्तान शाहजादा ने असंतुष्ट दासों से मिल कर सुल्तान की हत्या कर दी। इस प्रकार इलियास शाही राजवंश का अंत हुआ।फतेहशाह की हत्या के पश्चात 'शाहजादा' ने 'बारबक शाह' का विरुद धारण कर ताज ग्रहण किया किंतु कुछ समय बाद ही एक स्वामिभक्त अफ्रीकी नायक मलिक अंदील ने उसकी हत्या कर दी। इसके बाद मलिक अंदील, 'सैफुद्दीन फीरोज' का विरुद धारण कर सिंहासन पर बैठा। तीन वर्ष के शांतिप्रिय शासन के पश्चात पायकों ने उसकी हत्या कर दी जिन्होंने अब राजा बनाने वालों की भूमिका ग्रहण कर ली थी। इसके बाद फतेहशाह का पुत्रनासिरुददीन महमूद (1490-91) शासक बना । इसकी भी एक अन्य अफ्रीकी सीदी बद्र ने हत्या कर दी। आगे दीवाना नामक अफ्रीकी हत्यारा 'शम्सुद्दीन मुजफ्फर शाह' का विरुद धारण कर सिंहासन पर बैठा और आतंकपूर्ण शासन आरंभ किया। भारी राजस्व की मांग तथा सैनिकों के वेतन में कटौती ने उसका शीघ्र पतन किया। उसके वजीर सय्यद हुसैन ने पायकों की सहायता से लगभग 1493 के अंत में गुप्त रूप से मुजफ्फर की हत्या कर दी।

12.3.6 अलाउद्दीन हुसैन (1493-1519)

सैय्यद हुसैन ने, बंगाल में 1493 ईस्वी में हुसैन वंश की नींव रखी, जो शेरशाह के उदय तक चलता रहा। राज्यारोहण के एक वर्ष पश्चात् उसने 'खलीफतुल्ला' की उपाधि ग्रहण की। उसने पायकों को सेवा से निकाल दिया। अफ्रीकी दासों को हटा दिया और हिंदू तथा मुसलमान अमीरों को उनके पूर्व पदों पर स्थापित किया। उसने न केवल बंगाल की प्राचीन सीमाओं को पुनर्स्थापित किया बल्कि कुछ अन्य क्षेत्र जीत कर अपने राज्य में मिलाए।अलाउद्दीन अपनी राजधानी 'इकदला' ले गया| जौनपुर के पराजित सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने उसके पास शरण ली थी, जिसके फलस्वरूप इसेसिकंदर लोदी की उपेक्षा का शिकार होना पड़ा ।1495 ई. में लोदी सुल्तान के आक्रामक रवैये से बंगाल

की सेनाओं में गतिविधि उत्पन्न की। अलाउद्दीन हुसैन ने अपनेपुत्र दानियाल को सिकंदर की प्रगति रोकने के लिए भेजा। इनके मध्य युद्ध नहीं हुआ किंतु दोनों सेनाएं शिविर स्थापित कर एक दूसरे के सामने खड़ी रही । अंत में सुल्तान सिकंदर के आदेशानुसार उसके सेनापतियों महमूद लोदी तथा मुबारक नूहानी ने एक दूसरे पर आक्रमण न करने की संधि कर ली और राजकुमार दानियाल ने यह प्रतिज्ञा की कि वह सुल्तान के शत्रुओं को शरण नहीं देगा।सुल्तान सिकंदर लोदी के प्रस्थान के पश्चात हुसैन शाह ने गंडक के उस पार के क्षेत्र सहित संपूर्ण उत्तरी बिहार पर अधिकार कर लिया। इसके साथ ही उड़ीसा की सीमा पर मंदारन पहले दोनों राज्यों के बीच एक सीमावर्ती दुर्ग था, जो संभवतः उड़ीसा के राय के अधिकार में चला गया था, इस पर भी गाजी इस्माइल ने अधिकार कर लिया। टिपरा के शासक से भी दीर्घकालीन युद्ध होता रहा। चौथा और अंतिम आक्रमण स्वयं हुसैन शाह द्वारा किया गया। कैलागढ़ दुर्ग के निकट भीषण युद्ध हुआ। टिपरा के कुछ भागों पर अधिकार कर हुसैन ने युद्ध समाप्त किया।

हुसैन शाह ने बंगाल राज्य की प्राचीन सीमाएं ही अधिकृतनहीं कि बल्कि इसमें कामरूप, सारन तथा टिपरा के भाग भीमिलाए। उसके अधीन विशाल क्षेत्र था जो उत्तर-पश्चिम में सारन तथा बिहार में दक्षिण-पूर्व में सिलहट और चटगांव तक तथा उत्तर-पूर्व में हाजी और दक्षिण-पश्चिम में मंदारन परगनों से घिरा था। इसके साथ ही हुसैन शाह एक विद्वान था, जिसने बंगाली भाषा को संरक्षण प्रदान किया। प्रसिद्ध बंगला लेखक मालाधर बसु, विप्रदास, विजय गुप्त तथा जसराज खां उसके शासन काल में ही फले-फूले।

हुसैन शाह की मृत्यु के बाद उसके बड़े पुत्र नासिरुद्दीन अबुलमुजफ्फर 'नुसरत शाह' (1519-32) को सर्वसम्मति से सिंहासन पर बिठाया गया। 1526 में नुसरत शाह ने मुगल दरबार में अपने दूत भेजकर बाबर को अपनी तटस्थता का आश्वासन दिया और इसके फलस्वरूप बाबर ने 1528 में अपना बंगाल अभियान त्याग दिया।

12.4 उड़ीसा

1398 ईस्वी में जब तैमूर का उत्तरी भारत में आक्रमण हुआ उस समय उड़ीसा का शासक **भानुदेव चतुर्थ (1414-35)**था | यह कलिंग के गंग शासकों में अंतिम था। राजा भानुदेव चतुर्थ के अल्लाद रेड्डी के गजपति राजा तथा कर्नाटक राजा से मैत्रीपूर्ण संबंध थे। इतिहासकार वेंकटरमनय्या लिखते हैं कि अल्लाद रेड्डी भानुदेव चतुर्थ की सहायता के लिए गया जब उसे मालवा के सुल्तान हुशंग शाह द्वारा बंदी बना लिया गया था | 1434ईस्वी का वेमवरम अनुदान बताता है कि वेमा रेड्डी ने कलिंग रौद डाला और सिंहचलम तथा पुरुषोत्तम में विजयस्तंभ स्थापित किए। रेड्डी राजा के आक्रमण भानुदेव धैर्यतापूर्वक सहन नहीं कर सका। 1435 के आरंभ में उसने स्वयं वेमा रेड्डी के विरुद्ध चढाई की। राजधानी में उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके एक मंत्री कपिलेंद्र ने उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

तत्पश्यात कपिलेंद्र (1435-1467 ई.) इस भू-भाग का शासक बना | **वेलीगलानी ताम्रपत्रों** सेयह ज्ञात होता है कि कपिलेंद्र यज्ञेश्वर का पुत्र था। माडला पंजी में यह कहा गया है कि कपिल रावत क्षत्रियथा और सूर्यवंश से संबंधित था।साहित्यिक स्रोत **'गंगवंशानुचरितम'** तथा 'भक्ति भागवत' स्पष्ट रूप से यह बताते हैं कि कपिलेंद्र सामंतों

तथा मंत्रियों की सहायता से सिंहासनारूढ हुआ।इस समयकाल में उड़ीसा पर अनेक राजाओं द्वारा आक्रमण किए गए। राजा महेंद्री के रेड्डियों ने सिहचलम तक गंग क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। 1446 में विजयनगर के शासक देवराज द्वितीय की मृत्यु ने गजपति राजा के दक्षिण की ओर प्रसार की अंतिम बाधा हटा दी। टनाकू तालुक में पेनुगोंडाका शिलालेख बताता है कि गोदावरी डेल्टा कपिलेंद्र के प्रभावकारी अधिकार में था।जगन्नाथ मंदिर शिलालेख (1450) में कपिलेंद्र ने 'मलिक पारीस' (मलिक पादशाह) के विरुद्ध अपनी दिग्विजय का उल्लेख किया है। संभवतः उसने सुल्तान नासिरुद्दीन पर कोई विजय प्राप्त की और 'गौड़ेश्वर' अर्थात् बंगाल का अधिपति उपाधि ग्रहण की। जगन्नाथ मंदिर शिलालेख में इसका प्रथम बार वर्णन किया गया है।

कपिलेंद्र ने 1453 राजामहेंद्री पर अधिकार कर लिया। कृष्णा नदी के दक्षिण की सीमा 1453 तक विजयनगर के राजनीतिक प्रभाव में थी। अगस्त 1453 के पश्चात कपिलेंद्र की सेना ने कृष्णा नदी की ओर कोंडावीडू पर अधिकार कर लिया। अगस्त 1453 और अप्रैल 1454 के बीच लगभग संपूर्ण गुंटूर जिला गजपति राजा के अधिकार में चला गया था।गजपति राजा के ज्येष्ठ पुत्र हमवीर राय या हमीर राय ने एक ऐसे विजय अभियान में अपने पिता की सेना का नेतृत्व किया जिसने उड़ीसा की सीमा दक्षिण की ओर पेन्नार नदी तक पहुंचा दी।

बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन अहमद एवं इसके मध्य भी संघर्ष हुआ | यह उड़ीसा की उदीयमान हिंदू शक्ति तथा दक्षिण के बहमनियों के बीच खुली दुश्मनी का श्रीगणेश था।वेलीगलानी ताम्रपत्र कपिलेंद्र की धार, हांपी, दिल्ली तथा गुलबर्गा के राजाओं पर विजय का उल्लेख करता है। इस लेख के अनुसार कपिलेंद्र ने पहली बार 'करनाट तथा कलबर्गा (गुलबर्गा) के अधिपति' की उपाधि ग्रहण की।1462 ईस्वी में कपिलेंद्र ने राजकुमार हमीर की अधीनता में एक विशाल सेना भेजी जिसने उदयगिरि प्रांत पर अधिकार कर लिया। कपिलेंद्र की सेना ने फिर चंद्रगिरि प्रांत पर आक्रमण किया तथा कांची पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया ।1463 में कपिलेंद्र ने अपना राजनीतिक प्रभुत्व सुदुर कावेरी तक फैला लियाएवं अपने पौत्र कपिलेश्वर कुमार महापात्र को नवविजित तमिल जिलों का राज्यपाल नियुक्त किया।1465 में उड़ियों को कावेरी तटों से निकाल फेंकने के लिए सालूवा नरसिंह ने सफल युद्ध किया। कांजीवरम में एक पुरालेख मल्लिकार्जुन महाराय के शासनकाल के उपहारों का उल्लेख करता है।वर्ष 1467 के आरंभ में वयोवृद्ध कपिलेंद्र ने अपने क्षेत्रों पर पुनः अधिकार करने के लिए दक्षिण की ओर कूच किया। वह कृष्णा नदी के तट पर पहुंचा ही था कि उसकी मृत्यु हो गई।

12.4.1 पुरुषोत्तम (1467-1497 ई.)

यह कपिलेंद्र का ज्येष्ठ पुत्र था, जो कि कपिलेन्द्र की मृत्यु के बाद सिंहासनारूढ़ हुआ। सिंहासन पर दृढता से स्थापित होने के पश्चात पुरुषोत्तम ने अपने पिता के सैनिक कारनामों का अनुसरण किया। कांची-कावेरी परंपरा, जो उड़ीसा में प्रसिद्ध थी, केअनुसार उसने कांची पर अधिकार कर लिया।

गुंटूर जिले के मतुकपल्ले में एक अभिलेख (1484) से विदित है कि मुहम्मद तृतीय की मृत्यु के तीन वर्ष के भीतर ही पुरुषोत्तम ने राजामहेंद्री तथा कोंडावीडू के प्रांत पुनः जीत लिए। 1489 में गजपति राजा गुंटूर जिले में पोतवरम

नामक गांव के एक मंदिर को अनुदान में दिया। पुरुषोत्तम ने अपना ध्यान सालूवा नरसिंह से पुनः उदयगिरि प्रांत विजित करने के लिए केंद्रित किया। 'अनंतवरम पत्रकों' और 'सरस्वती विलासम' के अनुसार पुरुषोत्तम द्वारा कर्नाटक के राजा नरसिंह को बंदी बना लियागया एवं नरसिहं को उदयगिरि क्षेत्र समर्पित कर मुक्ति प्राप्त की।

12.4.2 प्रताप रुद्र (1497 ई.)

राज्यारोहण के पश्चात प्रताप रुद्र अपने पिता के चरणचिह्नों पर चला और उसने एक विशाल सेना सहित दक्षिणी प्रदेशों पर अधिकार करने हेतु कूच किया। 1500 में उसने गुंटूर जिले में अनंवतरम तथा इदूपुलूपादु को अनुदान दिए। 'विजय अभियान' के दौरान वह राज्य की दक्षिणी सीमा पर पहुंच गया ।इदूपुलूपादु अनुदान में यह कहा गया है कि उत्कल के राजा वीर रुद्र ने गौड़ के राजा को पूर्णतः पराजित कर दिया। हुसेन शाह ने इसी प्रकार अपने सिक्कों में स्वयं को जाजनगर का विजेता बताया है ।

प्रतापरुद्र का समकालीन शासक कृष्ण देव विजयनगर का अत्यन्तशक्तिशाली शासक था। 1513 में कृष्णराय ने उड़ीसा के विरुद्ध अपना प्रथम अभियान आरंभ किया। नूनिज के विवरण के अनुसार उसने 34,000 पदाति तथा 800 हाथियों की सेना सहित उदयगिरि दुर्ग को घेर लिया। 1515 में पुनः कृष्णदेव ने उड़ीसा पर अपना द्वितीय अभियान आरंभ किया। भयंकर आक्रमण द्वारा उसने कोंडावीडू पर अधिकार कर लिया और प्रताप रुद्र का पुत्र कुमार वीरभद्र तथा कुमार हमीर का पुत्र नरहरि पात्र बंदी बना लिए।इसके कुछ समय पश्च्यात कृष्णदेव राय ने अपने तृतीय उड़ीसा अभियान की योजना पहले की अपेक्षा अधिक उत्साह से बनाई। उसने विजयवाड़ा से लगभग दस मील उत्तर में कोंडापल्ली दुर्ग पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् कृष्णदेव राय उत्तर की ओर बढ़ा और राजामहेंद्री पर अधिकार कर लिया। अंत में वह सिंहचलम पहुंचा और अपने अभियान पूर्वी दिग्विजय की सफल समाप्ति के लिए वाराह-नरसिंह की पूजा की । वह पोतनरू गया जहां उसने अपनी उपलब्धियों के प्रतीक स्वरूप एक कीर्तिस्तंभ बनवाया। 1516 के मध्य तक कृष्णदेव राय विजनयगर लौटा किंतु राय के लौटने के बाद भी उसकी सेना उसके सेनापति रायसाम कोंडमरसय्या की अधीनता में श्रकूर्मम तक आगे बढ़ी। विजयनगर सेना श्रीकूर्मम में एक और विजयस्तंभ स्थापित करने के पश्चात लौटी।

इन दोनों परस्पर युद्धरत राज्यों में अगस्त, 1519 में संधि हुई । जिसमें कृष्ण राय ने वाराह-नरसिंह मंदिर को कलिंग 'दंडपत' में दो गांव प्रदान किए जो उसने प्रताप रुद्र गजपति से प्राप्त किए थे।प्रताप रुद्र विस्तृत क्षेत्र पर शासन करने वाला उड़ीसा का अंतिम नरेश था।अपमानजनक संधि द्वारा उत्पन्न कुंठा और अपने वीर पुत्र वीरभद्र की दुखांत परिस्थितियों में अकाल मृत्यु से उत्पन्न हुए विषाद ने प्रताप रुद्र के मन पर गहरा असर डाला। आशाएं टूटने पर अब गजपति ने धर्म का सहारा लिया । उसने अब वैष्णव धर्म के सिद्धांतों में गहरी रुचि प्रदर्शित की।संभवतः प्रताप रुद्र की मृत्यु के पश्चात संपूर्ण गोदावरी कृष्णा दोआब उड़ीसा के हाथ से निकल गया।अंतिम दो सूर्यवंशी गजपति राजाओं कलुआदेव तथा कखरुआदेव के विषय में बहुत कम सूचना मिलती है। सितंबर 1542 गजपति नरेशों का सूर्यवंशी राजवंश समाप्त हो गया।

12.5 गुजरात

इस क्षेत्र में बहुत अधिक उपजाऊ जमीन, तैयार माल की भरपूर आपूर्ति और अनेक बंदरगाह थे। यहाँ अत्यंत प्राचीन काल से समृद्ध समुद्री व्यापार होता आ रहा था। उत्तर और पश्चिम भारत पर विजय प्राप्त करने वाले सभी राजवंशों का ध्यान ऐसे धन-धान्य से संपन्न प्रदेश की और आकर्षित हो जाना स्वाभाविक ही था। सन् 1024 या 1025 में सुल्तान महमूद गजनवी ने अपने प्रसिद्ध सोमनाथ अभियान के दौरान सोमनाथ के मंदिर का विनाश करके अपनी सेना को लूट का काफी माल बाँटा था। लेकिन उस समय भी स्थायी विजय का कोई प्रयास नहीं किया गया। बारहवीं सदी के उत्तरार्ध में हुए अन्य मुस्लिम आक्रमण भी किसी भी प्रकार का स्थायी नतीजा प्रदान करने में असफल रहे और इस देश पर हिंदू राजवंशों का शासन बना रहा। सन् 1297 में अलाउद्दीन खलजी ने इसे दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। इसके बाद दिल्ली सल्तनत के स्थायित्व तक दिल्ली से गुजरात में मुस्लिम सूबेदारों का नियुक्त होना जारी रहा।

सन् 1391 में नियुक्त अंतिम सूबेदार ज़फ़र ख़ाँ ने, जो कि व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र रहता आया था, सन् 1401 में औपचारिक तौर पर दिल्ली सल्तनत की अधीनता त्याग दी और अपने पुत्र तातार ख़ाँ को नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह की पदवी देकर सुल्तान के रूप में गुजरात के स्वतंत्र राज्य के सिंहासन पर बैठा दिया। तत्कालीन तथ्यों की छानबीन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस नए सुल्तान को 1407 ई० में उसके पिताज़फ़र ख़ाँ ने ही जहर दे दिया व सुल्तान मुजफ़्फ़रशाह के नाम से शासन करने लगा । लेकिन चार साल बाद ही उसे,उसके पौत्र अलप खाँ ने जहर दे दिया और स्वयं अहमदशाह नाम से तख्त पर आसीन हो गया।

12.5.1 अहमदशाह

अहमदशाह ने सन् 1411 से 1441 अर्थात तीस साल तक शासन किया और उसे ही गुजरात के स्वतंत्र राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। अहमदशाह ने अपनी शक्ति और कौशल को अपने साम्राज्य की सीमाएँ बढ़ाने और अपने राज्य का प्रशासन सुधारने में लगाया। अपने पूरे शासनकाल में उसने कभी भी पराजय का मुँह नहीं देखा। उसकी सेनाओं ने मालवा की सल्तनत और असीरगढ़ तथा राजपूताना के राजाओं तथा आस-पास के अन्यप्रदेशों पर विजय प्राप्त की। सुल्तान अहमदशाह, सुल्तान फिरोजशाह बहमनी का अत्यंत करीबी मित्र था | अहमदशाह ने गुजरात में स्थापत्य के विकास में भी योगदान दिया और असावल के निकट अहमदाबाद नगर बसाया। नवस्थापित अहमदाबाद नगर इतना सुंदर और आकर्षक था कि समकालीन यात्रियों के अनुसारइतना सुंदर और आकर्षक नगर उन्होंने सारी दुनिया में अन्यत्र कहीं नहीं देखा। अहमदशाह के पश्च्यात उसका पुत्र **मुहम्मद शाह द्वितीय (1442-1451 ई.)** सत्तारूढ़ हुआ जिसमें न तो अपने पिता की सैनिक प्रतिभा और प्रशासनिक निपुणता थी और न चरित्र। वह विलासप्रिय था और इतना उदार था कि लोग उसे साधारणतः 'जरबख्श' अर्थात् 'सोना दान करने वाला' कहते थे। इसके अतिरिक्त वह अत्यन्त मृदुल था और उसकी मृदुलता ने उसके लिए 'करीम' अर्थात् 'दयालु' की उपाधि अर्जित की।

मुहम्मद शाह की मृत्यु के पश्च्यात अमीरों ने मुहम्मद शाह के बड़े पुत्र राजकुमार जलाल खां (**कुत्बुद्दीन अहमद शाह द्वितीय (1451-1459 ई.**))को सिंहासन पर बिठाया। सत्ता पर काबिज होते ही इसे मालवा के महमूद के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसने सीमा पार कर सुल्तानपुर घेर लिया था। इस युद्ध में कुत्बुद्दीन ने अत्यंत संकट के समय अपनी आरक्षित सेना का प्रयोग किया जिसके फलस्वरूप मालवा की विशाल सेना पूर्णतः पराजित हो गई और अस्सी हाथी तथा अपनी साजसज्जा विजेताओं के लिए छोड़ कर महमूद मांडू भाग गया।

दो वर्ष पश्चात् कुत्बुद्दीन को नागौर के मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा। फीरोज शाह मर गया थाऔर सिंहासन के लिए उसके भाई मुजाहिद खां तथा उसके पुत्र शम्स खां के बीच संघर्ष था। इस स्थिति का लाभ उठाकर चित्तौड़ के राणा कुंभा ने उस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। शम्स खां अहमदाबाद भाग गया और अपनी पुत्री का विवाह कुत्बुद्दीन से कर दिया जो तुरंत शम्स खां के साथ हुए अन्याय का बदला लेने के लिए चला। कुत्बुद्दीन ने राणा के राज्य के निचले क्षेत्र उजाड़े और उसे पराजित कर कुंभलगढ़ घेर लिया। जब घेरे की अवधि बढ़ती गई तो राणा कुंभा ने विवश होकर शम्स खां को प्रचुर क्षतिपूर्ति तथा कुत्बुद्दीन को युद्ध का हर्जाना देकर संधि कर ली।

कुत्बुद्दीन ने महमूद खिलजी द्वारा भेजे गए एक शिष्टमण्डल का स्वागत किया। शिष्टमंडल ने चित्तौड़ के राणा कुम्भा के विरुद्ध मालवा तथा गुजरात के सुल्तानों के बीच संधि का प्रस्ताव रखा। यह तय हुआ कि कुत्बुद्दीन गुजरात से संलग्न राणा के क्षेत्र उजाड़े और महमूद मेवाड़ तथा अजमेर पर अधिकार कर ले। 1457 में समाचार मिला कि राणा कुंभा ने सभी पिछले वादे तोड़ कर नागौर पर आक्रमण कर दिया है। अतः कुत्बुद्दीन ने कुंभलगढ़ की ओर कूच किया। मार्ग में उसने आबू पर अधिकार कर लिया और उसे सिरोही के राजा गीतादेव को सौंप दिया जिसे राणा कुंभा ने इस पहाड़ी दुर्ग से निकाल दिया था। कुत्बुद्दीन ने कुंभलगढ़ पर आक्रमण किया किन्तु उस पर अधिकार न कर सका और अहमदाबाद लौट गया। अहमदाबाद में कुत्बुद्दीन की 1459में मृत्यु हो गई।

12.5.2 सुल्तान महमूद बेगड़ा

अहमदशाह का पौत्र सुल्तान महमूद बेगहा तेरह साल की उम्र में सन् 1459 में गद्दी पर बैठा और उसने 1511 तक लगभग आधी शताब्दी तक यशस्वी ढंग से शासन चलाया। वह बैवान वंश का सबसे प्रतापी शासक ही नहीं था वरन समकालीन भारत के सर्वाधिक प्रमुख शासकों में उसकी गणना की जाती थी। उसकी उपलब्धियाँ और व्यक्तिगत गुण इतने उल्लेखनीय है कि समकालीन पर्यटक उसकी कीर्ति-कथाओं को गाथाओं के रूप में अपने साथ यूरोप ले गए। अपने राज्यारोहण के समय यद्यपि वह बालक मात्र था तथापि ऐसा लगता है कि उसने शासन के आरंभ से ही बहुत समझदारी और योग्यता से शासन करना प्रारंभ किया और अपने संरक्षक को अलग कर देने में समर्थ हो गया। उसने गुजरात के राज्य को गौरव और महानता प्रदान की। वह गुजरात के अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती शासकों में सर्वश्रेष्ठ था। वह न्याय के निर्वाह उदारता के प्रदर्शन, युद्ध में विजय और इस्लामी कानूनों आदि सबके क्रियान्वयन में शक्ति साहस और संकल्प की प्रतिमूर्ति था। अपने अधिकांश युद्धों में वह सर्वत्र सफल रहा। उसने चांपानेर के मजबूत किले और काठियावाड़ से जूनागढ़ तक फैले विशाल भूभाग पर विजय पाई। उसने कच्छ पर सफल आक्रमण किया और अहमद नगर के निजामशाही सुल्तान के साथ-साथ अन्य अनेक समकालीन नरेशों को भी पराजित किया|

अपने शासन काल के अंतिम दिनों में उसका पुर्तगालियों से संघर्ष हुआ था, किंतु उसने पुर्तगालियों के खिलाफ तुर्कों के सुल्तान से संधि कर ली। इस तरह उसने यूरोप के राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रसिद्धि प्राप्त की। 1507 ई० में एक गुजराती अधिकारी ने पुर्तगालियों पर हमले के लिए कुछ तुर्क सेनाओं और दस जहाजों की सहायता प्राप्त की। तुर्की की आटोमन सरकार पूर्तगालियों को भारतीय सामुद्रिक प्रदेशों से बाहर खदेड़ने के लिए बहुत उत्सुक थी। पुर्तगालियों के विरुद्ध पिछले आक्रमण के दौरान गुजराती सेनाओं को सफलता मिल गई थी और उन्होंने बंबई के दक्षिण में चौल के पास कीमती माल से लदे एक विशाल पुर्तगाली जहाज को डूबो दिया था। लेकिन दो साल बाद 1509 ई० में काठियावाड़ में दीव के पास (जो कि उस समय गुजरात में शामिल था) हुए एक युद्ध में एक गुजराती जहाजी बेड़ा नष्ट कर दिया गया। इसके बाद 1510 ई० में बीजापुर से गोआ छीन लेने के बाद पुर्तगाली, भारतीय शक्तियों के प्रतिरोध के बावजूद, अपना प्रभुत्व बनाए रखने में सफल हो गए हालांकि 1535 ई० तक वे दीव का किला नहीं जीत पाए। पुर्तगालियों के विरुद्ध महमूद बेगड़ा का प्रतिरोध इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है कि अकबर अपने तमाम प्रयासों के बावजूद पुर्तगालियों का पूरी तरह दमन नहीं कर पाया।

महमूद बेगडा के पश्चात उसके पौत्र बहादुरशाह गुजरात का शासक बना जिसने 1537 ईस्वी तक शासक किया| तत्पश्यात 1572- 73 ईस्वी में अकबर ने गुजरात पर अपना अधिकार कर लिया |

12.6 मालवा

इल्तुतमिश ने तेरहवीं सदी के आरंभ में मालवा पर हमला किया था। सन् 1310 में अलाउद्दीन खलजी के एक अधिकारी ने उसे कमोबेश अपने अधिकार में कर लिया और फिर दिल्ली सल्तनत का पतन होने तक मालवा मुस्लिम सूबेदारों के शासन में बना रहा।

सन् 1398 में तैमूर के हमले के थोड़े ही समय बाद गौर के सूबेदार शिहाबुद्दीन मुहम्मद ने सुल्तान शिहाबुद्दीन गोरी का नाम अपनाया और वह नया सुल्तान बन बैठा। किंतु वह अपनी नई स्थिति का उपभोग कुल चार साल तक ही कर पाया। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि उसके सबसे बड़े पुत्र ने उसे जहर देकर मार डाला। इस तरह स्थापित स्वतंत्र राज्य सन् 1401 से 1531 तक चल सका और बाद में गुजरात ने उसे अपने कब्जे में ले लिया। चार साल बाद हुमायूँ ने यह क्षेत्र अस्थायी तौर पर अपने अधीन कर लिया। किन्तु मुगल साम्राज्य का हिस्सा वह पूरी तरह से अकबर के शासनकाल के आरंभिक वर्षों (1561-64) में ही बनपाया।

धार या धारानगरी मालवा की परमारकालीन राजधानी थी। मालवा के प्रसिद्ध विद्वान और विद्याप्रेमी शासक भोज के शासनकाल में धार एक प्रसिद्ध नगर था। लेकिन होशंगशाह की पदवी धारण करने वाले मालवा के एक मुस्लिम सुल्तान ने अपना दरबार मांडू स्थानांतरित कर लिया। यहाँ उसने अनेक उल्लेखनीय स्मारक बनवाए। इसी बीच गुजरात के साथ लड़े गए एक युद्ध में वह पराजित हुआ और साल भर तक गुजरात में बंदी भी बना रहा। लेकिन उसे फिर गद्दी पर बैठा दिया गया। गुजरात के शासकों के अनुग्रह से प्राप्त इस सत्ता पर वह सन् 1432 तक बना रहा। बाद में उसका पुत्र और गोरी वंश का तीसरा अंतिम शासक सुल्तान महमूद उसकी जगह गद्दी पर बैठ गया।

12.6.1 खिलजी वंश

सन् 1436 में सुल्तान महमूद गोरी को उसके वजीर खिलजी तुर्क **महमूद खाँ** ने जहर देकर मार डाला और तख्त पर कब्जा करके खिलजी वंश की नींव डाली जो करीब एक शताब्दी तक चलता रहा। वह मालवा के समकालीन सुल्तानों में सबसे अधिक विख्यात हुआ और उसने अपना अधिकांश जीवन गुजरात के सुल्तानों, राजस्थान के विभिन्न राजाओं और बहमनी सुल्तानों जैसे अपने पड़ोसियों से युद्ध करते रहने में बिताया। फ़रिश्ता ने महमूद द्वारा अवैध और अनियमित तरीके से गद्दी हासिल करने को नजरअंदाज करके उसके न्याय को प्रशंसनीय बताया है। उसके अनुसार "सुल्तान महमूद विनम्र, साहसी, न्यायप्रिय और विद्वान था और उसके शासन में उसकी मुस्लिम और हिंदू, दोनों ही प्रजाएँ सुखी थीं और उनमें आपस में दोस्ताना मेल-जोल कायम रहता था। ऐसा कोई वर्ष मुश्किल से ही जाता होगा जब कि वह मैदान में न उतरता हो। इस तरह शिविर उसका घर बन गया था और युद्ध का मैदान उसके लिए आरामगाह था। वह अपने फुरसत के क्षण दुनिया के विभिन्न राजदरबारों के इतिहासों और संस्मरणों को सुनने में व्यतीत करता था।"

उसके समय में हिंदुओं के साथ सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। आगे चलकर यही विवेकपूर्ण नीति हुसैन शाह ने बंगाल में अपनाई थी। चित्तौड़ के राणा के साथ महमूद खलजी का युद्ध हुआ था, राणा ने अपनी तथाकथित विजय की स्मृति में चित्तौड़में विजय-सतंभ बनवाया था। सुल्तान ने भी इसी तरह का दावा करते हुए मांडू में एक सातमंजिली उल्लेखनीय मीनार बनवाई।

12.6.2 सुल्तान नासिरुद्दीन

सुल्तान गयासुद्दीन (1469-1501 ई०) के पुत्र नासिरुद्दीन ने **महमूद खाँ**को जहर देकर खुद सत्ता पर अपना कब्ज़ा कर दिया । किन्तु यह अयोग्य साबित हुआ | 1512 ई० में बुखार से इसकी मृत्यु हो गई और उसकी जगह इस वंश का अंतिम सुल्तान उसका पुत्र महमूद द्वितीय गद्दी पर आसीन हो गया। कुछ समय बाद उसे गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने पराजित करके मार डाला। शाही परिवार के अन्य पुरुषों को देश निकाला दे दिया गया और उनमें सिर्फ एक सदस्यशेष रह गया जो सौभाग्यवश उस समय हुमायूँ के दरबार में था। 1531 ई० में मालवा को गुजरात में शामिल कर लिया गया।

मांडू का ध्वस्त किला नगर की ऊँची पहाड़ी के ऊपर लंबे-चौड़े मैदान में फैला है और करीब पच्चीस मील या इससे भी ज्यादा लम्बे परकोटे की दीवार से घिरा है। यहाँ मांडू में अभी अनेक सुपरिचित विशाल इमारतें हैं, जिनमें वास्तुकला के श्रेष्ठ नमूने मौजूद है। मांडू में एक भव्य जामा मस्जिद, हिंडोला महल, जहाज महल, होशंगशाह का मकबरा और बाजबहादुर एवं रानी रूपमती के महलों के अलावा बलुआ पत्थर और संगमरमर से बने अन्य अनेक उल्लेखनीय स्मारक शामिल है।

12.7 मेवाड़

तैमूर के भारत पर आक्रमण के समय मेवाड़ का शासक लाखा था |लक्षसिंह/लाखा (1382-1421)का प्रथम कार्यमारवाड़ के पर्वतीय क्षेत्र पर अधिकार और सीमावर्ती सरदारों का विनाश था। उसने छप्पन के मेड़ तथा भील पराजित किए, अंबर में गणराचल के सांखला राजपूतों को पराहित किया और बदनोर क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उसके शासनकाल में जावर में चांदी की खानें खोज निकाली गई जिसने राज्य के आर्थिक साधन भरपूर शक्तिशाली बना दिए। अपनी सैनिक शक्ति संगठित करने के लिए उसने अति विशाल दुर्ग तथा परकोटों का निर्माण कराया। लाखा के पश्च्यात उसका पुत्र चूंडा उसका उत्तराधिकारी बना । किन्तु चूंडाने स्वेच्छ तथा निःस्वार्थ भाव से मेवाड़ के सिंहासन पर अपना दावा व अधिकार त्याग दिया। अतः उसे 'राजस्थान का भीष्म पितामह' कहा जाता है। चूड़ा ने अपने भाई के पुत्र मोकल का संरक्षक बनकर आगे कार्य किया | किन्तु राजमाता हंसाबाई ने चूंडा का बढ़ता प्रभाव संदेह तथा ईर्ष्यालु दृष्टि से देखा। वह स्वयं को अपने पुत्र की स्वाभाविक संरक्षक समझकर चूंडा की निष्ठा पर संदेह करने लगी जिससे परेशान होकर चूंडा मांडू दरबार चला गया।

तत्पश्चात् राजमाता ने मारवाड़ से अपने भाई रणमल को बालक मोकल की ओर से शासन करने के लिए आमंत्रित किया। रणमल ने शासन का कार्यभार संभाला अतः अब मेवाड़ पूर्णतः राठौड़ों के संरक्षण में आ गया।मोकल निरंतर अपने शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध कर अपना प्रदेश शक्तिशाली बना रहा था। उसने नागौर पर आक्रमण किया और रामपुरा में 1428 के लगभग फिरोज खां पर विजय प्राप्त की। उसने सांभर तथा जालोर प्रदेश रौंद डाले। कहते हैं कि उसने गुजरात के अहमद शाह को करारी शिकस्त दी। उसने जहाजपुर का दुर्ग भी घेर लिया और हाड़ाओं का मानमर्दन किया।जीवन के अंतिम समय में उसके शत्रु अत्यन्त शक्तिशाली तथा बलवान हो गए। जब वह पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्रों में एक विद्रोह का दमन कर रहा था तो उसके चाचाओं, छाछा और मेड़ा ने जो क्षेत्रसिंह के पुत्र थे, उसकी नृशंस हत्या कर दी।

12.7.1 कुंभा (1433-68)

1433 में मोकल का पुत्र कुंभा उसका उत्तराधिकारी हुआ। मेवाड़ को मध्य भारत का प्रमुख राज्य बनाने का श्रेय राणा कुंभा को जाता है। कुंभा का प्रथम कार्य उसके साथी षड्यंत्रकारियों सहित छाछा और मेडा को दंड देना था। कुंभा के शासनकाल में सिसोदिया वंश की सामरिक गतिविधियां अपनी पराकाष्ठा परपहुंच गई। चित्तौड़, कुंभलगढ़, रणपुर में पाए गए समकालीन शिलालेखों तथा साहित्यिक रचनाओं जैसे 'एकलिंग माहात्म्य' से इन कारनामों पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। अपने वीरंदवती (बूंदी), हाड़ावती (कोटा), चाटसू, मालपुरा, अमरदादरी (अंबर), नारदीय नगर (नरवर), नारायण, गिरीपुर (डूंगरपुर) तथा सारंगपुर पर उसने विजय प्राप्त की और फिर उन्हें शासकों को लौटा दिए जिन्होंने उसकी सर्वसत्ता स्वीकार की। उसने सपदलक्ष (सांभर), डीडवाना, मंडोर, नागौर, रणथंभोर, सिरोही, गागरन, आबू, मांडलगढ़, अजयमेरु (अजमेर) तथा टोड़ा जीत कर अपने राज्य में मिला लिए। वे स्थान जो मेवाड़ के अधिकार क्षेत्र में आते थे किन्तु स्वतंत्र होना चाहते थे, जैसे- यग्नपुर (जहाजपुर), योगिनीपुर (जावर), वर्धमान (बदनोर), निरंतर युद्ध के पश्चात् नियंत्रित कर लिए गए।

इसके साथ ही राणा कुम्भा एवं मालवा शासकों के संबंधों पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है | इस समय मालवा महमूद खिलजी प्रथमके अंतर्गत यथेष्ट शक्तिशाली हो गया था। मालवा ने मेवाड़ के उन सरदारों को शरण दी थी जिन्हें अपने राज्य के विरुद्ध कुछ शिकायतें थी। इस प्रकार चूंडा, अज्जा तथा महपा पंवार का मालवा शासन द्वारा हार्दिक स्वागत किया गया। जब राणा ने मोकल के हत्यारे महपा पंवार को, जिसने सुल्तान के यहां भाग कर शरण ली थी, समर्पित करने की मांग की तो अवसर सामने आया। महमूद ने शरणार्थी को समर्पित करने से इंकार कर दिया। दोनों सेनाएं आगे बढ़ीं और 1437 में सारंगपुर के निकट युद्ध हुआ। भीषण युद्ध के पश्चात् मालवा का सुल्तान पराजित हुआ। राणा ने सारंगपुर जला डाला एवं महमूद को युद्धबंदी के रूप में चित्तौड़ लाया गया तथा इस विजय के स्मारक स्वरूप चित्तौड़ के दुर्ग में विजय स्तंभ बनवाया।

मालवा शासक को छ माह तक बंदी बनाने के बाद राणा ने उदारतापूर्वक उसे उसके राज्य में वापस भेज दिया। राणा 1441 में राणा का भाई खेमकर्ण मेवाड़ से निकाल दिया गया था जिसे मालवा के शासक ने शरण दी । 1442 में मालवा सुल्तान ने अपने शक्ति संगठित कर मेवाड़ के विरुद्ध कूच किया। पहले उसने कुंभलगढ़ पर आक्रमण किया | दुर्ग पर कोई सफलता न पाकर सुल्तान ने बाणमाता के मंदिर पर आक्रमण किया जो पहाड़ी की तलहटी में स्थित था। दिलीपसिंह के नेतृत्व में सात दिन तक वीरोचित रक्षात्मक युद्ध के पश्चात् मंदिर पर सुल्तान का अधिकार हो गया। समस्त सेना ने तब चित्तौड़ की ओर कूच किया। किन्तु यहां राजपूतों के दृढ़ विरोध के पश्चात् सुल्तान अपनी राजधानी लौट गया। इस क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं और मांडू से उसकी दूरी ने मेवाड़ पर अधिकार असंभव बना दिया था। अतः महमूद ने अपनी योजना बदल दी। उसने मेवाड़ में प्रवेश की नीति त्याग दी और मालवा के सीमान्त क्षेत्रों पर अधिकार करने लगा जो मेवाड़ के राजनीतिक प्रभाव में थे।

इसके अतिरिक्त राणा कुम्भा को गुजरात के सुल्तानों से भी सामना करना पड़ा| महमूद के निरंतरआक्रामक युद्धों के पश्चात् होने वाली अराजकता के पश्चात् गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन ने एक विशाल सेना सहित मेवाड़ की ओर इस बहाने कूच किया कि वह नागौर के शम्स खां के साथ किए गए अपमान का बदला लेना चाहता है। सुल्तान ने मलिक शाबान को आबू दुर्ग घेरने और उसे जीत कर देवड़ा सरदार को सौंपने के लिए भेजा किन्तु राणा की सेना ने उसके सभी प्रयत्न विफल कर दिए। आगे कुतुबुद्दीन को महमूद खिलजी से राणा के विरुद्ध एक संयुक्त कार्रवाही का प्रस्ताव मिला। ऐसे समझौते का कुतुबुद्दीन ने हार्दिक स्वागत किया और पूरी योजना के साथ 1457 में गुजरात की सेनाओं ने कुंभलगढ़ की ओर कूच किया और इधर महमूद ने मांडलगढ़ का घेरा डालने के लिए मंदसौर की ओर कूच किया। फरिश्ता के विवरण तथा कुंभलगढ़ शिलालेख से ऐसा प्रतीत होता है कि लंबे घेरे तथा कठिनाइयों ने दोनों सुल्तानों को अधीर बना दिया और वे अपनी राजधानी लौट गए।यह स्पष्ट है कि इन युद्धों में राणा कुंभा ने रक्षात्मक नीति अपनाई जबकि मालवा तथा गुजरात की नीति आक्रामक थी।

कुंभा युद्ध में ही महान् नहीं था अपितु वह एक प्रवीण विद्वान, धर्मशास्त्री, उत्तम कवि और विद्या का संरक्षक था। वह तर्कशास्त्र, गणित, राजनीतिक विज्ञान, व्याकरण, तत्व मीमांसा तथा सामान्य साहित्य में समान रूप से निपुण था। उसे 'गीत गोविन्द' पर 'रसिकप्रिया' नामक टीका, चण्डीशतक की व्याख्या तथा 'एकलिंगमाहात्म्य' के प्रथम भाग

'राजवर्णन'का रचयिता बताया गया है। संस्कृत, प्राकृत, कर्नाटकी, मेदपाटी तथा मराठी भाषाओं का उसे अच्छा ज्ञान था। वह एक उत्तम संगीतज्ञ भी था और संगीतशास्त्र का उसे ऐसा ज्ञान था जो उसके समय में अद्वितीय था। वह कुशल वीणावदक था। उसकी रचनाएं जैसे 'संगीतराज', 'संगीत मीमांसा', 'सूढ़प्रबंध' और 'संगीत रत्नाकर' की टीका उसके इस ज्ञान का विशेषज्ञ होने का प्रमाण है।

12.7.2 ऊदा (1468-73)

राणा कुम्भा के पश्च्यात मेवाड़ का शासक उदा बना उसने सिरोही के देवड़ा सरदारों को आबू दे दिया और अपने सगोत्रों के विरुद्ध राठौड़ सहायता निश्चित करने के लिए उसने सांभर, अजमेर तथा निकटवर्ती क्षेत्र जोधपुर के शासक को दे दिए। पितृघाती से छुटकारा पाने के लिए मेवाड़ के असंतुष्ट सामंतों ने ऊदा के छोटे भाई रायमल को ईदर से मेवाड़ आमंत्रित किया। ऊदा ने उसको आगे बढ़ने से रोकने के लिए अनेक स्थानों जैसे जावर, दादिमपुर, जावी, पनगढ़ तथा चित्तौड़ में उसका विरोध किया। किन्तु जब अंत में राजधानी में ऊदा की करारी पराजय हुई तो वह कुछ धन तथा घोड़े लेकर सोजत भाग गया। इसके बाद रायमल (1473-1508) मेवाड़ का शासक बना | यद्यपि रायमल ने मुस्लिम राज्यों की शत्रुता का सफल सामना किया किन्तु वह पारिवारिक झगड़ों तथा वैमनस्य का समाधान नहीं कर सका, जिन्होंने राज्य की आंतरिक सुरक्षा के लिए गंभीर संकट उत्पन्न किया था।

12.7.3 राणा सांगा (1509-28)

1508 में रायमल की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ का भविष्य 27 वर्षीय संग्रामसिंह प्रथम के हाथों में आ गया जो राणा सांगा के नाम से प्रसिद्ध है। सांगा के लिए मेवाड़ का सिंहासन कांटों का सेज था। एक तरफ आंतरिक कलह जिसमेंभाइयों के बीच संघर्ष राज्य के आर्थिक तथा सैनिक साधनों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा था वही बाहरी शक्तियां जैसे मालवा का नासिरुद्दीन, गुजरात का महमूद बेगड़ा व दिल्ली का लोदी सुल्तान सिकन्दर मेवाड़ पर आक्रमण की तैयारी कर रहे थे। इस स्थिति से निपटने के लिएराणा ने अपने पूर्वजों के परंपरागत गौरव तथा शान शौकत से असंतुष्ट अनेक राजाओं और रायों को एकत्र कर राजपूत शक्ति में वृद्धि की|

राणा सांगा का प्रथम संघर्ष मालवा सुल्तान महमूद खिलजी के साथ हुआ जब राणा ने राजपूत शासक मेदनी राय को संरक्षण दिया | युद्ध का उचित अवसर समझ मालवा सुल्तान ने 1519 में गागरोन पर आक्रमण कर दिया। मगर सांगा ने मेदिनीराय की सहायता से उसे 'गागरोन के युद्ध' (1519 ई.) में परास्त कर दिया। इस युद्ध में महमूद खिलजी द्वितीय घायल हो गया और बंदी बनाकर चित्तौड़ ले जाया गया। मालवा से काल्पी, भिलसा, रणथंभोर, सारंगपुर तथा चंदेरी छीन लिए गए और उन्हें उनके पूर्व राज्यपालों को वापस दे दिया गया जिन्होंने राणा को अपना स्वामी स्वीकार कर लिया।

मेवाड़ का बढ़ता प्रभाव गुजरात के मुजफ्फर शाह द्वितीय को पसंद नहीं आया। वह सांगा से युद्ध के बहाने ढूंढने लगा। ईदर के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर अवसर उत्पन्न हुआ। सूरजमल की मृत्यु पर उसके अल्पव्यस्क पुत्र

रायमल तथा उसके भतीजे भारमल ने ईदर के सिंहासन पर दावा किया। राणा सांगा ने रायमल का समर्थन किया और गुजराती सुल्तान ने भारमल का पक्ष लिया। पहले गुजरात की सेना ने रायमल को ईदर से मार भगाया किन्तु 1517 में रायमल ने राणा की सहायता से ईदर पर पुनः अधिकार कर लिया। रायमल के विरुद्ध निर्णायक विजय प्राप्त करने के लिए मुजफ्फर शाह ने मुबारिजुल मुल्क को गुजराती सेना का नायक बनाया। 1520 में राणा ने ईदर पर आक्रमण किया और मुबारिजुल मुल्क को मार भगाया। उसने अहमदनगर तथा विशाल नगर लूटे और ईदर में अपने रक्षित को स्थापित कर चित्तौड़ आया।

जिस समय सिकंदर अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने में लगा था। उसी समय राण सांगा ने छटासू पर कब्जा कर लिया जो लोदियों के अधिकार में चला आ रहा था। इतिहासकार अहमद यादगार के अनुसार राणा ने उसे पूरनमल की जागीर में शामिल कर दिया। 1511 के सिल्हादि खंढार अभिलेख से संकेत मिलता है कि पूर्वी राजस्थान में सिकंदर लोदी की शक्ति काफी कम हो गई थी। अवसर पाकर राणा सांगा वस्तुतः न केवल समूचे राजस्थान का शासक बन गया था अपितु अपने पड़ोसियों की कीमत पर अपनी सीमाओं का विस्तार भी कर रहा था। समकालीन स्त्रोतों के अनुसार सन् 1517 में खातोली (जिला-कोटा) में लोदी शासक और राणा सांगा के बीच लड़ाई हुई थी हालांकि इसमें राजपूत विजयी हुए और उन्होंने एक लोदी शहजादे गयासुद्दीन को जो कि बहलोल लोदी का पुत्र था, बंदी बना लिया | इसके बाद भी लोदी शासकों के साथ राणा का संघर्ष चलता रहा | और इस संघर्ष का अंत बाबर द्वारा पहले पानीपत के युद्ध में लोदियों को हराकर और फिर 1527 ईस्वी में खानवा के युद्ध में राणा सांगा को हराकर किया गया |

12.8 काश्मीर

चौदहवीं सदी के आरंभ में ही शाहमिर्जा अथवा भीर नामक स्वात के साहसकर्मी मुसलमान ने (जो कि कश्मीर के राजा का मंत्री रह चुका था। कश्मीर के सिहासन पर अधिकार कर लिया और वहाँ एक मुस्लिम वंश की स्थापना की जो लगभग सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक स्थायी रहा। सन् 1398 में हुए तैमूर के आक्रमण के समय कश्मीर पर इस वंश का छठा सुल्तान सिकंदर (लगभग 1386-1410) शासन कर रहा था। सिकदर के शासन की सबसे महान सफलता तैमूर के संभावित आक्रमण से कश्मीर की रक्षा थी। सिकंदर शाह ने 1379 से 1417 ईस्वी तक शासन किया | सिकंदर का उत्तराधिकारी अली शाह था जो अपने पिता कि तरह ही एक कट्टर मुस्लिम शासक था | 1420 ईस्वी में अली शाह का भाई शाही खां **'जैन- उल-अबादीन'** के नाम से सिहांसन पर बैठा | उसे बुद शाह अथवा महान सुल्तान भी कहा जाता है | वह धार्मिक रूप से उदार शासक था | इसे धार्मिक उदारता के लिए '**काश्मीर का अकबर**' भी कहा जाता है |

12.8.1 सुल्तान जैनुल आबिदीन

जैन- उल-आबदीन के समय में कश्मीर राज्य का अधिकतम विकास हुआ। गन्धार, सिंध, राजपुरी, लद्दाख, लेह आदि स्थानों पर उसने अधिकार कर लिया। उसने जम्मू के मुसलमान शासक को भी पराजित किया।उसके समय में कश्मीर में भौतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति हुई। वह स्वयं विद्वान था तथा फारसी, संस्कृत, तिब्बती और अन्य कई भाषाओं का ज्ञाता था। उसने हिंदुओं को कश्मीर घाटी में पुनः आमंत्रित किया और उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक प्रोत्साहन दिया।उसने विभिन्न करों को हटाया तथा हिंदुओं को जजिया कर से मुक्त कर दिया। व्यापारियों को उचित मूल्य पर वस्तुएं बेचने के लिये बाध्य किया। इस मूल्य नियंत्रण व्यवस्था की वजह से उसे '**कश्मीर का अलाउद्दीन खिलजी**' भी कहा जाता है। चोरी डकैती को बन्द किया तथा निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था की |

वह स्वयं कवि था तथा क़ुतुब उपनाम से कविताए लिखा करता था | उसने शिकायतनामा नामक ग्रन्थ की रचना की थी | सन् 1470 ईस्वी तक लगभग आधी सदी का लंबा और समृद्धिपूर्ण शासन चलाने वाला सुल्तान जैनुल आबिदीन बिलकुल ही अलग किस्म का व्यक्ति था। उसने सर्वव्यापी सहिष्णुता की नीति अपनाई, कश्मीर के निर्वासित ब्राह्मणों को वापस बुलाया, और नए मंदिरों के निर्माण की अनुमति प्रदान की। उसने हिन्दुओं की भावना का सम्मान करते हुए सती प्रथा से प्रतिबंध हटा लिया। वह मांस खाने से दूर रहा और उसने गौ हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया। उसे संतों के समान आदर प्राप्त हुआ जो उसके व्यक्तित्व को देखते हुए उचित ही था। उसने साहित्य, चित्रकला और संगीत को भारी प्रोत्साहन दिया तथा संस्कृत, अरबी और अन्य भाषाओं की महत्वपूर्ण रचनाओं के अनेक अनुवाद कराए।

जैन-उल-अबीदीन ने काश्मीर से कुछ उद्योगों के विकास के लिये भी काम किया | जल्दसाजी की कला सीखने के लिए उसने दो कारीगरों को समरकंद भेजा। उसने कश्मीर में शॉल बनाने की कला भी विकसित की | **वूलर झील** में उसने**जैन-उल-लका** नामक द्वीप का निर्माण किया | इसने 1470 तक शासन किया | इसके पश्च्यात इसका पुत्र हाजी खां हैदरशाह के नाम से शासक बना | वह एक वर्ष तक शासक कर सका परन्तु उसने धार्मिक कट्टरता की नीति को पुनर्जीवित कर दिया | 1540 ई० में बाबर का सम्बन्धी मिर्जा हैदर दोगलत ने कश्मीर घाटी पर हमला किया और ग्यारह वर्ष (1541-52) तक हुमायूँ की ओर से केवल नाममात्र के लिए सूबेदार के रूप में काश्मीर पर शासन करता रहा किन्तु कुछ ही वर्ष बाद काश्मीर के सिहांसन पर चाक वंश ने अधिकार कर लिया |अंत में अल्पकालिक चाक वंश को हराकर अकबर ने 1586ईस्वी में काश्मीर को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया |

12.9 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सल्तनत शासकों की कमजोर शासन प्रणाली का फायदा क्षेत्रीय शक्तियों ने उठाया और अपने प्रभुत्व में वृद्धि कर गुजरात, मालवा,मेवाड़, बंगाल, उड़ीसा एवं काश्मीर जैसे विस्तृत भू-भागों पर एक लम्बे समयकाल तक सफलता पूर्वक शासन करने में सफल रहे | इन क्षेत्रीय राज्यों के उत्थान के साथ ही क्षेत्रीय संस्कृति एवं कला का विकास भी हुआ | इन राज्यों द्वारा सफलता पूर्वक नवीन नगरों एवं व्यापारिक मंडियों का विकास किया गया |

12.10 तकनीकी शब्दावली

जजिया कर: गैर मुस्लिमों से लिया लिया जाने वाला कर |

मांडू: मालवा राज्य की राजधानी जहाँ रानी रूपमती और बाजबहादुर का महल एवं हिंडोला महल जैसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थल है |

12.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. शिकायतनामा नामक ग्रन्थ की रचना किसने की -

(अ) सुल्तान सिकंदर (ब) जैन- उल-आबदीन

(स) तैमूर (द) सुल्तान महमूद खिलजी

2. मेवाड़ के शासकराणा कुम्भा ने किस राजा पर विजय प्राप्त करने की स्मृति में चित्तौड़में विजय-स्तंभ बनवाया था।

(अ) महमूद बेगडा (ब) सुल्तान सिकंदर

(स) महमूद खलजी (द) इब्राहीम लोदी

12.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. ब, 2. स

12.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.हबीब और निजामी ., दिल्ली सल्तनत |

2. हबीब. मोहम्मद., प्रान्तीय राजवंश।

3. वर्मा. हरिश्चंद्र., मध्यकालीन भारत (भाग-1)।

4. श्रीवास्तव. आशीर्वाद लाल., दिल्ली सल्तनत ।

5. महाजन. विद्याधर., मध्यकालीन भारत ।

6. शर्मा. एल.पी., मध्यकालीन भारत|

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. 1400 ईस्वी से 1526 ईस्वी तक बंगाल एवं उड़ीसा के राजनैतिक इतिहास का मूल्यांकन कीजिए |

2. काश्मीर के इतिहास पर प्रकाश डालिए |

3. मेवाड़ राज्य का अपने समकालीन राज्यों से संघर्षो का वर्णन कीजिए |

इकाई तेरह – दिल्ली सल्तनत का विखंडन, कारण एवं परिणाम

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3राजत्व की प्रकृति
13.4कुलीन वर्ग और सुल्तानों के बीच संघर्ष
13.5राजस्व प्रशासन में संकट
13.6मंगोल आक्रमण और उसके परिणाम
13.7क्षेत्रीय राज्यों का उदय
13.8सारांश
13.9तकनीकीशब्दावली
13.10स्वमूल्यांकित प्रश्न
13.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.12 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई के माध्यम से आप दिल्ली सल्तनत के विखंडन के पीछे के कारणों और परिणामों से भली-भाति परिचित हो सकेंगे। पूरे सल्तनत काल (1206-1526 ई.) के दौरान भारत में पाँच राजवंशों ने शासन किया था, जिसमें प्रथम राजवंश का संस्थापक कुतुबुदीन ऐबक (इस वंश को मामलूक वंश या इल्बरी वंश कहा गया है।)और अंतिम लोदी राज वंश था। चूँकि तुर्क मध्य एशिया से आए थे, इसलिए वे शासन सत्ता के उदयमान अवस्था में भारतीय राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था से अनभिज्ञ थे। भारत में अपने शासन को सुचारू रूप से बनाए रखने के लिए तुर्कों ने यहाँ कई प्रशासनिक प्रथाएँ शुरू कीं, जो मोटे तौर पर कुछ परिवर्तनों के साथ लंबे समय तक जारी रही। सल्तनत काल के राजनीतिक इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप यह पता चलता है कि सल्तनतकालीन शासकों को आंतरिक कलह और बाहरी खतरे दोनों से एक साथ निपटना पड़ा, विशेष रूप से कुलीन वर्ग और सुल्तानों के बीच चल रहे संघर्ष से।समय के साथ साथ ये समस्याएं इतनी गहन हो गई कि उन्होंने राजनैतिक संकट को जन्म दिया, जो अंतत: दिल्ली सल्तनत के राजवंशों के क्रमिक पतन में सहायक सिद्ध हुई।

13.2 उद्देश्य

दिल्ली के सुल्तानों को भारतीय परिवेश में अपनी राजसत्ता स्थापित करने के दौरान कई राजनीतिक और प्रशासनिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। समय बीतने के साथहीये समस्याएँ इतनी गंभीर हो गईं कि उन्होंने राजनीतिक संकट पैदा कर दिया और अंततः यह सल्तनत शासनकाल के पतन का कारण बना। इस इकाई के माध्यम

से हम सल्तनत के विखंडन के लिए उत्तरदायी कारणों और परिणामों की चर्चा करेंगे और आप यह भी जान पायेंगे की सल्तनत के विखंडन के बाद किस प्रकार से क्षेत्रीय राज्यों ने अपने प्रभुत्व को कायम किया।

13.3राजत्व की प्रकृति

सम्पूर्ण सल्तनत काल में शासन की सबसे बड़ी कमजोरी यह रही की यहाँ उत्तराधिकार का कोई स्पष्ट नियम अस्तित्व में नहीं था और न ही इस दौरान इससे सम्बंधितकोई सुपरिभाषित कानून विकसित हो पाया। इसके बजाये सल्तनत कालीन शासकों ने वंशानुगत सिद्धांत को अपनाया लेकिन व्यवहार में इसका पालन भी नहीं किया गया। ऐसा कोई नियम उपलब्ध नहीं था कि केवल सम्राट का बड़ा बेटा ही उसका उत्तराधिकारी होगा (ज्येष्ठाधिकार का नियम)। ध्यातव्य हैकि इल्तुतमिश ने अपनी बेटी रजिया सुलतान को अगले सम्राट के रूप में मनोनीत किया था।

इस प्रकारयदि देखा जाए तोसल्तनत की स्थापना से ही उत्तराधिकार नियम के स्पष्ट न होने की वजह से सत्ता को हड़पने के लिए साज़िशें होती रही थी। उदाहरण के तौर पर कुतुबद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद उसका बेटा आराम शाह कुछ समय के लिए ही शासन कर सका, तदुपरांत उसे कुतुबद्दीन ऐबक के ही एक गुलाम और दामाद इल्तुतमिशने अपदस्थ कर सिंहासन पर कब्जा कर लिया। इल्तुतमिश की मृत्यु (1236 ई.) के बाद राजसत्ता पाने के लिए संघर्ष और झगड़े का एक लंबा दौर चला और इस पर विराम तब लगा जब आखिरकार बलबनने इल्तुतमिश के 'चालीस' गुलाम के दलों का सफाया कर दिया। बलबन ही सल्तनत का वह पहला सुल्तान थाजिसने राज-पद की प्रतिष्ठा में प्राण फूंकने के लिए राजत्व की अवधारणा को एक नया आकार देने का प्रयास किया।लेकिन बलबन की मृत्यु के तुरंत बाद शुरू हुआ सत्ता के लिए संघर्ष फिर से इस बात की पुष्टि करता है कि पूरे सल्तनत काल में 'तलवार' ही सत्ता की मुख्य निर्णायक कारक बनी रही। बलबन ने अपना उत्तराधिकारी कैखुसरो को नामांकित किया था परन्तु दिल्ली के कोतवाल फखरुदीन ने अपनी महत्वकांक्षाओं के चलते कैकुबाद को सिंहासन पर बैठा दिया। हालांकि आगे चलकर वह भी खिलजी मलिकों (1290 ई.) के हाथों मारा गया और उन्होंने सल्तनत के इतिहास में एक नये वंश खिलजी शासन की नींव रखी। खिलजी वंश का संस्थापक जलालुदीन खिलजी भी बहुत अधिक समय तक शासन नहीं कर पाया और 1296 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खिलजी को मार कर सिंहासन पर कब्जा कर लिया। अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु ने गृहयुद्ध और सत्ता के लिए संघर्ष को और अधिक बढ़ा दिया। जिसकी परिणति सल्तनत काल में एक नये वंश तुगलक शासन की शुरुआत के साथ हुई।अमीरों के विद्रोह तथा अपनी असफल नीतियों के क्रियान्वयन के चलते मुहम्मद बिन तुगलक का शासन भी कमजोर हो गया था। बाद में आगे चलकर फिरोज शाह तुगलक के कार्यों ने इस पतन को और अधिक विस्तार दिया।फिरोज शाह तुगलक की मृत्यु के बाद होने वाली प्रतिद्वंद्विता ने अंततः सल्तनत के एक नये वंश सैय्यद (1414-51 ई.) के उदय को जन्म दिया।

सैय्यद वंश को अपदस्थ कर उत्तर भारत में लोदियों का शासन प्रारंभ हुआ, लोदियों (1451-1526 ई.) के राज्यारोहण के साथ ही शासन – प्रशासन में एक नया तत्व-अफगान जुड़ गया। इन अफगान शासकों के मध्य संप्रभुता

की अपनी एक खास ही अवधारणा थी। यह अफगानी लोग अपने ऊपर सुल्तान की स्थिति को स्वीकार करने के लिए तो तैयार थे, लेकिन वे साम्राज्य को अपने कबीलों (फरमुलिस, सरवानी, नियाज़ी, आदि) के बीच विभाजित करना चाहते थे। बहलोल लोदी द्वारा इस वंश की स्थापना के समय से ही यह अफगानी तत्त्व शासन प्रशासन के क्षेत्र में अत्यधिक प्रबल था, हालाँकि सुल्तान सिकंदर लोदी ने काफी हद तक इन अफगान सरदारों की महत्त्वाकांक्षा पर अंकुश लगाने की कोशिश करी।सिकंदर लोदी (1517 ई.) की मृत्यु के पश्चात यह लोदीसाम्राज्य इब्राहिम और जलाल के बीच विभाजित हो गया साथ ही शाही अधिकार और विशेषाधिकार भी कबीले के सदस्यों द्वारा समान रूप से साझा किए गए। उदाहरण के लिए-हाथी रखना शाही विशेषाधिकार था, लेकिन. आजम हुमायूं सरवानी के पास सात सौ से अधिक हाथी होने की बात कही जाती है। इसके अलावाअफ़गानों ने कबायली एकता को बनाए रखने की अवधारणा को अपनाया, जिसने लंबे समय में केंद्रीय सरकार की सैन्य दक्षता को बहुत बाधित किया। यह भी सच है कि सिकंदर लोदी ने महत्वाकांक्षी अफ़गान रईसों को नियंत्रण में रखने की कोशिश की, लेकिन ऐसा लगता है कि अफ़गान राजनीति की अवधारणा विकेंद्रीकरण की ओर अधिक झुकी हुई थी, जिसने अंत में साम्राज्य में दरारें पैदा की और शनैः शनैः भारतीय उपमहाद्वीप पर एक युग का समापन हुआ और एक नयी शक्ति मुगलों का आगमन हुआ।

13.4कुलीन वर्ग और सुल्तानों के बीच संघर्ष

सल्तनत काल का राजनीतिक इतिहास 1206 ई. से 1526 ई. तक बना रहा, परन्तु इन तीन शताब्दियों के दौरान कभी भी सल्तनत की स्थिती एक सी नहीं रही। यह बात इस तरफ भी इशारा करती है कि सम्पूर्ण सल्तनत काल के दौरान इसका एकीकरण और पतन काफी हद तक उमरा वर्ग की रचनात्मक और विनाशकारी गतिविधियों से प्रभावित होता रहा था। सल्तनत के शासन के दौरान इस उमरा वर्ग के लोगों ने हमेशा राजनीतिक और आर्थिक लाभों को अपने हक़ में भुनाने की पूरी कोशिश करी।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के प्रथम वंश, इल्बारी वंश (1206-90 ई.) के दौरान सुल्तान और कुलीन वर्ग के बीच का यह संघर्ष स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है यहसंघर्ष मुख्यतः तीन मुद्दों को लेकर था: जिसमें से पहला मुद्दा उत्तराधिकार का, दूसरा मुद्दा कुलीन वर्ग का संगठन और तीसरा तथा सबसे प्रमुख मुद्दा इन कुलीन वर्गों और सुल्तानों के बीच आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के विभाजन से सम्बंधित था। दिल्ली की राजसत्ता पर जब कुतुबुद्दीन ऐबक गद्दीनशीं हुआतो सर्वप्रथम उसके अधिकारों का विरोध करने वालों में उसी के निकतम सहयोगी,कुबाचा (मुल्तान और उच्छ का गवर्नर), यल्दूज (गज़नी का गवर्नर) और अली मर्दन (बंगाल का गवर्नर) जैसे प्रभावशाली कुलीन वर्ग से सम्बंधित लोग थे जिन्होंने उसकी प्रभुसत्ता को स्वीकार करने से मना कर दिया था। आगे चलकर यही समस्या विराससत के रूप में उसके उत्तराधिकारी और इस वंश के वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश को प्राप्त हुई थी, जिसने अंततः अपनी सूझ-बूझ, प्रशासनिक क्षमता तथा कूटनीति के माध्यम से इस संकट को नियंत्रित कर लिया था। आगे अपने शासनकाल में इल्तुतमिश ने इन कुलीन वर्ग के लोगों को एक निकाय के रूप में स्थापित किया जिसे 'तुर्कान-ए चिहिलगानी'या चालीसा के रूप में जाना जाने लगा था, जो व्यक्तिगत रूप से उसके प्रति वफादार था। हालाँकि यह

बात सत्य है कि इल्तुतमिश के जीवनकाल में ही चालीसा दल के सरदार अपने राजनैतिक दृष्टिकोण से अत्यंत शक्तिशाली हो चुके थे परन्तु इनकी असली महत्वाकांक्षाएँ इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद ही सतह पर अपना आकार ग्रहण कर सकी। 1236 में इल्तुतमिश की मृत्यु से 1265 में बलबन के राज्यारोहण होने तक दिल्ली सल्तनत का इतिहास राजनैतिक रूप से अस्थिर रहा क्योंकि इस दौरान इल्तुतमिश द्वारा गठित चालीसा दल के सरदारों के मध्य राजनैतिक प्रभाव स्थापित करने के लिए निरंतर संघर्ष चलता रहा।इस प्रकार हम देखते हैं किइल्तुतमिश ने सत्ता पर जो एक नाजुक संतुलन हासिल किया था वो उसकी मृत्यु के बाद टूट गया। उदाहरण के लिएइल्तुतमिश ने अपने बड़े बेटे नसरुद्दीन महमूद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था परन्तु चूंकि उसकी मृत्यु इल्तुतमिश के जीवनकाल में ही हो गई इस कारण उसने अपनी बेटी रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया।लेकिन अब तक परिस्थितियाँ बदल चुकी थी और उमरा वर्ग शासन प्रशासन में अपने प्रभुत्व को बनाये रखना चाहते था और वैसे भी इससे पूर्व में तुर्कों के बीच किसी महिला शासिका का कोई उदहारण देखने को नहीं मिलता साथ ही कट्टर उलेमा वर्ग भी किसी महिला के सुल्तान पद पर आसीन होने को 'शरियत' के आदेशों की अवहेलना मानते थे, इसी का फायदा उठाकर रजिया के विरुद्ध राजदरबार में अमीरों के षड्यंत्र होने लगे।साथ ही कुछ उमरा वर्ग के सरदारों ने उसके उत्तराधिकार को इसलिए भी मंजूरी नहीं दी, क्योंकि उसने चालीसा के प्रतिकार के रूप में गैर-तुर्की समूहों (एबिसिनियन और भारतीयों) को संगठित करने की कोशिश की थी। नतीजन यह हुआ की उसकी सौतेली माँ 'शाह तुर्कान' भी अपने पुत्र फिरोज को शासक बनवाने के लिए चालीसा दल के साथ मिलकर रजिया के खिलाफ षडयंत्र बुनने लगी।रजिया की पराजय ने चालीसा दल के होंसलों को और भी अधिक बुलंद कर दिया और इसके बाद सुल्तान पद पर आसीन होने वाले कुछ शासक इस उमरा वर्ग के हाथों की कठपुतली बनकर शासन करते रहे।आगे अमीरों और सुल्तान के बीच इस कशमकश का दौर नसीरुद्दीन महमूद (1246-66 ई.) के शासनकाल तक जारी रहा, और इस पर लगाम तब ही लग सकी जब बलबन ने राजसिंहासन पर अपनी सत्ता काबिज करी।

बलबन के राजनैतिक जीवन की शुरुआत इल्तुतमिश के एक दास के रूप में हुई थी और वह जल्दी ही अपनी योग्यता और प्रतिभा के बलबूते पदोन्नति पाकर इल्तुतमिश के विश्वनीय चालीसा दल में शामिल हो गया था।नसीरुद्दीन महमूद के शासनकाल में सन 1246 ई. में वह प्रधानमंत्री के पद पर काबिज हुआ और उसकी मृत्यु के उपरान्त सन 1266ई. में वह सुल्तान के पद पर आसीन हुआ। बलबन के राज्यारोहण के समय सल्तनत विषम परिस्थितियों का सामना कर रही थी, जहाँ एक ओर उत्तर पश्चिमी सीमा से मंगोल आक्रमण का भय था वहीं राज्य के भीतर भी अराजकता और अव्यवस्थाएं अपने चरम पर थी। इल्तुतमिश के पश्चात ही सुल्तान पद की शक्ति और गरिमा को लगातार आघात पहुंचा था। दिल्ली का सामंत वर्ग उद्दंड और अनुशासनहीन हो चुका था, क़ानून व्यवस्था की स्थिती गंभीर रूप से शिथिल पड़ चुकी थी तथा दिल्ली की आम प्रजा लुटेरों से परेशान थी।इन सभी समस्याओं का समाधान एक शक्तिशाली शासक ही कर सकता था और बलबन ने इस कृत्य को अपनी प्रशासनिक कार्यकुशलता के दम पर मुमकिन कर दिखाया। चूँकि वह खुद सुल्तान पद पर आसीन होने से पहले चालीसा दल का सदस्य रह चुका था, इसलिए वह इन कुलीन सरदारों की विद्रोही गतिविधियों से पूरी तरह वाकिफ था। इसलिएउसने सबसे पहले 'तुर्कान-ए-

चिहलगनी'के प्रभाव को शासन - प्रशासन से समाप्त करने का कार्य किया। उसने इस दल से जुड़े सभी सदस्यों को धीरे धीरे महत्त्वपूर्ण पदों से हटाना शुरू किया तथा आवश्यकतानुसार जो सदस्य अधिक शक्तिशाली थे उनकी हत्या करवा दी। (उदाहरण के लिए शेरखां को अपने मार्ग से हटा दिया) बलबन ने शासन में नए राजत्व सिद्धांत को प्रतिपादित किया जिससे सुल्तान पद की गरिमा को पुनः स्थापित किया गया साथ ही उसने स्थायी सेना, गुप्तचर विभाग की स्थापना, निष्पक्ष न्याय का बंदोबस्त इत्यादि का प्रबंध किया जिससे जहाँ एक और कुलीन सामंतों पर उसकी सैन्य निर्भरता कम हो गई वहीं वह आवश्यकता पड़ने पर अपनी सैन्य शक्ति का उपयोग अब इन सामंतों की बढ़ती महत्वकांक्षाओं को रोकने या उन्हें दण्डित करने के लिए भी कर सकता था। न्याय के मामले में तो वह इतना निष्पक्ष था कि एक बार उसने अवध के एक सामंत को कोड़े लगवा दिए थे, न्याय की इस व्यवस्था के चलते उसे दोहरा लाभ हुआ, पहला तो वह जनता के बीच लोकप्रिय हो गया और दूसरा सामंतों को दण्डित करने की वजह से सुल्तान पद की प्रतिष्ठा के समक्ष सामंतों की हीन स्थिती की पुष्टि हो गई। इस से जनता को भी यह स्पष्ट हो गया कि सत्ता का वास्तविक केंद्र सुल्तान है न कि सामंत। वस्तुतः यदि सल्तनत के इतिहास का निष्पक्ष मूल्यांकन किया जाए तो हम देखेंगे की इल्तुतमिश ने जिस साम्राज्य की रूपरेखा खींची थी, बलबन ने उसे सर्वोच्च सत्ता और शक्ति प्रदान करी।

अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई.) का शासनकाल सल्तनत के इतिहास में विशेह महत्त्व रखता है। इससे पहले ही बलबन के काल में साम्राज्य का सुदृढीकरण हो चुका था जिससे आलाउद्दीन को साम्राज्य के विस्तार का मौका भी उपलब्ध हुआ।अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में जहाँ एक ओर कुलीनों की संरचना में विस्तार हुआ वहीं उसने कुलीनों पर नियंत्रण रखने के उपाय किये। उसने कुलीनों के किसी एक समूह द्वारा राज्य पर एकाधिकार कतई स्वीकार नहीं था। उसने राज्य के कुलीन वर्ग को नियंत्रण में रखने के लिए भूमिपतियों के दमन हेतु मध्यस्थों का दमन कर दिया, साथ ही राजधानी में त्यौहार, भोज, उत्सव इत्यादि के समय मदिरापान पर रोक लगवा दी। इसके अलावा उसने अमीरों के मध्य होने वाली शादी विवाह को भी नियंत्रित किया ताकि उनकी शक्ति में वृद्धि न हो सके।इसके अलावा अलाउद्दीन द्वारा किये गए सैन्य सुधार और आर्थिक सुधार उसकी सदी से कहीं आगे के थे। परन्तु अफ़सोस यह है कि उसके उत्तराधिकारी उसकी इस विरासत को कायम न रख सके और यह स्थिति भी अल्पकालिक सिद्ध हुई। उसकी मृत्यु के पश्चात एक बार पुनः कुलीनों के मतभेद और षड्यंत्रों का दौर प्रारंभ हो गया जिससे शासक के रूप में खिलजी वंश का खात्मा हो गया।

खिलजियों के बाद सल्तनत पर तुगलकों का आधिपत्य हुआ।जहाँ तक तुगलकों का सवाल है, तो मुहम्मद बिन तुगलक इस वंश का सबसे पढ़ा लिखा शासक था जिसने विस्तारवाद की नीति को अपने चरमोत्कर्ष तक पहुंचा दिया था। हालांकि उसके फैसलों से जहाँ एक ओर सल्तनत पर आर्थिक संकट गहराया वहीं दूसरी ओर जनता में रोष की भावना बलवती हुई।मुहम्मद बिन तुगलकनेबारम्बारकुलीनों को संगठित करने का प्रयास किया। उसने सामंत वर्ग के पुनर्गठन तथा उन्हें विविध तत्वों का प्रतिनिधित्व देने के भी उपाय किये।लेकिन उसके सभी प्रयास उन्हें नियंत्रित करने में विफल रहे। यहाँ तक कि खुरासानियों ने, जिन्हें वह 'अइयाह' (प्रियजन) कहता था, ने भी उसके साथ

विश्वासघात किया। उसके शासनकाल के दौरान कुलीनों द्वारा उत्पन्न समस्याओं का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनके शासनकाल के दौरान 22 विद्रोह हुए।मुहम्मद बिन तुगलक के असफल प्रशासनिक प्रयोगों ने जहाँ सुल्तान के प्रति असंतोष को और अधिक बढ़ावा दिया वहीं उत्पन्न आर्थिक संकट के चलते सल्तनत में समस्याओं और विद्रोहों की संख्या बढ़ी जिसकी परिणति बंगाल, बहमनी और विजयनगर जैसे राज्यों के स्वतंत्र होने में देखी जा सकती है।

मुहम्मद बिन तुगलक की मृत्यु के बाद शुरू हुआ यह संकट और भी विकराल हो गया। ऐसी परिस्थितियों में स्पष्ट ही था कि नवनियुक्त शासकफिरोज शाह तुगलक कुलीनों के साथ सख्त व्यवहार नहीं कर पाता। पहले से ही मुहम्मद बिन तुगलक की नीतियों के चलते प्रजा, अमीरों और उलेमा वर्ग में असंतोष की भावना घर कर गई थी और शासक की छवि धूमिल हुई थी। अतः शासन सँभालते ही फिरोज ने तुष्टिकरण की नीति अपनाई। उसने अमीरों, सामंतों और उलेमाओं को कई रियायतें प्रदान करी। साम्राज्य का आधार इक्ता व्यवस्था को भी उसने वंशानुगत बना दिया। सुल्तान केइस प्रकार से तुष्टिकरण की नीति को अपना लेने से कुलीन वर्ग तो खुश हुआ,लेकिन लंबे समय में फिरोज कीयह नीतियां साम्राज्य के लिए विनाशकारी साबित हुई। समय के साथ साथ साम्राज्य की सेना भी अक्षम हो गई क्योंकि उसने अलाउद्दीन खिलजी द्वारा शुरू की गई घोड़ों पर दाग लगाने की प्रथा को लगभग भूला ही दिया था। हालाँकि यह बात सत्य है की फिरोज के शासनकाल में अत्यधिक मात्र में जनकल्याणकारी कार्य किये गए परन्तु उसकी नीतियों ने साम्राज्य के पतन के मार्ग को खोल दिया था, जिससे उसके वंशजों या बाद के शासकों के लिए दिल्ली सल्तनत के पतन की लहर को रोकना संभव नहीं था।

सैय्यद (1414-51 ई.) और लोदी वंश के शासकों (1451-1526 ई.) के अधीन भी यहस्थिति बनी रही। हालाँकि सिकंदर लोदी ने इस आसन्न तबाही को रोकने का एक अंतिम प्रयास अवश्य किया था, उसने अमीर वर्ग को पुनः अनुशासन में लाने का प्रयास किया और उनकी जागीरों और आमदनी पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। हालाँकि यह प्रयास भी दिल्ली सल्तनत के पतन को रोकने के लिए नाकाफी सिद्ध हुए क्योंकि अफ़गानों के बीच मतभेद और उनकी असीमित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को सीमित रख पाने में वह सफल न हो सका। इसके पश्चात लोदी वंश के अंतिम शासक के रूप में इब्राहीम लोदी ने सत्ता संभाली जो अंततः पानीपत के मैदान में सन 1526 ई. में बाबर के हाथों पराजित हुआ। और इस प्रकार दिल्ली की सरजमीं में एक युग का अंत हुआ और मुग़ल वंश की स्थापना हुई जिसने भारत में अंग्रेजों के आगमन तक अपनी राजसत्ता को कायम रखा।

13.5राजस्व प्रशासन में संकट

भारत सदियों से एक कृषि प्रधान देश रहा है और यही कारण है कि जब तुर्कों ने भारत में सल्तनत की स्थापना करी तो सल्तनत की स्थापना के समय से ही भू-राजस्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण मुद्दा था, और क्यों न हो चूंकि तत्कालीन समय में राजस्व ही आय का प्रमुख साधन था।तुर्कों ने भारत में आकर इस्लामी अर्थव्यस्था से सम्बंधित सिद्धांतों को राजस्व प्रशासन के क्षेत्र में लागू किया। इस इस्लामी व्यवस्था का वर्णन किताब-उल-खराज (बग़दाद के मुख्य काजी

अबू याकूब द्वारा लिखित) में किया गया है। इस व्यवस्था का मुख्य आधार खराज और उस है जो कि भूमि की उर्वरता पर निर्भर करता था। सल्तनत में भू-राजस्व के क्षेत्र में पहला प्रयोग इल्तुतमिश द्वारा किया गया था जिसे भारत में इक्ता प्रणाली का जनक माना जाता है।इल्तुतमिश द्वारा राजस्व आवंटन (इक्ता) की एक सुदृढ़ प्रणाली शुरू की गई थी जिसके माध्यम से सल्तनतकालीन शासकों ने एक विशाल नौकरशाही को अक्षुण्ण बनाए रखा। हालाँकि फिरोज शाह तुगलक के शासनकाल तक आते आते इक्ता के बंटवारे में विसंगतियां पैदा हो गई थी। इल्तुतमिश ने जिस उद्देश्य से इस इक्ता प्रणाली की नींव रखी थी उसे फिरोज शाह तुगलक ने अपनी तुष्टिकरण की नीति को अमलीजामा पहिनाने के चक्कर में तहस नहस कर दिया। इल्तुतमिश के शासनकाल में जिस इक्ता पर इक्तेदारों का कोई अधिकार नहीं था उसे फिरोज ने वंशानुगत और स्थायी बना दिया। इतिहासकारअफीफ इसकी व्याख्या करते हुए कहता है कि, "अगर कोई व्यक्ति मर जाता है, तो उसका पद स्थायी रूप से उसके बेटे को मिल जाता था; अगर उसका कोई बेटा नहीं है, तो उसके दामाद को; अगर उसका कोई दामाद नहीं है, तो उसके दास को; अगर उसका कोई दास नहीं है, तो उसकी महिलाओं को।" इस व्यवस्था में परिवर्तन हो जाने से सल्तनत के भीतर सामंत वर्ग और अधिक वर्चस्वशाली हो गया जिसने साम्राज्य की नींव को हिला दिया।कुल मिलाकर फिरोज शाह के समय इक्ता के आनुवांशिक हो जाने के कारण अब किसी भी दशा में जमीन का स्थानांतरण असंभव हो गया। आगे सिकंदर लोदी के शासन काल में इक्ता धारकों से बचा हुआ अतिरिक्त धन (फवाजिल) भी खजाने में जमा कराया जाना बंद हो गया इसके साथ ही अब इक्ताधारकों को अनुदान में प्राप्त भूमि को पुनः अपने अधीन अन्य लोगों को अनुदानित करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया। इन सबसे जहाँ एक और सल्तनत को राजस्व में भारी हानि हुई वहीं स्थायी इक्ताधारकों ने भी अपने अपने क्षेत्रों में अपनी गहरी पैठ बना ली। इस कारण पूरे साम्राज्य में व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार और अशांति का बोल-बाला हो गया, साथ ही अब इक्ताधारकों की महत्वाकांक्षाएँ भी बढ़ने लगी और वे सभी अपनी भूमि पर स्वतंत्र शासक होने का स्वप्न बुनने लगे, इन सभी परिस्थितियों के परिणाम घातक सिद्ध हुए और सल्तनत का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

13.6मंगोलआक्रमण और उसके परिणाम

सल्तनत काल में मंगोलों का आक्रमण भी एक दिलचस्प विषय है जिसने सल्तनत के विघटन में अपना योगदान दिया, साथ ही मंगोल आक्रमण के भय चलते जो परिस्थितीजन्य बदलाव उत्पन्न हुए उन्होंने तत्कालीन संस्थाओं और नीतियों को भी बृहत् स्तर पर प्रभावित किया था। दिल्ली के सुल्तानों की यह विवशता थी की वे भारत की उत्तर – पश्चिमी सीमा पर अपना प्रभुत्व बनाये रखें, क्योंकि इससे उनको मध्यएशिया और मध्य पूर्व एशियाई देशों के साथ व्यापार संबंध बनाये रखने में सुलभता होती थी। यही वह सीमा थी जहाँ से मंगोल बारम्बार लूट के उद्देश्य से भारत पर आक्रमण करते थे।डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव का मत है कि 'बार-बार होने वाले मंगोल आक्रमणों ने भी, जिनका आरम्भ 1240 ई. में रजिया की मृत्यु के पश्चात् हुआ, दिल्ली सल्तनत के भाग्य और नीति पर गहरा प्रभाव डाला।' प्रारंभ में यह आक्रमण केवल लूट के उद्देश्य तक सीमित थे लेकिन कालांतर में मंगोलों के भीतर भारत को जीतकर यहाँ शासन करने की इच्छा बलवती हो गई।बलबन, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक जैसे शासक मंगोल आक्रमणों के प्रति सचेत थे और उन्होंने इस उद्देश्य से साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित रखने हेतु

सैन्य तथा कूटनीतिक उपक्रमों का सहारा लेकर मंगोलों के किसी बड़े आक्रमण को रोके रखा। वस्तुतः इन शासकों ने मंगोल समस्या के निराकरण के लिए बहुत सारा पैसा, समय खर्च करने के साथ साथ अपने कई हजार सैनिकों की कुर्बानी दी। परन्तु जैसे ही सत्ता पर अयोग्य और कमजोर शासक काबिज हुए तो वे मंगोलों के आक्रमण का प्रतिकार न कर सके। सबसे पहले तैमूर के एक पौत्र पीर मुहम्मद नेभारत विजय की योजना बनायी और उसने सन 1396-97 में उच्छ और दीपालपुर के क्षेत्र को जीत लिया।इसके बाद उसकी सहयता हेतु सन 1398 में तैमूर ने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। तैमूर के इस आक्रमण को उत्तर भारत के इतिहास में एक विभाजन रेखा के रूप में भी देखा जा सकता है।उसके इस आक्रमण में जहाँ एक ओर दिल्ली में भीषण रक्तपात और लूट-खसोट हुई वहीं तैमूर ने न केवल तुगलक वंश का अंत कर दिया बल्कि उत्तर भारत में केन्द्रीय सत्ता के युग पर ही विराम चिन्ह लगा दिया। बीती दो शताब्दियों में तुर्क शासकों द्वारा जिस सल्तनत को संगठित कर एक केन्द्रीय राजनैतिक व्यवस्था का विकास किया गया था वह तैमूर के आक्रमण से उजाड़ हो गई। पूरा उत्तर भारत एक बार फिर से छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया और सल्तनत की सत्ता केवल दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों में ही सिमट कर रह गई। तैमूर ने इस आक्रमण के बाद पंजाब को अपने साम्राज्य में मिलाकर खिज्र खां को वहां का शासक नियुक्त कर दिया। इसके साथ ही जौनपुर, गुजरात, खानदेश जैसे राज्यों ने भी अपने को स्वतंत्र घोषित कर लिया। दक्षिण भारत में बहमनी साम्राज्य और विजयनगर साम्राज्य पहले ही अस्तित्व में आ चुके थे और केन्द्रीय सत्ता के लोप हो जाने के पश्चात छोटे छोटे हिन्दू राजा भी सल्तनत की सत्ता से मुक्त होकर स्वतंत्र शासन करने लगे। इससे हुआ यह कि अब क्षेत्रीय राज्यों के उदय का मार्ग प्रशस्त हो गया और बीते दो शताब्दियों से जैसी सुसंगठित राजनैतिक सत्ता कायम थी अब वह लगभग अगले सवा सौ सालों तक नेपथ्य में चली गई, और इसमें पुनः सुदृढीकरण बाबर द्वारा मुग़ल वंश की स्थापना (1526) करने के साथ ही हो पाया।

13.7क्षेत्रीय राज्यों का उदय

पिछले अध्याय में आप क्षेत्रीय राज्यों के बारे में विस्तार पूर्वक पढ़ चुके हैं, इसलिए इस अध्याय में आपको केवल यह समझाया जायेगा कि कैसे क्षेत्रीय राज्यों का उदित होना सल्तनत के विघटन का एक प्रमुख कारण बना। साथ ही पिछले अध्याय के वाचन के पश्चात आप यह भी समझ पाए होंगे कि दिल्ली के सुल्तानों और कुलीनों के बीच का संघर्ष सल्तनत के आरम्भ से ही प्रारंभ हो गया था। परन्तु आपने इस बात पर भी गौर किया होगा किजबजब सल्तनत के केंद्र में शक्तिशाली शासक उपस्थित रहे तब तक उन्होंने इन क्षेत्रीय विद्रोहों को कुचलने का कार्य सफलतापूर्वक किया, और जब जब केंद्र कमजोर हुआ तो सत्ता के खिलाफ विद्रोह की प्रकृति खुलकर सामने आयी। सल्तनत के इतिहास में हमें पहली बार भौतिक विघटन का संकेत मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में दृष्टिगत होता है, जब सन 1347 ई. में भारत के दक्षिणी हिस्से में बहमनी साम्राज्य और उसके कुछ समय बाद विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की गई। लेकिन बहमनी साम्राज्य की स्थापना हो जाने के बाद भी सल्तनत अगले 50 वर्षों तक अक्षुण्ण बनी रही और इसमें क्रांतिकारी परिवर्तन तब आया जब तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण (1398 ई.) किया। तैमूर के आक्रमण ने जहाँ एक तरफ सल्तनत की कमज़ोरी को उजागर कर दिया वहीं इसने कुलीनों को सुल्तान से स्वतंत्र होकर अपने प्रभाव क्षेत्र को स्थापित करने का पर्याप्त अवसर भी प्रदान किया। इस प्रकार 1394 में ख्वाजा जहाँने जौनपुर,

दिलावर खान ने मालवा (1401), ज़फ़र खान ने गुजरात (1407), और राजस्थान के आस पास के कुछ क्षेत्रों में भी शासकों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इस समय तक बंगाल में बुगरा खान भी पहले से ही एक अर्ध-स्वतंत्र राज्य के रूप में शासन कर रहा था। कुल मिलाकर यदि कहा जाए तो व्यावहारिक रूप से इस समय तक सल्तनत का आकार दिल्ली के चारों ओर 200 मील के दायरे में ही सिमट चुका था। इन सारे नवसृजित क्षेत्रीय राज्यों के उदय का एक भारी नुकसान यह हुआ कि सल्तनत के आय के स्त्रोत बाधित हो गए जिससे एक कुशल सेना बनाये रख पाने और अन्य प्रशासनिक कार्यों के कुशल निष्पादन में अवरोध उत्पन्न हो गया। वैसे भी बंगाल, मालवा, जौनपुर और गुजरात जैसे प्रदेशों के उपजाऊ क्षेत्र हाथ से निकल जाने के कारण सल्तनत को भारी नुकसान उठाने के साथ साथराज्य के विशाल राजस्व संसाधनों से हाथ धोना पड़ा। इससे हुआ यह कि अब सल्तनत का केंद्र लंबे युद्धों को लड़ने और विद्रोही तत्वों के खिलाफ अभियान चलाने में पूर्णतः असमर्थ हो गया। आगे सैय्यद और लोदी वंश के अधीन तो यह स्थिति इतनी गंभीर हो गई थी कि सुल्तानों को अपने नियमित राजस्व वसूली क्षेत्रों में भी राजस्व उगाही के लिए सालाना अभियान भेजने पड़ते थे। उदाहरण के लिए, 1414 से 1432 ई. तक लगातार अंतराल पर कटेहर और मेवाती सरदारों को दबाने के लिए बार-बार सेना भेजी गई। इसी प्रकार, बयाना और ग्वालियर के सरदारों ने भी राजस्व देने में अपनी अनिच्छा प्रकट की और परिणामस्वरूप इनके विरुद्ध भी1416 से 1506 ई. तक बार-बार अभियान चलाए गए। यह सब दर्शाता है कि 15वीं शताब्दी के दौरान दिल्ली पर सुल्तानों का नियंत्रण केवल नाममात्र का ही शेष रह गया था और अब सल्तनत को उखाड़ फेंकने के लिए केवल एक अंतिम धक्के की आवश्यकता थी, और ताबूत की यह आख़िरी कील 1526 के पानीपत युद्ध में बाबर द्वारा भारत को विजित कर मुग़ल वंश की स्थापना से पूर्ण हुई।

13.8सारांश

अब तक आपने यह जान लिया है कि सल्तनत का विखंडन भारतीय उपमहाद्वीप में 15वीं और 16वीं शताब्दी के दौरान एक ऐतिहासिक काल को संदर्भित करता है, जिसमें यह साम्राज्यक्षेत्रीय राज्यों में विघटित हो गयाथा। यह विखंडन मुख्य रूप से आंतरिक संघर्ष, बाहरी आक्रमणों और शक्तिशाली क्षेत्रीय शासकों के उदय से शुरू हुआ था। दिल्ली में कमजोर होती केंद्रीय सत्ता ने कई स्वतंत्र शासकोंको उदित होने का मौका दिया,जैसे बंगाल की सल्तनत, गुजरात की सल्तनत, मालवा की सल्तनत और जौनपुर की सल्तनत।ये क्षेत्रीय सल्तनतें शासन, संस्कृति और प्रशासन के क्षेत्र में अपनी स्वायत्तता बरतती थी साथ ही ये अक्सर अपने क्षेत्र और प्रभाव में वृद्धि और विस्तार करने के लिए एक-दूसरे के साथ संघर्ष में लगे रहते थे।

सल्तनत के पतन का एक राजनीतिक कारण उत्तराधिकार के किसी भी सुस्थापित और सर्वमान्य कानूनका अभाव भी था। यह इस्लामी राजनीति के पूरे इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कारक था। सल्तनत के शासनकाल में कोई सुलतान तब तक ही मजबूत था जब तक उसे कुलीनों के कुछ समूहों का समर्थन प्राप्त था। ऐसी परिस्थितियों में शासक और कुलीन समूहों के बीच मतभेद और संघर्ष स्पष्ट रूप से दृष्टिगत थे,थोड़ा सा अवसर मिलने पर ही यह कुलीन वर्ग आंतरिक संघर्ष को तेज कर अक्सर हिंसक रूप से सामने आता था। प्रशासनिक प्रयोग के रूप में शुरू की गई इक्ता

प्रणाली प्रारंभ में तो केंद्रीय राजसत्ता के लिए फलदायी थी और इसने इसके हस्तांतरण और गैर-स्थायित्व के तत्वों के साथ सुल्तान की शक्ति सुनिश्चित की। दूसरी ओर, इन सिद्धांतों के धीरे-धीरे गायब होने सेविशेष रूप से फिरोज शाह तुगलक के शासन के समय तकराज्य के मूल तत्वों का क्षय का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसका परिणाम विभिन्न क्षेत्रों में स्वायत्त और फिर स्वतंत्र राजनीतिक केंद्रों का उदय था। मंगोल शक्ति ने भी सल्तनत पर बार-बार आक्रमण किया,लेकिन संभवतःउनके आक्रमणों से सल्तनत की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति पर कोई गंभीर असर नहीं पड़ा।

अन्तोगत्वा सल्तनत के विखंडन का भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीतिक परिदृश्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इसने सत्ता के विकेंद्रीकरण और विभिन्न क्षेत्रों में विविध सांस्कृतिक और भाषाई पहचानों के उद्भव में योगदान दिया। इसके अलावा, इसने 16वीं शताब्दी में बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया, जिसने अंततः एक ही शाही शासन के तहत विखंडित क्षेत्र के अधिकांश हिस्से को फिर से एकजुट किया।

13.9तकनीकी शब्दावली

- ❖ अइयाह : 'प्रियजन' (मुहम्मद तुगलक के अधीन खुरासानी कुलीन)
- ❖ उमरा : कुलीन (अमीर का बहुवचन)
- ❖ तुर्कान-ए-चिहलगनी: इल्तुतमिश द्वारा अपने सर्वश्रेष्ठ 40 दासों को मिलकर बनाया गया एक दल जो शासन के प्रबंध में मदद करते थे।

13.10स्वमूल्यांकित प्रश्न

प्रश्न: तैमूर ने भारत पर आक्रमण कब किया?

1. 1398 2.1498 3.1397 4.1497

प्रश्न: बलबन किसके पश्चात सुल्तान बना?

1. फिरोज 2. नसीरुद्दीन 3. रजिया बेगम 4. मसूद

प्रश्न: बहमनी साम्राज्य की स्थापना किस वर्ष की गई?

1. 1342 2.1347 3.1350 4.1356

प्रश्न: पानीपत के प्रथम युद्ध में किसकी हार हुई?

1. बहलोल लोदी 2. राणा सांगा 3. सिकंदर लोदी 4. इब्राहीम लोदी

प्रश्न: ममलूक वंश का वास्तविक संस्थापक किसे माना जाता है?

1. कुतुबुदीन ऐबक2. बलबन 3. मुहम्मद गोरी 4. इल्तुतमिश

13.11सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- दिल्ली सल्तनत (711- 1526), आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, संस्करण-2014
- दिल्ली सल्तनत, हबीब और निजामी, संस्करण-2012
- मध्यकालीन भारत, नीरज श्रीवास्तव,संस्करण-2010
- मध्यकालीन भारत: एक सर्वेक्षण, इमत्याज अहमद, संस्करण-2016
- मध्यकालीन भारत, सल्तनत से मुग़ल काल तक, डॉ० सतीश चन्द्र, संस्करण-2011
- मध्यकालीन भारत, हरीश चन्द्र वर्मा, संस्करण 1995
- भारत का इतिहास (1200 से 1526 ई. तक), महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

13.12निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न: सल्तनत के विघटन के कारणों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डालिए?

प्रश्न: क्या आप इस बात से सहमत हैं कि क्षेत्रीय राज्यों का उदय सल्तनत के पतन का मुख्य कारण था? तर्क सहित अपना उत्तर दें।

इकाई चौदह: सल्तनत काल में महिलाओं की प्रस्थिती

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 सल्तनत काल में राजव्यवस्था और स्त्रियाँ
14.4 समाज में महिलाओं की स्थिति
14.5 धर्म और महिलाएँ
14.6 सारांश
14.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
14.8 निबंधात्मक प्रश्न
14.9 संदर्भ ग्रंथ

14.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति और समाज में उनके प्रभाव के संबंध में उपलब्ध जानकारी बहुत कम है। लेकिन अक्सर, उनके बारे में संयोगवश या अप्रत्यक्ष तौर पर कही गई कोई बात हमें उस काल के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उनकी स्थिति और प्रतिष्ठा के बारे में कुछ तथ्य प्रदान करती है।

विद्वानों का एक पक्ष यह मानता है कि इस्लाम के आगमन के साथ ही भारत में महिलाओं की स्थिति का पतन हुआ, पर्दे के कठोर होते नियम, बाल विवाह और सती प्रथा के प्रचलन में तेज़ी आई. वहीं दूसरा पक्ष यह मानता है कि हिंदुस्तान में महिलाओं के सम्बंध में अधोगामी प्रवृत्ति की शुरुआत पहले से ही हो चुकी थी, जिसका प्रमाण विभिन्न प्रकार की स्मृतियों पर लिखे जा रहे भाष्यों और टीकाओं से मिलता है. वहीं हाल के समय में इतिहासकारों के बीच इस बात को लेकर सहमति बनी है कि महिलाओं की स्थिति का आकलन श्रेष्ठ और पतनशील अवस्था के दायरे में करने के बजाय विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की समुचित भूमिका का आकलन अपने-अपने दायरे में किया जाना चाहिए और सत्ता तथा समाज के लैंगिक निरूपण को सामने लाने की कोशिश करनी चाहिए। इस्लाम की जन्मभूमि में मुसलमानों के बीच महिलाओं का सख्त पर्दा करना आम बात थी। स्वाभाविक रूप से भारत जैसे विदेशी देश में इस पर अधिक जोर दिया गया होगा। इस युग की भावना 'हस्त बहिस्त' में अमीर ख़ुसरो के शब्दों और मतला-उल-अनवर में उनकी बेटी को दी गई सलाह से प्रतिबिंबित होती है। हम पाते हैं कि वह अपने संबोधन की शुरुआत इस प्रकार करते हैं, "ईश्वर चाहता है कि आप अस्तित्वहीन होने की इच्छा करते या आप एक नर शिशु होते या आठवें महीने में पैदा होते (ताकि मर जाते)"। स्त्रियों के विषय में ऐसे कई उद्धरण हमें फ़ारसी साहित्य में मिलते हैं। इसी तरह संस्कृत ग्रंथों और हिंदी की उपभाषाओं में लिखे जा रहे ग्रंथों में भी देखने को मिलता है। इस इकाई में हम सल्तनत कालीन भारत में

महिलाओं की स्थिति, विशेष रूप से समाज में उनके स्थान, राज-परिवारों में उनकी भूमिका और धर्म के क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति की चर्चा करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- सल्तनत काल में महिलाओं की स्थिति में आने वाले परिवर्तन और निरंतरता के विषय में जान पाएंगे,
- इनकी शिक्षा, विवाह और पारिवारिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- धार्मिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका और धर्म के दायरे में उनकी प्रतिष्ठा को समझ पाएंगे,
- राज परिवारों में महिलाओं की भूमिका इस स्थिति और प्रतिष्ठा के विषय में जान पाएंगे।

14.3 राजव्यवस्था, पितृसत्ता और दो महिला शासिकाएँ

पूर्व मध्यकाल से ही भारत की राजनीतिक संरचना पितृसत्तात्मक आधारों पर टिकी हुई थी। यद्यपि पूर्व मध्यकाल से ही हमें कई महिलाओं शासिकाओं द्वारा निभायी गई महत्वपूर्ण भूमिका के विषय में पता चलता है और इसके माध्यम से हम राजत्व के लैंगिक आधार के विषय में जान सकते हैं। विश्व के अन्य देशों के साथ-साथ हिंदुस्तान में भी सदा से ही राजसत्ता का दायरा पितृसत्तात्मक के रंग में रंगा हुआ था और भारतीय शास्त्रीय परंपरा के अनुसार राजत्व और पुरुषत्व समकक्ष और समरूप अवधारणाएँ रही थीं। यद्यपि, पूर्व मध्ययुगीन समाज की प्रकृति पितृसत्तात्मक थी, लेकिन इस काल का भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिसमें रानियों को राजगद्दी का उत्तराधिकार सौंपा गया था। दिद्दा, यशोवती और सुगंधा कश्मीर को हम कश्मीर की तीन प्रसिद्ध रानियों के रूप में जानते हैं। चन्द्रादित्य की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी विजयामहादेवी को पूर्वी चालुक्यों के शासन की बागडोर दी गई। सिंहासन पर बैठने के पांचवें वर्ष में उसने ब्राह्मणों के लिए एक भूमि का अनुदान निर्गत किया था। दिवाबरसी नाम की एक कदम्ब राजमाता ने तब तक राज्य चलाया जब तक युवराज बालिग नहीं हुआ। उसके द्वारा भी भूमि अनुदान प्रदान किए गए थे। ओडिशा के भौमकर राजवंश के इतिहास में एक से अधिक महिलाओं ने शासन की बागडोर संभाली। दरबारी सामंतों के आग्रह पर पृथ्वी महादेवी, जो त्रिभुवन महादेवी के नाम से भी विख्यात है, ने राजगद्दी संभाली थी। भौमकर महारानियों में दण्डिमहादेवी, धर्म महादेवी तथा वल्कुल महादेवी के नाम भी आए हैं, जिन्होंने राजगद्दी संभाली थी। इन महिलाओं ने अधिकतर तब शासन सम्भाला जब सत्ता सम्भालने के लिए पुरुष उत्तराधिकारी उपस्थित नहीं था। लेकिन, पृथ्वी महादेवी के मामले में उसके सोमवंशी राजपरिवार की बेटी होने तथा उनके हस्तक्षेप के कारण उसे राजगद्दी मिलने की संभावना अधिक प्रबल है। दिलचस्प तथ्य है कि भौमकर रानियों के लिए साम्राज्यिक पदवियों का स्त्रैण रूपांतर प्रयोग में लाया गया- परमभट्टारिका तथा महाराजाधिराजा, और परमेश्वरी इत्यादि। रुद्रमादेवी 13वीं शताब्दी के आंध्र देश की एक प्रसिद्ध काकतीय रानी थी, जिसको उसके पिता ने स्वयं उत्तराधिकारी के रूप में चुना था। उपर्युक्त सभी सभी उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि, यद्यपि पूर्व मध्यकालीन

भारत में शक्ति सामान्य रूप से पुरुषों के हाथों में निहित थी, लेकिन विशेष परिस्थितियों में महिलाओं को भी शक्ति सौंपी जा सकती थी। इससे पहले की हम सल्तनत काल में, विशेष रूप से तुर्कों के सम्बंध में, राजसत्ता में महिलाओं की भूमिका की चर्चा करें, संक्षेप में हम रानी रुद्रमादेवी पर चर्चा करेंगे।

वारंगल में, रुद्रमादेवी के राज्यारोहण के पहले काकतीय वंश-परंपरा के अनुसार उत्तराधिकार पिता से पुत्र अथवा अग्रज से अनुज को हस्तांतरित होता रहा था। रुद्रदेव (1163-1195) के बाद उनके भाई महादेव (1195-1198) ने सिंहासन प्राप्त किया था। महादेव के बाद सत्ता उसके पुत्र गणपति (1199-1261) के हाथों में गई। गणपति के कोई पुत्र नहीं थे और शायद तब तक उसके सभी भाई भी जीवित नहीं बचे थे। गणपति ने अपनी पुत्री रुद्रमादेवी को अपना उत्तराधिकारी चुना और शायद कुछ वर्षों तक दोनों ने संयुक्त रूप से शासन भी किया। कालांतर में रुद्रमादेवी ने स्वतंत्र रूप से शासन की बागडोर संभाली। सिंथिया टालबॉट ने रुद्रमादेवी के इस उदाहरण का उपयोग मध्यकालीन भारत में महिला शासकों की स्थिति के विषय में उठाए गए प्रश्नों के संदर्भ में किया है। 1262 ई. के उपरांत के काकतीय राजवंश के अभिलेखों में रुद्रमादेवी का ही उल्लेख राजा के रूप में किया गया है। इस रानी का लंबा शासन 1289 में उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हुआ। रुद्रमादेवी ने दक्षिण तमिलनाडु के पांण्ड्य, उड़ीसा के पूर्वी गंग शासक तथा देवगिरि के सेउना शासकों को पराजित किया। सिर्फ रानी रुद्रमा को कायस्थ परिवार के अम्बादेव द्वारा किए गए विद्रोह को दबाने में कम सफलता मिली।विद्रोह करने वाले काकतीय राजवंश के अधीनस्थ सामंत थे। रानी ने युद्ध के मैदान में पुरुष वेश धारण कर अपने सैनिकों का नेतृत्व किया, किंतु शायद युद्ध के दौरान ही उनकी मृत्यु हो गई। उसके आदेश पर निर्मित एक मंदिर के स्तंभ पर लगी पट्टिका पर उसे दुर्गा के समान एक स्त्री योद्धा के रूप में दिखलाया गया है, जिसके हाथों में खडग और ढाल दिखाया गया है। उसे राया-गज-केसरी की उपाधि दी गई है। रुद्रमादेवी केवल जैविक दृष्टिकोण से एक स्त्री थी, अभिलेखों में उन्हें किसी भी शूरवीर पुरुष शासक से कमतर नहीं दर्शाया गया है।

रुद्रमादेवी के शासनकाल में निर्गत अधिकांश अभिलेखों में उन्हें महाराजा के रूप में संबंधित किया गया है, तथा उनके नाम की जगह पुरुष रूपांतर रुद्रदेव का ही प्रयोग किया गया है। प्रतापरुद्रीय नामक 14वीं सदी की एक कृति में यह स्पष्ट किया गया है कि रुद्रमा के स्थान पर उन्हें रुद्र संबोधित करने का निर्णय उनके पिता गणपति के द्वारा ही लिया गया था। यहां रानी के दामाद चेल्लना के द्वारा निर्गत एक ताम्रपत्र का अभिलेख करना प्रासंगिक होगा, जिसमें उसके नाम के पुरुष तथा स्त्रैण रूपांतर को प्रत्येक पद्य-पंक्ति में बदल-बदलकर प्रस्तुत किया गया है। स्रोतों के अनुसार रुद्रमादेवी का विवाह एक अल्प-ज्ञात व्यक्तित्व वीरभद्र से हुआ था जिसका पूर्वी चालुक्य राजवंश से सम्बंध था। इनके कोई पुत्र नहीं थे, केवल पुत्रियां थीं। रुद्रमादेवी की मृत्यु के पश्चात् शासन का उत्तराधिकार उसकी बेटी मुम्मम्मा के पुत्र प्रतापरुद्र को दिया गया, जो काकतीय राजवंश का अंतिम शासक था।

टालबॉट का तर्क है कि इस युग की विकेंद्रीकृत राजनीतिक शक्ति भी एक बड़ा कारण था, जिसके चलते रुद्रमादेवी जैसी महिलाओं का सफलतापूर्वक राजनीतिक सत्ता का प्रयोग करना संभव हो सका। यद्यपि इस समय औपचारिक रूप से सत्ता पर पुरुषों के वर्चस्व का सिद्धांत सर्वमान्य तथ्य था । दूसरा कारण यह था कि काल की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था ऐसी थी जिसमें परिवार की भूमिका काफी अहम थी। एक महिला तब सत्तारूढ़ हो

सकती थी यदि उस के माध्यम से सत्ता परिवार के निकटतम सम्बंधी को हस्तांतरित किया जाना सम्भव हो सके। इसके अतिरिक्त विवाह और कुल परंपरा की द्राविड़ मान्यता के अंतर्गत स्वजन समुदायों में अंतर्गोत्रीय विवाह की पुनरावृत्ति प्रचलन में थी, जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसा सामाजिक परिवेश सामने आया था, जिसमें एक महिला का अपने मायके से विवाह के बाद भी मजबूत सम्बंध बना रहता था। इन कारणों से रुद्रमादेवी के लिए सत्ता पाना और उसका संचालन सम्भव हो पाया था, यद्यपि सत्ता के प्रतीकों को भाषा पुरुषवादी थी और महिला द्वारा सत्ता प्राप्त करने से सत्ता के परम्परागत प्रतीक ध्वस्त हो जाते थे।

रुद्रमादेवी की विस्तार से यहाँ चर्चा इसलिए भी की गई है क्योंकि उत्तर भारत में रज़िया सुल्तान लगभग समकालीन तुर्क शासक रही है, यद्यपि रज़िया ने इससे कुछ पूर्व गद्दी सम्भाली थी और तुर्की राजत्व के विचार में एक स्त्री की स्थिति किस प्रकार रुद्रमा की स्थिति से भिन्न रही है, इस पर हम आगे चर्चा करेंगे। रजिया सुल्तान पहली मुस्लिम महिला शासिका थीं। उन्होंने सुल्तान के रूप में 1236 से 1240 तक दिल्ली में शासन किया - यह एक ऐसी उपाधि थी जो पहले कभी किसी महिला को नहीं दी गई थी, शक्ति का ऐसा पद जो किसी महिला को पहले कभी नहीं मिला था। वह पांचवीं मामलूक सुल्तान थीं, जो दुनिया भर में इस्लामी सभ्यताओं के इतिहास में अब तक की कुछ महिला संप्रभुओं में से एक थीं। 'सुल्तान रज़िया एक महान संप्रभु, बुद्धिमान, न्यायप्रिय, परोपकारी, संरक्षिका, विद्वान, न्याय प्रदान करने वाली, अपनी प्रजा और युद्धप्रिय प्रतिभा का पालन करने वाली, और राजाओं के लिए आवश्यक सभी सराहनीय गुणों और योग्यताओं से संपन्न थी। वह एक सुल्तान के योग्य सभी गुणों से संपन्न थी, लेकिन उसका जन्म सही लिंग में नहीं हुआ था और इसलिए पुरुषों की नज़र में ये सभी गुण बेकार थे।' समकालीन फ़ारसी इतिहासकार मिनहाज़ ने रज़िया का ज़िक्र इन शब्दों में लिया है। ऐसा माना जाता है कि रजिया ने सुल्ताना (उसके लिंग के अनुसार) के रूप में संबोधित किए जाने से इनकार कर दिया था क्योंकि उस शब्द का अर्थ "सुल्तान की पत्नी या प्रेमिका" था, लेकिन उसने "सुल्तान" पदवी का दावा किया था, क्योंकि वह स्वयं सत्ताधारी थी। रजिया के सिंहासन पर बैठने का ऐतिहासिक महत्व सिर्फ इसलिए नहीं है कि वह एक महिला शासक थी, बल्कि इसलिए भी कि वह कुलीन वर्ग से नहीं आई थी। उनके पूर्वज तुर्की सेल्जुक गुलाम थे और इस प्रकार उनका शासन कई स्तरों पर मौजूदा सत्ता संरचनाओं को पलटकर रख देने का भी इशारा करता है। रज़िया सुल्तान का जन्म रज़िया अल-दीन के रूप में 1205 में भारत के बदायूँ में हुआ था। वह शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की इकलौती बेटी थी और उसके तीन भाई थे। उसकी माँ कुतुबउद्दीन की बेटी थी, जिसकी शादी उसके पिता की कुशलता और वीरता को देखते हुए हुई थी।

कुतुबउद्दीन की मृत्यु के बाद 1210 में उसके बेटे अरामबख्श को सिंहासन विरासत में मिला। वह बहुत सक्षम शासक साबित नहीं हुआ और इसलिए इल्तुतमिश ने तत्कालीन तुर्की कुलीन वर्ग की मदद से सिंहासन पर कब्जा कर लिया।इल्तुतमिश एक अधिक कुशल शासक और बहुत उदार विचारों वाला साबित हुआ। उसने रज़िया सहित अपने सभी बच्चों को युद्ध-कला और प्रशासन में समान प्रशिक्षण दिया। हालाँकि, वे कौशल उसे केवल इस उम्मीद से प्रदान किए गए थे कि वह बाद में एक राजा के लिए एक अच्छी रानी बनेगी और ज़रूरत पड़ने पर सलाह और सहायता प्रदान करेगी - न कि स्वयं शासक बनने के लिए। अपने अंतिम दिनों में इल्तुतमिश ने अपनी बेटी रजिया को अपना

उत्तराधिकारी नियुक्त करके इतिहास को लगभग फिर से लिख दिया। उनसे पहले किसी भी शासक ने किसी महिला को उत्तराधिकारी नहीं चुना था। हालाँकि, इल्तुतमिश ने यह महसूस करते हुए कि वह अपने भाइयों की तुलना में राज्य पर शासन करने के लिए अधिक कुशल और उपयुक्त थी, उसे चुना, यह देखते हुए कि उसका महिला होना उसकी क्षमताओं में कोई बाधा नहीं है।इसलिए, उसके उत्थान का करीबी परिवार के लोगों ने भी कड़ा विरोध किया। कुलीन तुर्की वर्ग ने रुकनुद्दीन को नया सुल्तान बना दिया। नया सुल्तान एक शासक के रूप में पूर्णतः विफल रहा। ऐसा माना जाता है कि इल्तुतमिश की विधवा शाह तुर्कान ने उसके संक्षिप्त शासनकाल के दौरान सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए सरकार चलाई, जबकि सुल्तान अपनी शाही स्थिति का आनंद लेने में डूबा रहा। केवल छह महीने के बाद नवंबर में एक अदालती साजिश के परिणामस्वरूप रुकनुद्दीन और उसकी मां शाह तुर्कान दोनों की हत्या कर दी गई। जिसके बाद रजिया ने गद्दी पर अपना दावा किया, जिस पर उसका अधिकार इल्तुतमिश ने तय किया था।

दिल्ली की सुल्तान बनने के बाद उसने ऐसी पोशाक अपनाई जो महिलाओं के लिए नहीं थी और एक कुशल, सक्षम और बहादुर शासक साबित हुई। उसके अधिकारियों और जनता द्वारा उनका बहुत सम्मान और प्यार किया जाता था, लेकिन उसके एक भाई ने सिंहासन पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद हुए संघर्षों में रजिया की बेरहमी से हत्या कर दी गई। अपने प्रारंभिक वर्षों में, रज़िया का हरम की महिलाओं के साथ बहुत कम संपर्क था, इसलिए उसने कभी भी अपने समय के समकालीन मुस्लिम समाज की महिलाओं के बीच प्रचलित सामान्य संकोची व्यवहार को नहीं अपनाया। सुल्तान के रूप में अपने पिता के शासनकाल के दौरान भी, रजिया ने राज्य के मामलों में अपने पिता की सक्रिय रूप से सहायता की। सुल्तान के रूप में, परंपरा के विपरीत, उसने सार्वजनिक रूप से अपना चेहरा प्रदर्शित किया और अपनी सेना के प्रमुख के रूप में खुलेआम हाथी पर सवार होकर लड़ाई में भाग लिया। उसके पर्दा छोड़ने से रूढ़िवादी मुसलमानों को झटका लगा और धार्मिक वर्ग ने इसे बहुत अच्छी तरह से नहीं लिया। उसने सहजता और आत्मविश्वास के साथ सत्ता के अधिकार का प्रयोग किया और अपने नाम पर "महिलाओं की कीर्ति, युग की महारानी, सुल्तान रज़िया, शम्सुद्दीन अल्तमश की बेटी" के रूप में सिक्के ढालने का आदेश दिया।

एक अच्छे शासक के रूप में उनका प्रशिक्षण और उनके पिता का संरक्षण उनके काम आया। वह एक निर्भीक महिला और बहादुर योद्धा थीं। रजिया सुल्तान ने लड़ाई में आगे बढ़कर अपनी सेना का नेतृत्व किया और अपने राज्य को मजबूत करने के लिए विभिन्न नए क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की। एक प्रशासक के रूप में भी रजिया उससे कम नहीं थी जो दिल्ली ने अपने पहले के सुल्तानों में देखी थी। वह एक धर्मनिरपेक्ष सुल्तान भी थी और उसने कई शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना की। क़ुरान की शिक्षा के साथ-साथ उसने हर तरह की नई शिक्षा पर जोर दिया। संस्थानों में इस्लाम के अलावा सभी संस्कृतियों के विज्ञान और परम्परागत साहित्य का भी अध्ययन शामिल किया गया।

हालाँकि, उसका शासक बनना तुर्की अमीरों को स्वीकार नहीं था, जो एक महिला के सुल्तान बनने को सभी पुरुष योद्धाओं और अमीरों का अपमान मानते थे। ऐसे ही एक सरदार मलिक इख्तियार-उद-दीन ऐतिगिन के नेतृत्व में

रजिया के खिलाफ साजिश रची गई। भटिंडा के गवर्नर मलिक इख्तियार-उद-दीन अल्तुनिया, जो आश्चर्यजनक रूप से रज़िया के बचपन के दोस्त थे, उसके शासन के खिलाफ विद्रोह करने वाले पहले व्यक्ति थे। उसने बहादुरी से उसके खिलाफ अपनी सेना का नेतृत्व किया, लेकिन एक करारी हार के बाद उसे बंदी बना लिया गया। उसके भाई मुइज़ुद्दीन बहराम शाह ने बाद में सिंहासन पर कब्ज़ा कर लिया।

रजिया दिल्ली सल्तनत की पहली और आखिरी महिला शासक थीं। उन्होंने बहादुरी से रूढ़िवादी परंपराओं का खंडन किया और सल्तनत में पहली बार साबित किया कि व्यक्ति का लिंग योग्यता में बाधा नहीं है। सुल्तान के रूप में उसके शासनकाल के दौरान उसके अबीसीनियाई गुलामों में से एक - जमालुद्दीन याकूत के करीबी होने की अफवाह थी। इसका इस्तेमाल उनके विरोधियों ने यह अफवाह फैलाकर उनके चरित्र हनन के लिए किया कि वह उनके साथ प्रेम संबंध में हैं।रज़िया और अल्तुनिया के बीच लड़ाई में याकूत मारा गया, जबकि रज़िया को पकड़ लिया गया और भटिंडा के क़िला मुबारक में कैद कर दिया गया। लेकिन अंततः मलिक इख्तियार-उद-दीन अल्तुनिया, जो रज़िया का बचपन का दोस्त था, नरम पड़ गया और अंततः उन्होंने शादी कर ली। रजिया ने अपने पति के सहयोग से अपने भाई से अपना राज्य वापस लेने का फैसला किया लेकिन वह हार गई और दिल्ली से भाग गई। माना जाता है कि अक्टूबर 1240 में उसके भाइयों के कई सह-साजिशकर्ताओं ने उसे मार डाला।

इतिहास में अपने अद्वितीय स्थान के कारण रजिया सुल्तान दिल्ली सल्तनत की पहली महिला सम्राट थी। रज़िया उचित रूप से कई लोकप्रिय किंवदंतियों का विषय है। रफ़ीक ज़कारिया द्वारा उनके जीवन पर आधारित एक ऐतिहासिक-काल्पनिक पुस्तक लिखी गई है जिसका शीर्षक है - रज़िया: क्वीन ऑफ़ इंडिया। प्रतिष्ठित भारतीय कॉमिक पुस्तक श्रृंखला अमर चित्र कथा में उसका अपना एक संस्करण है। वह हलीमा वॉयल्स की रजिया सुल्तान नामक ऑनलाइन कॉमिक स्ट्रिप में शामिल है और हर उस छोटी लड़की के लिए प्रेरणादायक बनी हुई है जिसके बारे में कहा जाता है कि वह अपने भाइयों जितनी अच्छी नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदुस्तान में मध्यकाल की शुरुआती दौर में राजत्व पितृ सत्ता की अवधारणा से बँधा हुआ था और राज्य झुकी प्रति भाषा व्यवहार प्रचलन पुरुषवादी रंग लिए हुई थी तथा भी तथा पी ऐसी परिस्थितियों के बीच कभी कभी महिलाओं को सत्ता के शीर्ष पर पहुँचने का अवसर मिलता था जिनके कुछ विशिष्ट कारण होती थी न जैसे रुद्रमा के विषय में यह द्रविड़ परिवारों की विशिष्ट संरचना थी जिसमें स्त्रियाँ अपनी विवाह के पश्चात भी घनिष्ठता के साथ अपनी माइक किसी जुड़े रहती थी वहीं तुर्की सुल्तानों के ख़ानदान में इस्लाम अपना दिए जाने के बावजूद क़बीलाई परंपराएँ मौजूद थी जिसमें स्तरीय हरम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा दी थी और उत्तराधिकार को लेकर कोई स्पष्ट व्याख्या मौजूद नहीं थी। इसके साथ यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि सामान्य तौर पर न तू स्त्रियाँ कुलीन वर्गों की भूमिका में शामिल थी और न ही उलमा वर्ग में। इस किन्तु अवसर मिलने पर महिलाओं ने यह साबित कर दिया कि सत्ता के संचालन में भी अपनी पुरुष समकक्षों से कम नहीं है।

14.4 समाज में महिलाओं की स्थिति

सल्तनत पर पाँच राजवंशों द्वारा क्रमिक रूप से शासन किया गया था, मामलुक वंश, ख़िलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश और लोदी वंश। 300 से अधिक वर्षों के इस कालखंड के लिए प्रमुख मुस्लिम और स्थानीय हिन्दु राज्यों से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्त्रोत प्राप्त हुए हैं लेकिन इनमें महिलाओं के बारे में जानकारी बहुत कम है। इस समय के ये स्त्रोत तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की जो तस्वीर पेश करते हैं, उनमें महिलाओं की स्थिति को यहाँ समझने का प्रयास किया जाएगा।

भारत में तुर्क अपने उन पूर्वजों की खानाबदोश परंपराएँ के साथ आए थे, जो मध्य एशिया की चराग़ाह भूमियों पर जगह-जगह घूमते रहते थे। सल्तनत के अधीन ऐसा प्रतीत होता है कि तुर्की महिलाएं कई देशी समुदायों की महिलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र थीं। ऐसा इसलिए कहा जा सकता है क्योंकि अधिकांश स्थानीय समुदायों में महिलाएँ कई तरह की सामाजिक निषेधाज्ञाओं से ग्रस्त थीं। बहु-विवाह की संस्था विशेष रूप से कुलीन और अभिजात्य परिवारों में व्यापक रूप से प्रचलित थी। इस समय के बहु-विवाह वाले परिवारों में पत्नियों के अलावा एक आदमी की कई उप-पत्नियाँ शामिल होती थीं, जिन्हें अक्सर ही मात्र यौन सहयोगी की भूमिका तक सीमित कर दिया जाता था लेकिन उन पर विवाह के कानूनी प्रतिबन्ध नहीं थे। ये उप-पत्नियाँ सामान्यतः मध्यम या निम्न समुदायों से आती थीं और जिन स्त्रियों को यह स्थिति दी जाती थी उनको कई अधिकारों से वंचित रखा जाता था। स्पष्ट तौर पर इन महिलाओं की संतानें राजसत्ता के उत्तराधिकार से वंचित थीं और संपत्ति के अधिकारों में भी इनके साथ विभेद किया गया था। शासक और अधिकांश कुलीन परिवारों में बड़ी संख्या में धाय और दासियां भी शामिल होती थीं।

इस काल में मोरक्को से भारत आने वाली यात्री इब्न बतूता ने सुल्तानों और कुलीनों के परिवार में रहने वाली दासियों के बारे में चर्चा की है। ये दासियां दो प्रकार की होती थीं; एक तो वे जो घरेलू कार्यों में परिचारिकाओं के रूप में कार्य करती थीं और दूसरी वे जो अपने स्वामियों की सहचरी के रूप में उन्हें आत्मीय सुख प्रदान करती थीं और कभी-कभी ये दासियां हरम के अंदर विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेती थीं, तथापि यह समझा जा सकता है कि बड़े स्तर पर दासियों को बंधन की अवस्था में रखा जाता था और घरेलू दासियों को शिक्षा और कौशल के अभाव में कठोर काम करने पड़ते थे। प्रारम्भिक मध्यकाल के गुजरात से प्राप्त एक दस्तावेज़ लेखापद्धति से यह पता चलता है कि महिलाओं को अनाज पीसने, कूटने, फ़र्श को साफ़ करने और झाड़ू लगाने, पानी लाने, मवेशियों का दूध निकालने, सब्ज़ियों को काटने, कृषि के बहुत से कार्य करने पड़ते थे।

कुलीन परिवारों का एक महत्वपूर्ण अंग मनोरंजन करने वाली स्त्रियां थीं। सल्तनत काल के दौरान राज परिवारों के साथ नर्तकियाँ और गायिकाएँ इत्यादि मनोरंजन करने वाली बड़ी संख्या में जुड़ी रहती थीं। यद्यपि इनमें पुरुष भी शामिल थे, महिलाओं की संख्या भी कम नहीं होती थीं। गायन और नृत्य जैसे मनोरंजन करने से महिलाओं की स्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ता था। इब्नबतूता ने बताया है कि अलाउद्दीन खिलजी हौज़ ख़ास के निकट तारबाबाद में बड़ी संख्या में संगीतकार और गायकों को बसाया था। मनोरंजन करने वालों को ख़रीदना और उपहार में देना राजसी प्रतिष्ठा का विषय था और इस तरह ख़रीदे हुए दासों को पेशेवर कलाकारों द्वारा प्रशिक्षित किया जाता था। नर्तकियों और गायिकाओं की उपस्थिति उपस्थिति राज परिवारों की महिमा का अभिन्न हिस्सा थी, निजी और

सार्वजनिक उत्सवों में इनके द्वारा प्रदर्शन किया जाता था। लेकिन यह जानना भी ज़रूरी है कि मनोरंजन करने वाली इन महिलाओं की प्रतिष्ठा इनके पेशे से जुड़े हुए थे और जैसा कि अमीर ख़ुसरो ने बताया है कि महिलाओं को नाचना-गाना सीखने के प्रति सचेत रहना चाहिए क्योंकि इससे उन्हें बदनामी भी हासिल हो सकती है। कम से कम उत्तर भारत के हिन्दू कुलीन वर्ग में भी यह नज़र आता था कि उच्च जातियों की महिलाओं को संगीत और नृत्य सीखने से रोका जाए तथा क्योंकि इसे कुलीन व्यवहार के विपरीत समझा जाता था तथा मनोरंजन का यह पेशा कुलवधुओं और कुलस्त्रियों के लिए नहीं था बल्कि वारंगनाओं और नगरवधुओं के लिए था। यह निचले वर्ग से आने वाली स्त्रियों के लिए उपयुक्त समझा जाता था। यद्यपि विजयनगर में अभिजात वर्ग की कन्याओं को भली-भाँति शिक्षा दी जाती थी। लोकभाषाओं के अतिरिक्त उन्हें संस्कृत की भी शिक्षा दी जाती थी। संगीत और नृत्य उनकी शिक्षा के प्रमुख अंग थे। यही कारण है कि इस काल के साहित्यिक क्षेत्र में महिलाओं का योगदान नगण्य नहीं है। तथापि कुलीन परिवारों की स्त्रियाँ सामान्यतः राजप्रासाद या घर की चारदीवारी के भीतर ही रहती थीं।

विजयनगर में मंदिरों में देवपूजा के लिए रहने वाली स्त्रियों को देवदासी कहा जाता था। इन्हें आजीविका के लिए भूमि अथवा नियमित वेतन दिया जाता था। निम्न सामाजिक वर्गों की स्त्रियाँ बहुत से व्यवसायों और हस्तकलाओं में प्रवीण होती थीं। इसी संदर्भ में गणिकाओं का उल्लेख कर सकते हैं जिनका विजयनगर के सामाजिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। समकालीन साहित्य में चारों वर्णों के साथ इन गणिकाओं का भी उल्लेख है। ये गणिकाएँ दो वर्गों में विभाजित थीं एक तो वे जो मंदिरों से सम्बद्ध थीं और दूसरी वे जो स्वतंत्र जीवनयापन करती थीं। गणिकाएँ चाहे किसी भी जाति या समुदाय की हो उनकी जाति एक होती थी। इस वर्ग की स्त्रियाँ पर्याप्त रूप से शिक्षित होती थीं। अधिकांश गणिकाएँ धनाढ्य और विशेषाधिकार प्राप्त थीं। गरीब माता-पिता अपनी युवा पुत्रियों को या तो गणिकाओं को सौंप देते थे अथवा उन्हें बेच देते थे। विशेष बात तो यह है कि इन गणिकाओं को समाज में हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। सार्वजनिक उत्सवों पर समस्त गणिकाएँ अनिवार्यतः उत्सव में भाग लेती थीं। राजा और सामंत दोनों निस्संकोच रूप से गणिकाओं से संपर्क रखते थे।

इसके अलावा सुल्तान से जुड़ी महिलाओं का एक बड़ा समूह जिसमें उसकी माँ, बहनें और बेटियाँ शामिल थीं, उन्हें सामूहिक रूप से सत्तारूढ़ मुस्लिम परिवार में हरम शब्द से संदर्भित किया जाता था। 'हरम' शब्द का मूल अरबी है, जिसका अर्थ 'पवित्र' है और सल्तनत काल के दौरान इस शब्द का अर्थ शाही ख़ानदान की समग्र स्त्रियों से था। ‘अंतःपुर', 'अन्तेवास’ या बाद में ‘जनाना’ शब्द राजपूतों के देशी अभिजात्य परिवारों में महिलाओं के ऐसे ही समूह के लिए उपयोग किए जाते थे। हिन्दू परिवारों ने पत्नियों और अन्य महिलाओं के बीच, जो अन्तरंग रूप से उनसे जुड़ी हुई थी, एक कठोर सीमा रेखा बनाए रखी, जबकि मुस्लिमों में सामाजिक रूप से निचले दर्जे वाली महिलाओं जैसे कि महिला ग़ुलामों के लिए सामाजिक सीढ़ी पर चढ़ने का निषेध नहीं था। शमसुद्दीन इल्तुतमिश की पत्नी शाह तुरकान ऐसा ही एक उदाहरण है, जिसे गुलाम के रूप में खरीदा गया था, लेकिन जिसने इल्तुतमिश (1211-36) की मुख्य रानी के रूप में प्रतिष्ठा पा ली थी । 13वीं शताब्दी के फ़ारसी इतिहासकार मिनहाज़ सिराज ने इस सफलता का श्रेय उसकी योग्यता और आकर्षक व्यक्तित्व को दिया है। दासत्व से मुक्ति मुस्लिम ख़ानदानों में प्रचलित परंपरा थी

जिसमें दासों को परोपकार के कार्य के रूप में स्वतन्त्र किया जाता था। यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि सभी गुलाम लड़कियों को ग़ुलामी से आज़ादी या ओहदे में वृद्धि प्राप्त नहीं हो सकती थी, और अक्सर कुलीन घरों में वे सभी प्रकार के भेद-भावों के अधीन थीं। विजयनगर में भी राज-परिवार के लोग बहु-विवाह करते थे, और रखैलों एवं नौकरानियों को भी बड़ी संख्या में रखते थे। राज-परिवार एवं सामंतों के अतिरिक्त अन्य वर्गों में एक-पत्नीत्व की प्रथा थी। कुलीन परिवारों में कन्याओं का विवाह अल्पायु में ही कर दिया जाता था और कन्यादान को आदर्श विवाह माना जाता था। राजप्रासाद में रहने वाली महिलाओं की बड़ी संख्या में अनेक ज्योतिषी, भविष्य वक्ता, संगीत एवं नृत्य-प्रवीण और राजा की अंगरक्षिकाएँ शामिल होती थीं। राजप्रासाद में रहने वाली इन स्त्रियों में से सैकड़ों को राजा लोग अपने साथ युद्धक्षेत्र में ले जाते थे। इनका विवरण हमें पुर्तगाली यात्रियों से मिलता है।

अन्य सामाजिक प्रथाओं ने भी महिलाओं की स्थिति को प्रभावित किया। इनमें सती और जौहर के माध्यम से महिलाओं द्वारा आत्मदाह करना ऐसा विषय रहा है जिस पर विदेशी यात्रियों और फ़ारसी इतिहासकारों ने काफ़ी कुछ लिखा है। जौहर शब्द का इस्तेमाल महिलाओं द्वारा बड़े पैमाने पर आत्मदाह के लिए किया जाता है, यह जरूरी नहीं कि यह उनके पति या स्वामी की मृत्यु पर किया जाए, जबकि इसके विपरीत सती महिलाओं द्वारा उनके पति/स्वामी के अन्तिम संस्कार में किया जाता था। जौहर अक्सर संकट की स्थिति में यथा युद्ध में हार इत्यादि के समय किया जाता था।महिलाएँ अपने पति या स्वामी के शव के साथ और इसके बिना भी आत्मदाह करती थीं। यह एक हिन्दू रिवाज था, अमीर खुसरो जैसे मुस्लिम इतिवृत्तकारों ने इस तरह की प्रथाओं पर अचम्भा व्यक्त किया है। स्पष्टतः यह सामाजिक प्रथा महिलाओं की दोयम स्थिति का संकेत करती है और साथ ही महिला का जीवन अपने स्वामी या पति से बंधे होने का भी। इब्न बतूता लिखता है कि वह उस स्थान पर बेहोश हो गया था जहाँ एक महिला सती हो रही थी।

मार्को पोलो ने दक्षिण भारत में इस प्रथा के प्रचलन का संकेत किया है। विजयनगर साम्राज्य के क्षेत्र में सती प्रथा के प्रचलन का उस समय के अभिलेखों एवं विदेशी वृत्तांतों दोनों में उल्लेख मिलता है। विजयनगर-कालीन अभिलेखों में सती के काफी संदर्भ प्राप्त होते है, विजयनगर से प्राप्त 1354 ई० के एक अभिलेख में माला गौडा नामक महिला का पति की मृत्यु के बाद सती या सहगमन करके स्वर्गारोहण करने का उल्लेख मिलता है। इस युग में महिलाओं द्वारा अपने पति की मृत्यु के बाद सती होना मुक्ति का प्रतीक माना जाता था। विजयनगर आने वाले विदेशी यात्रियों ने इस क्रूर प्रथा का बड़े विस्तार के साथ उल्लेख किया है। अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि यह प्रथा केवल नायकों और राजपरिवार तक ही सीमित थी। पुर्तगाली यात्री बार्बोसा ने लिखा है कि यह प्रथा लिंगायतों, चेट्टियों और ब्राहमणों में प्रचलित नहीं थी। सती होने वाली स्त्रियों की स्मृति में पाषाण-स्मारक या सती -स्तम्भ लगाए जाते थे। तथापि यह प्रथा इतनी प्रचलित नहीं थी, यद्यपि इसे सम्माननीय माना जाता था। यह जानना भी दिलचस्प है कि सती प्रथा के संबंध में राज्य का दृष्टिकोण तटस्थ नहीं था, राज्य ने विधवा-विवाह करने वाले युगल को विवाह-कर से मुक्त किया था। अतः यह कहा जा सकता है कि राज्य व्यावहारिक दृष्टि से सती प्रथा को प्रश्रय नहीं देता था।

स्रोतों के अनुसार विधवाओं पर सती कोई बाध्यता नहीं थी क्योंकि उच्च वर्ग के हिन्दुओं को छोड़कर विधवा-पुनर्विवाह काफी हद तक प्रचलित और स्वीकार्य था। मुहम्मद बिन तुगलक ने इस बात पर बल दिया कि विधवाओं को सती होने से पहले शासन से सहमति लेनी चाहिए। बलबन के शासनकाल से पहले जिन पुरुषों को उनके रखरखाव के लिए राज्य से भू-अनुदान मिले हुए थे, उनकी विधवाएँ अपने पतियों की मृत्यु के बाद उन्हें अपने पास रख सकती थीं। बलबन द्वारा इस प्रथा को बन्द कर दिया गया जिसके बाद विधवाओं के भरण-पोषण के लिए प्रदत्त भू-अनुदानों को एक निश्चित भत्ते के रूप में बदल दिया गया। विधवाओं को अन्य महिलाओं की तरह जज़िया देने से छूट थी। इन प्रावधानों के बावजूद देशी राज्यों में स्पष्ट रूप से वंश की प्रतिष्ठा और शुद्धता के रूप में सती प्रथा जारी रही।

इस अवधि में महिलाओं की शुचिता के विषय में चिन्ता अमीर खुसरो द्वारा प्रस्तुत नैतिक संहिताओं में भी स्पष्ट है। मिसाल के लिए, महिलाओं को सदाचरण की सलाह देते हुए खुसरो ने लिखा है कि आँख सभी बुराइयों का प्रमुख कारण है और महिलाओं को अपनी नज़र नीचे रखनी चाहिए और उन्हें मोतियों की तरह बचा कर चलना चाहिए जो सीपियों में छुपे रहते हैं। इसके अलावा वह महिलाओं को अपरिचित व्यक्तियों को घूरने, पुरुषों के साथ बात करने से बचने और अपने पति को छोड़कर किसी अन्य के पास नहीं बैठने की सलाह देते हैं। 14वीं सदी के बहमनी साम्राज्य के दरबारी कवि इसामी ने जोर देकर कहा कि महिला का स्थान घर है और उन्हें ताज पहनने की बजाय कताई और बुनाई में दिलचस्पी लेनी चाहिए। खुसरो ने भी सूत-कताई को महिलाओं के उचित और मुख्य कार्य माना है। इस प्रकार दिल्ली सुल्तानों के काल में महिलाओं के अबाध विचरण और आचरण ने पितृसत्ता को चिंतित किया। निषेधाज्ञाओं के माध्यम से महिलाओं की सुरक्षा के नाम पर उनकी गतिशीलता को नियंत्रित करना एक सामान्य बात बन गई। फिरोज़शाह तुगलक ने महिलाओं के मज़ारों-मस्जिदों जैसे पवित्र स्थानों में जाने पर पाबंदी लगा दी थी।

14.5 धर्म और महिलाएँ

यद्यपि स्त्रियां पुरुषों के मुक़ाबले अधिक धर्मभीरु और धर्म परायण होती थीं, लेकिन न तो वे पुरोहित बन सकती थीं, न आलिम और न धर्मगुरु। जैसा कि अभी ऊपर के खंड में ज़िक्र किया गया है कि फ़िरोज़ ने महिलाओं के पवित्र स्थानों पर जाने पर रोक लगा दी थी, स्पष्ट होता है कि सत्ता धारण करने वाले वर्ग महिलाओं को सार्वजनिक रूप से अपने धार्मिक कर्तव्यों को पालन करने से रोकने की कोशिश करते थे। महिलाओं के लिए उसके धर्म का दायरा उनके घर के भीतर तक सीमित था। वहीं दूसरी ओर धर्म से निकली विधियों का निषेध मुख्यतः महिलाओं पर लागू होता था और धार्मिक प्रवचनों की भाषा महिलाओं के अस्तित्व को दुनिया में दोयम दर्जे का मानती थी।

यहाँ हम कुछ महिला संतों पर चर्चा करने के माध्यम से यह समझेंगे कि कई बार धर्म और ईश्वर के प्रति अपने अनुराग का इस्तेमाल करते हुए महिलाओं ने भी सत्ता की बनायी हुई चौखटों से बाहर अपने क़दम रखे और सत्ता की लैंगिक भाषा को चुनौती दी। इस तरह धर्म का अनुसरण महिलाओं के द्वारा आत्म अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली रूप बन गया। मध्यकालीन भारत में वैष्णव और शैव धर्मों के प्रसार के साथ, कई महिलाओं ने पारिवारिक दबाव को नकार दिया और उन्होंने आध्यात्मिक यात्राओं को आरम्भ किया। देशी भाषा के उपयोग ने उन्हें लोकप्रिय संस्कृति का एक

अभिन्न अंग बना दिया। इस प्रक्रिया में साथ ही साथ उन्होंने धर्म की पुनः संकल्पना की और सामाजिक व्यवस्था में स्वयं के लिए एक जगह बना ली।

राजस्थान की मीराबाई, जिन्हें मीरा के रूप में जाना जाता है, एक प्रमुख महिला संत थीं और एक मौलिक सन्त कवयित्री के रूप में उभरीं। मीराबाई को विश्व की सबसे प्रसिद्ध भक्त कवयित्रियों में रखा गया है। वह एक राजपूत राजकुमारी थीं जो जो मेड़ता के शासक के छोटे भाई रत्नसिंह की एकमात्र संतान थीं। उनका विवाह 1516 में मेवाड़ के राजकुमार भोजराज के साथ हुआ था। 1521 में अपने पति की मृत्यु के बाद उन्हें अपने पति के परिवारजनों के हाथों अत्यधिक उत्पीड़न का झेलना पड़ा, विशेष रूप से उनके बहनोई के हाथों, जो उनके पति की मृत्यु के बाद सिंहासन प्राप्त हुआ था।

भगवान कृष्ण के लिए उनकी भक्ति बचपन से ही विकसित हो गई थी। बार-बार उनके द्वारा अपनी माँ से यह पूछे जाने पर दूल्हे का मतलब क्या होता है, उनकी माँ उन्हें कहती कि तुम्हारा दूल्हा कृष्ण है, कहते हैं कि यह बात उनके मन में बैठ गई थी और वह कृष्ण की पति के रूप में आराधना और सेवा करने लगी थीं। धीरे-धीरे उनका विश्वास प्रबल होता गया और एक समय में उन्होंने स्वयं को पूरी तरह से प्रभु में समा लिया। यह स्थिति उनकी शादी के बाद जटिल हो गई क्योंकि उन्होंने पारिवारिक नियमों का पालन करने से मना कर दिया और घर की दहलीज़ से बाहर मंदिरों में सार्वजनिक रूप गाने और नृत्य करने लगीं। उनका प्रतिरोध रूढ़िवादी निषेधात्मक प्रथाओं के खिलाफ था जो महिलाओं के जीवन को नियंत्रित करने की कोशिश करती थीं।जो महिलाओं के जीवन को विनियमित और नियंत्रित करने की कोशिश करती थीं। कुछ समय बाद वह अपने वैवाहिक घर को छोड़कर अपने मायके लौट गईं।

यद्यपि उनका परिवार भी वैष्णव था, लेकिन उन्होंने मीरा के भक्ति के तौर-तरीकों का विरोध किया। उनके इधर-उधर भटकने से उनकी भक्ति प्रतिबंधित सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश कर गई। मीरा ने लगभग उन सभी स्थानों की यात्रा की जिन्हें कृष्ण से जुड़ा पवित्र स्थान माना जाता था, इसके लिए उन्हें जनता और यहाँ तक कि कई भक्तों का भी उलाहना झेलना पड़ा। महिला भक्त होना कोई आसान काम नहीं था, चूँकि महिलाओं को सबसे पहले उनके शरीर के रूप में देखा जाता था और उनकी सुरक्षा और सम्मान के बारे में एक स्थायी चिंता बनी रहती थी। अतः महिलाओं द्वारा अकेले यात्रा पर जाना, हमेशा एक संकटपूर्ण और चिंताजनक विषय माना जाता था। महिला संतों के सामने यह मुद्दा हमेशा प्रस्तुत रहा था। उदाहरणों के लिए 12वीं सदी की कन्नड़ कवयित्री अक्का महादेवी और 14वीं सदी की कश्मीरी संत ललद्यद शामिल हैं. 15वीं शताब्दी में गुरु नानक जैसे पुरुष संतों ने भी महिला समानता का समर्थन किया और महिलाओं को केवल उनके लिंग के आधार पर एक निम्न स्थिति में रखने के खिलाफ जमकर उपदेश दिया। बाद की शताब्दियों में अन्य गुरुओं ने इस रूख का समर्थन किया और इस विचार को और आगे बढ़ाया और उन्होंने दहेज, पृथकता और कन्या भ्रूण जैसी कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठाई।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मीरा का सम्बंध किस राजघराने से था?

A. मेड़ता

B. मेवाड़

C. जयपुर

D. जोधपुर

2. रज़िया सुल्तान किस वर्ष सिंहासन पर बैठी थी?

A. 1231

B. 1234

C. 1256

D. 1236

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर: 1.A, 2.D.

14.6 सारांश

इस इकाई में हमने सल्तनत काल में महिलाओं की स्थिति की विवेचना की और अत्यल्प उपलब्ध स्रोतों के माध्यम से उनकी स्थिति जानने का प्रयास किया है। स्पष्ट है कि इस समय पितृसत्ता और राजसत्ता परस्पर गुँथी हुई थी। तथापि, महिलाओं ने विशिष्ट परिस्थितियों में प्राप्त उपलब्ध अवसरों पर अपनी प्रतिभा और अस्तित्व को साबित किया। हमने मुख्यतः यहाँ रज़िया सुल्तान और रुद्रमादेवी की राजव्यवस्था के संदर्भ में चर्चा की गई है। अगले खंड में हमने विभिन्न परिस्थितियों में महिलाओं के स्थान की चर्चा की है; दासियों, गणिकाओं, गायिकाओं, नर्तकियों, बुनकरों इत्यादि के रूप में उनकी स्थिति को समझने का प्रयास किया है। साथ ही महिलाओं पर लगाए गए निषेधों, सामाजिक कुप्रथाओं, यथा, विधवाओं पर प्रतिबंध, सती प्रथा इत्यादि की विवेचना की गई है। अंत में हमने धर्म के दायरे में महिलाओं पर आरोपित सीमाओं के साथ-साथ धर्म के दायरे में ही स्वयं की मुक्ति के प्रयास पर चर्चा की है कि धर्म और ईश्वर के प्रति भक्ति का उपयोग कैसे पितृसत्ता के नियंत्रण को चुनौती देने के लिए किया गया है।

14.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. महिला शासिका के रूप में रुद्रमादेवी की भूमिका की विवेचना कीजिए.
2. रज़िया सुल्तान को एक शासिका के रूप में किन समस्याओं का सामना करने पड़ा?
3. धर्म के दायरे में किस प्रकार मीराबाई ने पितृसत्ता को चुनौती दी?
4. सल्तनत काल में महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति का परीक्षण कीजिए।

14.8 संदर्भ ग्रंथ

- बंगा, इन्दू, (2005) 'जेन्डर रिलेशन्स इन मेडिवल इंडिया', जे. एस. ग्रेवाल (संपा.) द स्टेट एन्ड सोसाइटी इन मिडिवल इंडिया, खंड VII. भाग 1: 443-474 (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

- बानो, शादाब, (2004) 'वुमेन स्लेवस इन मिडिवल इंडिया', प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 65 सेशन, बरेली: 314-323.
- चैटर्जी, इन्द्राणी एवं रिचर्ड एम. ईटन, (संपा.) (2006) स्लेवरी एन्ड साउथ एशियन हिस्ट्री (ब्लूमिंगटन, महिलाएँ और ल इंडियानाः इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस).
- फेल्डहौस, एनी, (संपा.) (1993) इमेजेज ऑफ वूमेन इन महाराष्ट्रा सोसाइठी (न्यूयार्कः अल्बानी).
- हेम्बली, गेविन आर. जी. (1998) वूमेन इन द मिडिवल इस्लामिक वर्ल्ड (न्यूयार्कः सेंट मार्टिन्स प्रेस), हरलेन, लिन्डसे, (1992) रिलीजन एन्ड राजपूत वूमेनः द एथिक ऑफ प्रोटेक्शन इन कन्टम्परेरी नेरेटिव्स (बर्कलेः यूनिवर्सिटी ऑफ केलीफोर्निया प्रेस).
- जेक्सन, पीटर, (1998) 'सुल्तान रज़िया बिन्त इल्तुतमिश', गेविन हेम्बली, (संपा.) वूमन इन द मिडिवल इस्लामिक वर्ल्ड पावर, पेट्रोनेज एन्ड पाएटी (न्यूयार्क सेंट मार्टिन्स प्रेस), पृ. 181-197.
- जहाँ, फरहत, (2012) डिपीक्शन ऑफ वूमेन इन द सोर्सेज ऑफ द दिल्ली सल्तनत (डॉक्टोरल डेज़रटेशन, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी), रीट्रीस्ड फ्राम https://shodhganga.intlibnet.ac.in/handle/10603/12965
- जोशी, वर्षा, (1995) पोलिगेमी एन्ड पर्दा वूमेन एन्ड सोसाइटी अमंग राजपूत्स (जयपुर रावत पब्लिकेशन्स).
- किश्वर, मधु एवं रूथ वनिता, (1989ए) 'पॉयज़न टू नेक्टर, द लाइफ एन्ड वर्क ऑफ मीराबाई', वूमेन भक्ता पोयट्स, मानुषी, 50-52: 75-93
- लाल, रूबी, (2005) डोमेस्टीस्टि एन्ड पॉवर इन द अरली मुगल वर्ल्ड (केम्ब्रिजः केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).
- मार्टिन, नेन्सी, (2000) 'मीराबाई इन द अकेडमी एन्ड द पॉलिटिक्स ऑफ आइडेन्टिटी', एम. बोस (संपा.), फेसेस ऑफ द फेमिनाइन इन एनशियेन्ट, मिडिवल एन्ड मॉर्डन इंडिया (न्यूयार्कः ऑक्सफोर्ड यूनिकै सेंटी प्रेस), पृ. 162-182.
- मिर्जा, मोहम्मद वाहिद, (1974) द लाइफ एंड वर्क्स ऑफ अमीर खुसरो (दिल्लीः इदारह-ए अदबियात-ए दिल्ली), इंडियन हिस्टॉरिकल रीव्यू, 15 (1-2): 269-275.
- रामास्वामी, विजया, (1997) वॉकिंग नेकड़ः वूमेन, सोसाइटी, स्पिरिच्यूएलिटी इन साउथ इंडिया (शिमलाः आई आई ए एस).
- टैलबॉट, सिंथिया, (1995) 'रूद्रमा देवी द फिमेल किंगः जेन्डर एन्ड पॉलिटिकल अथॉरिटी इन मिडिवल इंडिया', डेविड शुलमैन (संपा.), सिलेबल्स ऑफ स्काई स्टडीज इन साउथ इंडियन सिविलाइजेशन इन ऑनर ऑफ वेल्बेरू नारायना राव (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)